आहार

लेखक—
पं० रामरत्न पाठक आयुर्वेदाचार्य
प्रिंसिपल आयुर्वेद महाविद्यालय
गुरुकुल कांगड़ी

प्रथमावृत्ति १००० | संवत् २००४ | मूल्य ५)

उपहार

समर्पणम्

यद्दृश्यमानं बहुधानवद्यं चराचरं चारु चिरं बिभर्त्ति।
अथान्ति सर्वं स्वयमेव पश्चात् तमन्नरूपं प्रभुमानतोऽस्मि ॥ १ ॥
सदा हसन्तं कुसुमद्रुमेषु समुल्लसन्तं च मुदा फलेषु।
तत्तत्स्वरूपं खलु तेषु तेषु तमन्नरूपं प्रभुमानतोऽस्मि ॥ २ ॥
हैयङ्गवीनस्य भवन्तु शैला, दुग्धस्य दध्नः सुर निर्झरिण्यः।
ह्रदा मधूनां, सरसी रसानां, सुखस्य वर्षाः पुनरार्य वर्षे ॥ ३ ॥

अन्नानि सन्तु विपुलानि जनास्तदन्ना-
ऽदा हृष्ट पुष्ट वपुषः कलुषानभिज्ञाः।
स्वर्गायतां प्रति दिनं सुमनः-समानैः
स्वस्थैः प्रसन्न शिशुभिर्ललना कुलैश्च ॥ ४ ॥

हम्यर्णे भक्तीन्दुमिताब्द जाते स्वाधीनता संगर सुप्रसंगे (१६४२)
कारावरुद्धोऽलभतावकाशं कार्यान्तरेभ्यः खलु लेखकोऽयम् ॥ ५ ॥
तत्राऽभवन् भोजन पान काव्य संगीत गोष्ठ्यो विविधा वरिष्ठाः।
यासु प्रसक्ताः सुहृदः समस्ताः क्षणैरनैषुः क्षणदा दिनानि ॥ ६ ॥
स्वयं पचन्तो विविधान्न पान द्रव्याणि तेषां गुण दोष चर्चाः—
समाचरन्तोऽन्तिम निर्णयायाऽपृच्छन्निमं लेखकमेव सर्वे ॥ ७ ॥

संकेतमेत समवाप्य तस्मादेष मनीषोन्मिषिता मदीया ।
क्रोडीकृत ज्ञेय समस्त वस्तु प्रबन्धमाहार विधौ विधातुम ॥ ८ ॥

एव किलाङ्कुरितमाश्वनुकूल काल
योगाद्द्विपत्रित मथोकुलभूमिवृद्धम् ।
उत्साहि वाक्य सलिलैः सुधियासुसिक्त
मध्यायभेदविलसल्ललित प्रशाखम ॥ ९ ॥

नानोपयोगि विषयोत्कर सुप्रसूनं
तज्ज्ञान जन्य बहु सौख्य फल मनोज्ञम् ।
आहार कल्प तरुमेनमुपाहरामि
प्रेमार्द्रहृद् गुरुकुलाय स लेखकोऽहम ॥ १० ॥

आस्वाद्य हृद्यरसमस्य फलावलीना
मामोदमग्न मनसो विकसन्तु सन्तः ।
छायोपविष्ट जनना परिताप हारी
चारुश्चिर जयतु किच निबन्ध शाखी ॥ ११ ॥

॥ इति शम् ॥

सहायक पुस्तकों की सूची

१. चरक सहिता (चक्रपाणि, गगाधर और उपस्करा टीकाओं से)
२. सुश्रुत सहिता (उल्लन तथा घानेकर टीका)
३. अष्टाग हृदय (अरुणदत्त और हेमाद्रि)
४. अष्टाग सग्रह
५ भावप्रकाश
६. आत्रेय सहिता
७. रस वैशेषिक
८. द्रव्यगुण विज्ञान
९. द्रव्यगुण सहिता
१०. देहधातु
११ शार्ङ्गधर संहिता
१२. योगरत्नाकर
१३. वासवराजीयम्
१४ हारीत सहिता
१५ वगसेन
१६. काश्यप सहिता
१७. भेल सहिता
१८. फलाहार
१९. हमारा भोजन
२०. वेद में चिकित्सा
२१. आहार ही औषध
२२. आहार शास्त्र और शारीर पोषण
२३. भोजन और स्वास्थ्य
२४. आयुर्वेद विज्ञान
२५. राज निघटु
२६. मदनपाल निघटु
२७. कैयदेव निघंटु
२८. अथर्ववेद
२९. उपनिषद्
३० आयुर्वेदीय विश्वकोष
३१. वैद्यक शब्द सिन्धु
३२. अमर कोष
३३. शब्दस्तोम महानिधि
३४ वनौषधि चन्द्रोदय
३५. रजत जयन्ती ग्रन्थ
३६. वृ० वाचस्पत्यभिधान

३७. food de Medicine (By Dr. Ratra).
३८. Human Culture and Cure by Dr. Babbitt. M. D.
३९. Your diet in Health and Desease by Harry Benzamin.
४०. Science of Eating by Mcc. Carrrson.
४१. Diet in disease by R, C, Roy.
४२. Food by Robert Mcc. Carison.
४३. Soyabean.
४४. "Health Bulletin"—Goverment of india.
४५. Indian Medical Gazett.
४६ Eating to banish disease by James Raymond.
४७, The Mucousless diet healing system by Prof. Arnold Ehert.
४८. Eating for Health by Dr. Abram Owenki.
४९. The dietetic value of bread by Prof. Good fellow.
५०. Food by J. H. Tilden.
५१. Royal Road to Health by Dr. Tyrell.
५२. Back to Naturė by Adolf Just.
५३. the newer knowledge of nutritions by prof., M. C. Collum.
५४. Hulliburtens' Physiology.
५५. Lessons on Physiology by Huxley.

५६. Digest of Human Physiology by Dr. S. M. Vasu.
५७. Essay on the Advantages of vegetable diet.
५८. Nutrition and Physical fitness 1935 by bogert J. James.
५९. Balanced diet (bombay Presidency Health weekly).
६०. Vitamin in theory and Practice by Leslee J. Harris.
६१. Food and Prlnciples of dieteticsby Hutchenson Robbert.
६२. Food and Health by H. C. Sharma.
६३. Feeding our children by F. H. Richardson.
६४. Indian Matıria Medica by K. M. Naidkarni.
६५. Encyclopedia Medica.
६६. Encyclopedia Britanica.

विषयानुक्रमणिका

शमी धान्य-(व्रीहिधान्य-क्षुद्रधान्य)-मांस वर्ग-शाक वर्ग-फल वर्ग-हारीत वर्ग-मद्य वर्ग-जल वर्ग-दुग्ध वर्ग-इक्षु वर्ग-कृतान्नवर्ग-आहारोपयोगी वर्ग-आहारोपयोगी द्रव्यों के आयुर्वेदीय मतानुसार गुण विश्लेषण-अर्वाचीन गुण विश्लेषण-आहार तारा।

६. तृतीय अध्याय--आहार मात्रा

आहार मात्रा का एकान्तिक नियम नहीं-औसत मात्रा-मानव शरीर में प्रोटीन आदि की मात्रा-जीवन सत्त्वों का वर्गीकरण-प्राकृतिक नियमों तथा मात्रा की अवहेलना से रोग का प्रादुर्भाव-आहार द्रव्य तथा अवस्थानुसार मात्रा की व्यवस्था-अमीर तथा गरीब पथ्य व्यवस्था।

७ चतुर्थ अध्याय - आहार विधि

आहार विधि—महानस अहारोपकल्पन—भोजन का स्थान—भोजन का स्वरूप—भोजन क्रम—निषिद्ध भोजन—भोजन में जल का सेवन—भोजन के बाद दाँतों की सफाई—भोजनकाल में दोषों की अवस्था—भोजन के बाद विश्राम षड्रस मधुरप्राय भोजन—भोजन का समय।

८पञ्चम अध्याय—आहार में वायु जल और ताप का स्थान—वायु—ताप—जल।

९ छठा अध्याय—आहार और अन्तःस्रावी ग्रन्थियां

चुल्लिका तथा उपचुल्लिका ग्रन्थियां (Thyroid & parathyroid glands) थाइमस ग्रन्थि (Thymas glands)

उपवृक्कग्रन्थि (Adrenalin gland) पिप्युटरी ग्लैण्ड (Pitutory gland) पीनीयल ग्लैण्ड प्रजनन ग्रन्थियां (Reproductive organs Prostrate gland—ovarian-gland) क्लोम ग्रन्थि (Pancreatic gland).

के ६ उपाय – दीर्घजीवन-उपस्तम्भत्रय-आहार-स्वप्न – निद्रा की प्रक्रिया के सम्बन्ध में आधुनिक खोज—निद्रा के प्रकार—तामसी निद्रा—स्वाभाविक निद्रा—वैकारिकी निद्रा—निद्रा हेतु—वेद तथा उपनिषदों में निद्रा का वर्णन-ब्रह्मचर्य-विवाह के पूर्व कालिक ब्रह्मचर्य-विवाहोत्तर ब्रह्मचर्य-मानव जीवन के तीन प्रधान भाग-आहार का विकास-मानव वंश की उन्नति में अन्न का महत्व-मत्स्याहारी, मांसाहारी और कृषिजीवियों की उत्पत्ति-मांसाहार के दोष-कृषिजीवी या किसान-हमारा आहार कैसा हो-संतुलित आहार-सर्वाङ्ग पूर्ण आहार-सुपच आहार-शुचि आहार-सुन्दर आहार-शिव आहार-रोगोन्मूलन मे परिमित आहार आवश्यक।

१९ परिशिष्ट

आदर्श आहार में भिन्न २ घटकों का योग्य प्रमाण-दुग्ध-वर्ग-आलू वर्ग-नीम्बू वर्ग-फल शाक कन्द वर्ग-शूकधान्य वर्ग-शमी धान्य वर्ग-तेल वाले पदार्थ शकर-पिष्ट वर्ग-मसाला वर्ग-अन्न पदार्थों में जीवन सत्व का साधारण परिमाण-द्रव द्रव्य-जल वर्ग दूध वर्ग-दधि वर्ग-घृत वर्ग-तैल वर्ग-मधु वर्ग-इक्षु वर्ग-मद्य वर्ग-शाक वर्ग-पुष्प शाक-फलशाक-कन्द शाक-नाल शाक-हरितक वर्ग-आहारोपयोगी वर्ग-फल वर्ग।

इति

प्राक्कथन

सन् १६४१ में आयुर्वेद के अनन्य भक्त डा० आचन्द लक्ष्मीपति बी ए० एम० बी० सी० एम० के उद्योग से 'आयुर्वेद शिक्षा परिषद्' का आयोजन उनके आरोग्याश्रम, आवाडी में हुआ था। भारत के प्रायः सभी प्रान्तों से अनेक प्रख्यात पण्डितों के व्याख्यान आयुर्वेद के भिन्न २ विषयों पर हुए। उन व्याख्यान मालाओं में 'मानव आहार' पर भी अनेक सुन्दर एवं गम्भीर भाषण भिन्न २ देशों से आए हुए पण्डितों द्वारा कराए गये थे। सौभाग्यवश मै भी उक्त व्याख्यानमाला के श्रोताओं में सम्मिलित था। वर्त्तमान युग में जब संसार ज्ञान-विज्ञान की उन्नति के हेतु जी जान से लगा हुआ है, मनुष्य इस बात को भली भांति पहचानने लगता है कि आहार और पोषण का परस्पर क्या और कितना घनिष्ट सम्बन्ध है ? अनुभव ने मनुष्य मात्र के गले के नीचे यह बात भली भांति उतार दी है कि मानव जीवन के लिये आहार का महत्व तभी तक है जब तक इसमें पोषणक्षमता है। आहार ही से मनुष्य को जीवनशक्ति प्राप्त होती है। इसी से उसका शरीर तथा मन पुष्ट एवं प्रसन्न रहता है और इसी की बदौलत वह उन महान् शक्तियों को

प्राप्त करता है जिनमें मानव जीवन की महत्ता संसार में प्रस्थापित हुई है। ऐसी परिस्थिति में आहार सम्बन्धी व्याख्यानों को सुन कर उन पर विचार किये बिना कोई जिज्ञासु नहीं रह सकता। उपरोक्त व्याख्यानों ने मेरी आहार सम्बन्धी जिज्ञासाओं को और भी उत्तेजित किया। फलस्वरूप उक्त परिषद् से लौटने के बाद मैंने आहार सम्बन्धी पुस्तकों का स्वाध्याय प्रारम्भ किया। एक व्यवसायी वैद्य के लिये स्वाध्याय का समय निकलना कितना कठिन काम हो जाता है यह सभी सफल चिकित्सकों को विदित-प्राय है। परन्तु "जो इच्छा धरहीं मन माहि, हरि प्रसाद् कछु दुर्लभ नाहि।" सन् १६४२ के अगस्त आन्दोलन ने मुझे पर्याप्त समय इस कार्य को करने के लिये प्रदान किया। अतः ब्रिटिश सरकार ने इस कार्य के लिये अपने सुरक्षित स्थान में (कारागार में) मुझे ८ मास तक जो समय दिया; इसके लिये वह स्तुत्य है। दो एक मास विक्षुब्ध राजनैतिक वातावरणों का आनन्द लेने के पश्चात् यथा साध्य प्राप्य पुस्तकों के अवलोकन का सुअवसर आया। 'कृष्ण मन्दिर' में प्रधान चर्चा खाने पीने की ही रहती है। अमुक तरह के बन्दी को अमुक भोजन होना चाहिये, सभी के भोजन एक समान होने चाहिये, भोजन के तारतम्य से परस्पर विरोध तथा फूट उत्पन्न करने का आयोजन सरकार करना चाहती है, कांग्रेस मन्त्रिमण्डल भी वर्ग या श्रेणी के झगड़े को समाप्त न कर सकी, हमें मानवोचित भोजन मिलने चाहियें, हमारा पथ्य आधा चावल, आधा रोटी, अमुक सब्जी, इतना घी, इतना शक्कर आदि होना चाहिये,

यदि जेल के अधिकारी वर्ग इसका आयोजन नहीं करते तो भूख हड़ताल करनी चाहिये. इत्यादि बातों की सदा धूम लगी रहती थी। इन सब बातों से मुझे और भी अपने आहार सम्बन्धी स्वाध्याय का उत्साह मिलता था। पाठकों को यह कहना नहीं पड़ेगा कि जहां इस तरह का जमघट हो, और उनमें कतिपय वैद्य हों तो सभी वैद्य के यहां अपनी पथ्यापथ्यव्यवस्था के लिये दौड़ते हैं। सौभाग्यवश या अभाग्यवश उस जमघट में वैद्यों में इस तरह की माथा पच्ची का ठेका मुझे ही दिया गया था, अतः आहार सम्बन्धी तथ्यों की छानबीन करना मेरे लिये अनिवार्य सा हो गया। यह है मेरे आहार सम्बन्धी विशेष स्वाध्याय का मूल कारण।

कृष्ण मन्दिर में यथा साध्य उपलब्ध ग्रन्थों का स्वाध्याय तथा भिन्न २ मतों का संकलन मेरा प्रधान कार्य था। यह कार्य ६ मास तक अनवरत जारी रहा। जेल से बाहर आने के बाद शीघ्र ही कुछ कार्यवश मद्रास जाना पड़ा और पुनः उपरोक्त डा० लक्ष्मीपति जी के साथ रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ। निश्चित समय पर 'आयुर्वेद शिक्षा ग्रन्थ' की पाण्डुलिपि निर्माण करने के पश्चात् शेष समय संकलित आहार सम्बन्धी मतों का विवेचन करना तथा वहां स्थानीय पुस्तकालयों से अन्य आहार सम्बन्धी तथ्यों की खोज करना—मेरा कार्य क्रम सा बन गया। ८ मास मद्रासवास के पश्चात् विधिवशात् मैं गुरुकुल आया और इस कार्य को सम्पूर्ण करने के लिये मुझे गुरुकुल का भव्य पुस्तकालय मिला।

तात्पर्य यह कि कृष्ण मन्दिर मे एकत्र अस्थियों का सधिबन्धन (शिरा स्नायु आदि से) मद्रास मे हुआ और इस प्रकार प्रस्तुत अस्थिपञ्जर मे मास तथा चमडा गुरुकुल मे लगाया गया और उसे सवारा गया। और यह पुस्तक आज पाठकों की सेवा मे उपस्थित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

जिन २ पुस्तकों का एतदर्थ अवलोकन करना पडा उनकी नामावलि पाठकों के सूचनार्थ इस पुस्तक मे अन्यत्र दे दी गई है। इन पुस्तकों के स्वाध्याय के बाद मेरे मन मे आहार सम्बन्धी तथ्यों को पाठकों के सामने रखने की अन्त प्रेरणा हुई और मैने इसकी पाण्डुलिपि तैयार की। हिन्दी मे आहार सम्बन्धी जो भी पुस्तके अब तक निकली है वे प्राय अंग्रेजी किताबों की टीका तथा उन पुस्तकों के विचारों का सकलन मात्र है। सहिता ग्रन्थों के अतिरिक्त आहार सम्बन्धी जो भी मौलिक विचार भिन्न २ ग्रन्थों मे उपलब्ध हुए है वे प्राय किसी विशेष दृष्टिकोण को लेकर लिखे गये हैं। लेखक यदि होमियोपैथ है तो उसके विचार होमियोपैथिक दृष्टिकोण से होंगे और यदि नैचरोपैथ है तो उसके विचार नैचरोपैथिक होंगे। अर्वाचीन वैज्ञानिक विचारक आहार और शरीर (भौतिक) के कार्य्य—कारण सम्बन्ध का ऊहापोह अपने विज्ञान बल से करके आहार मे प्रयुक्त होने वाले द्रव्य के पोषाणाशों को दृष्टि मे रख कर उसकी व्यवस्था करते हैं। उदाहरणार्थ, एक नैसर्गिक चिकित्सक भिन्न २ प्राणियों के जीवनयापन की छानबीन करता है और देखता है कि ससार के भिन्न २ प्राणी प्रकृति-प्रदत्त भिन्न २ फल मूलों को, बिना किसी

परिवर्त्तन के, उपभोग से सुखी स्वस्थ रहता है। और मानव अपने बुद्धिबल से अपने भोजन में प्रकृति-प्रदत्त पदार्थों में परिवर्त्तन कर उतना सुखी और स्वस्थ नहीं रहता। अतः वह इसके अन्दर इस तथ्य का अवलोकन करता है कि यदि मानव भी प्रकृति प्रदत्त पदार्थों का उपभोग प्रकृत रूप में करे तो वह विशेष सुखी तथा स्वस्थ रह सकता है। इसके बाद वह द्रव्यगत तत्त्वों का वैज्ञानिक विश्लेषण करता है और देखता है कि इन तत्त्वों से युक्त भोजन द्रव्य, जब शरीर के अन्दर जाता है तो भिन्न २ स्थलों पर भिन्न २ शरीरस्थ ग्रन्थियों से स्रवित पाचक रसों द्वारा उनका परिपाक होता है। ये परिपाक करने वाले रस परस्पर भिन्न हैं और अन्न द्रव्य के भिन्न २ घटकों का पाचन करने में समर्थ हैं। जैसे, भुक्त द्रव्य जब मुख में जाता है और दाँतों से चबाया जाता है तो मुखस्थ लाला-ग्रन्थियों से पाचक रस लाला (स्राव निकलता है जो अन्न द्रव्य के शर्कराजन्य पदार्थ के किसी विशेष अंश मात्र (स्टार्च) को पचाने में समर्थ है; अन्न के शेष अंश का पाक वहां नहीं होता। इसी प्रकार आमाशय से निकलने वाले अम्ल रस, तथा ग्रहणी प्रदेश में स्रवित होने वाले आग्नेयरस और पित्त (यकृदीय) एवं आँतों से निकलने वाले आन्त्र रस के अन्दर भी भोजन द्रव्य के भिन्न २ घटकों को पचाने की शक्ति है और ये पाचक रस, परस्पर विरोधी हैं अर्थात् शर्करा जन्य पदार्थों (कार्बोहाइड्रेट) के ऊपर पाचक रसों के कार्य्य करने के लिये क्षार-माध्यम की आवश्यकता होती है तो भोजन के अन्य प्रोटीन आदि घटकों के

लिये अम्ल-माध्यम की आवश्यकता पड़ती है। इन उलझनों में पड़कर वह आहार द्रव्यों के वर्गीकरण में उलझ जाता है और वह इस आधार पर शर्कराजन्य घटकविशिष्ट पदार्थों का प्रोटीन विशिष्ट पदार्थों के साथ लेने का निषेध करता है अर्वाचीन विज्ञान प्रगतिवादी होने के कारण शरीर (भौतिक) और आहार द्रव्य को कार्य्य कारण सम्बन्ध का विवेचन कर जिन २ अन्न घटकों की जिस मात्रा में शरीर पोषण के लिये आवश्यक समझता है उसकी व्यवस्था करता है। इस व्यवस्था मे प्रतिदिन हेर-फेर की गुञ्जायश बनी रहती है। अर्थात् जब २ उसके परीक्षण मे कोई नये तथ्य मिलते हैं वह उसका समावेश उसके अन्दर करता है। जैसे कुछ वर्ष पहले अन्न के आवश्यक अन्न घटकों में जीवनीय तत्त्व (विटामिन) का कोई नाम-निशान न था।

उपरोक्त सभी विचारक इस तथ्य को भूल जाते हैं कि प्राणी शरीर केवल भौतिक नहीं। प्रकृति के परिणाम में मानव सृष्टि तो और भी जटिल एवं दुर्विज्ञेय है। यद्यपि संहिता ग्रन्थों (आयुर्वेद) में इस दुर्विज्ञेय सृष्टि को समझाने का पर्याप्त प्रयास किया गया है; तथापि यह प्रयास सूत्र रूप में होने से सर्व साधारण के लिये सुबोध नहीं है। भगवान् आत्रेय ने आहार विवेचन के लिये पहले मानव शरीर (चिकित्सा पुरुष या कर्म पुरुष) का विवेचन किया है। उन्होंने कहा है कि मानव आहार के लिये मानव शरीर का विवेचन आवश्यक है। मानव शरीर-भौतिक शरीर-मन-और आत्मा इनका समवाय है।

"सत्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत्त्रिदण्डवत्।
लोकस्तिष्ठति संयोगात् सर्वमत्रप्रतिष्ठितम्।" (च०सू० १)

अतः मानव आहार इन तीन घटकों के विचार से निश्चित करना होगा। आहार सम्बन्धी जितनी पुस्तकें अब तक उपलब्ध हैं उनमें इस तथ्य की अवहेलना की गई दृष्टिगोचर होती है। समय ने इसकी ओर आज के विचारकों का ध्यान आकृष्ट किया है और आज के विचारक इस बात को अब स्वीकार करने लगे हैं। अखिल भारतीय मेडिकल कान्फरेन्स के सभापति डा० जीवराज मेहता ने अपने भाषण में इस तथ्य को स्वीकार किया है कि केवल विज्ञान (Science) द्वारा इसका निपटारा नहीं हो सकता। देखिये—

"The subject of nutrition has been, for several years, the concern of most Countries in the world. ··· ·· ·· ··· ··· ··· We are still very far from evolving an Indian dietary on modern scientific basis ·· ····· ····· Though modern scientfic medicine has been with us for over a hundred years, we have not yet evolved a dietary suitable for those with Vegetable habits, either in acute illness or during the stage of convale scence···It is on the assumption that a living human being

is not merely a material entity but essentially a spiritual being so that the problem of his nutritions is not merely a question of Physics & Chemistry, of Colories & Vitamins natural or synthetic (important as theyare) but also of psychological and spiritual Values and of Providing nutrition suitable not only for his Physical bodies but for his emotional & mental bodies as well."

मन क्या है इसका विवेचन इस पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय नहीं। पर हम इसकी अवहेलना भी नहीं कर सकते। अतः आहार के साथ इसका क्या सम्बन्ध है इस सम्बन्ध में कुछ संकेत करने का प्रयत्न हम यहां करेंगे। मानव मनका मानव शरीर को स्वस्थ एवं सुखी रखने में प्रधान हाथ है यह अत्युक्ति नहीं। सुन्दर, से सुन्दर परम स्वादु आवश्यक अन्न-घटकों से युक्त आहार भी चिन्ता मग्न, शोकार्त्त तथा क्रोधादि से उद्विग्न मनुष्य के लिये सुखद एवं स्वास्थ्यवर्धक नहीं होता यह दृष्ट-प्रत्यय है। इसी से आयुर्वेद के ग्रन्थों में कहा है—"ईर्ष्या भय क्रोध परिप्लुतेन लब्धेन रुग्दैन्य निपीडितेन। प्रद्वेष युक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाकमेति ॥" अतः आवश्यक अन्न घटकों का भोजन में होना जितना जरूरी है उससे कहीं अधिक यह भी आवश्यक है कि वह मनोऽनुकूल हो। इसी से "मनोज्ञ शुचि

सम्पन्नं प्रत्यग्रमशनं हितम्'' ऐसा कहा गया है। मन ही मनुष्य के बन्ध और मोक्ष का कारण है यह सर्वविदित है। यदि मन अविकल नहीं तो भोजन आदि की व्यवस्था अविकल नहीं हो सकती। मन ही द्वारा हम अपने शरीर के अनुकूल भोजन की व्यवस्था करते हैं। किसी भी पदार्थ को देख कर भोज्याभोज्य का निर्णय मन ही द्वारा होता है। मन के बिना इन्द्रियां अपने अर्थ को ग्रहण करने में कदापि समर्थ नहीं होतीं। अर्थों के ग्रहण बिना उनका विवेक भी नहीं हो सकता। "इन्द्रियेणेन्द्रियार्थो हि समनस्केन गृह्यते। कल्प्यते मनसाप्यूर्ध्वं गुणतो दोषतोऽथवा'॥ जायते विषये तत्र या बुद्धिर्निश्चयात्मिका। व्यवस्यति तथा वक्तुं कर्तुं वात्त बुद्धि पूर्वकम्॥" प्रस्तुत पुस्तक में आहार विवेचन इसी तथ्य को सामने रख कर, करने का प्रयत्न किया गया है।

जिस प्रकार हमारा भोजन मनोनुकूल होना चाहिये उसी प्रकार उसका आत्मानुकूल होना भी आवश्यक है। जो आहार-विहार मनोनुकूल होता है वह प्रायः आत्मानुकूल भी होता है। प्रायः शब्द का प्रयोग इस लिये किया गया है क्योंकि कभी २ जब मन स्वस्थ नहीं होता, उस समय अनेक अहित पदार्थ भी मनोनुकूल दीख पड़ते हैं, यथा-रुग्णावस्था में अहित पदार्थों का सेवन कभी-कभी क्षणभर के लिये मन को प्रसन्न करता है। आत्मा को पुरुष भी कहते है।'' 'पुरि शरीरे शेते इति पुरुषः" । भौतिक शरीरि आत्मा का निवासस्थान है। इसी लिये इसका दूसरा नाम शरीरी भी है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के लिये उसके रहने का स्थान उस

की सुख-सुविधा के अनुकूल होना चाहिये उसी प्रकार पुरुष की पुरी तथा शरीरि के लिये शरीर का भी उसके अनुकूल होना आवश्यक है। जिस प्रकार एक व्यक्ति अपना निवास स्थान अपने सभी सुख सुविधाओं को दृष्टि में रख कर बनाता है उसी प्रकार यह आत्मा भी शुक्र-शोणित रूपी मूल उपादानों से अपना गृह अपनी सुख सुविधा के अनुसार बनाता है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के सुख सुविधा पूर्ण मकान में उसके प्रतिकूल किसी प्रकार के आयोजन से उसे असुख तथा असुविधा होती है उसी प्रकार इस आत्मा के मकान इस शरीर में भी अनुचित आयोजन से उसे असुविधा तथा असुख होता है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने अनुकूल वातावरण को न देख उस स्थान को छोड़ कर चल देता है उसी प्रकार यह आत्मा भी अपने निवासस्थान में अनुकूल तथा उचित उपादानों को न देख, इसे छोड़ कर चल देता है। अतः आवश्यक है कि शरीरि के निवास स्थान का उचित सुधार (Repair) होता रहे जिस से शरीरि को अन्यथा विचार का अवसर न मिले। इस पुस्तक में आहार का विचार इस दृष्टि कोण से किया गया है।

शरीर के मुख्य घटकों का वर्णन प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनों मतों से किया गया है और दोनों में क्या सामञ्जस्य है यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है। "भेत्ता हि भेद्यमन्यथा भिनत्ति" (चरक) "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" (उपनिषद) के अनुसार इस पुस्तक में यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है

कि एक ही वस्तु को किस प्रकार भिन्न २ दर्शकों ने भिन्न २ रूप में देखा और समझा है। मानव आहार के मुख्य उद्देश्य में किसी भी विचारक का कोई मत भेद नहीं। दृष्टि कोण तथा वर्णन करने के तरीकों में अन्तर है। एक कहावत मशहूर है कि कुछ अन्धे हाथी देखने गये। किसी ने हाथी के पांव पकड़ कर कहा कि हाथी केले के स्तम्भ सा है, किसी ने सूंड पकड़ कर कहा कि हाथी टेढ़ा-मेढ़ा है, जिसने हाथी का पेट पकडा उसने हाथी को मोटा चपटा पहाड़ जैसा बतलाया। परन्तु आंख वाले ने बताया कि हाथी न चपटा है, न स्तम्भ जैसा है और न टेढ़ामेढ़ा है, अपितु इन सबका समुदाय है। अस्तु-सभी विचारों का सामञ्जस्य करते हुए दिव्य दृष्टि वाले ऋषियों के विचारों के आधार पर मानव-आहार की व्यवस्था करने तथा अर्वाचीन विचारों से उनका सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न इस पुस्तक में किया गया है।

इस पुस्तक के लिखने का एक मात्र उद्देश्य आहार सम्बन्धी तत्त्वों का सर्वसाधारण को परिचय कराना तथा आयुर्वेद-प्रेमियों के हृदयों में आर्षग्रन्थों के प्रति पूर्ण श्रद्धा एवं भक्ति का स्रोत प्रवाहित करना है। हम शुक्ति में तिरोहित मुक्ता को ढूंढने के प्रयास से बचना चाहते हैं और बाजार के कृत्रिम मोतियों के चाकचिक्य में पड़ उसे अपनाने लगते हैं। यदि पाठकों का ध्यान थोड़ा भी इस ओर आकृष्ट हुआ तो हम अपना प्रयास सफल समझेंगे।

इस पुस्तक के लिखने में जिन २ स्थान के व्यक्तियों तथा सस्थाओं ने मुझे सहाय प्रदान किया है उनका मैं आभारी

हूँ। दिवंगत गुरुवर ऋषिकल्प प्रातः स्मरणीय आयुर्वेद रत्नाकर पं० ब्रजबिहारी चतुर्वेदीजी वैद्यरत्न के शुभाशीर्वाद तथा शुभकामनाओं से मुझे इस कार्य में जो आश्वासन मिला है एतदर्थ मैं उनका आजन्म ऋणी हूँ। भिषग्रत्न डा० आचन्टलक्ष्मी पति जी, जिनके उद्योग तथा सत्परामर्श ने मुझे इस कार्य को करने में उत्साह प्रदान किया उन्हें मैं धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। गुरुकुल विश्वविद्यालय के प्रस्तोता, संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ प० वागीश्वरजी विद्यालकार-साहित्याचार्य, इस पुस्तक की भाषा संशोधन करने के कारण मेरे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। साथ ही पं० हरिवंश जी वेदालकार ने इसके प्रूफ आदि देखने तथा प्रेसकापी तैयार करने में सहाय प्रदान किया है इस कारण वे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। झरिया निवासी सेठ अर्जुन दास ने इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ आर्थिक सहयोग दिया है अतः वे भी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। अन्त में गुरुकुल विश्वविद्यालय के अधिकारी वर्ग जिनकी स्वीकृति से यह पुस्तक प्रकाशित हुई है, और जिन्हें इस पुस्तक के प्रकाशन का श्रेय प्राप्त है उनका भी मैं धन्यवाद करता हूं।

रामरक्षपाठकः लेखक--

आहार

पहला अध्याय

"यद् दश्नासि यत्पिबसि धान्यं कृष्याः पयः।
यदाद्यं यदनाद्यं सर्वं ते अन्न[1]मविषं कृणोमि ॥
अथर्व० ८।२।१९॥

"मनुष्य अपनी थाली पर ही बनता वा बिगड़ता है" यह कहावत सर्वत्र प्रसिद्ध है। अतः देहधारी के मन में आहार सम्बन्धी प्रश्नों का सदा उठते रहना स्वाभाविक है। मानवातिरिक्त देहधारी विचार-शून्य होने के कारण तथा अपने भावों को व्यक्त करने में असमर्थ होने के कारण इस पर विशेष विचार नहीं करता; फिर भी अनुकूल आहार से रुचि तथा अननुकूल आहार से अरुचि को ग्रहण वा तिरस्कार-रूपी भावभंगी से प्रकट कर ही देता है। विश्व की विडम्बना में मानवसृष्टि सर्वोत्तम सृष्टि मानी

---

१ "अद्यते ऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते (उपनिषत्) अद् भक्षणे। (जो कुछ खाया जाय उसे अन्न कहते हैं)॥

गई है ; क्योंकि मनुष्य अपने हित और अनहित का विचार कर उसे व्यक्त करता है और वह अपने अध्यवसाय से उस पद तक पहुंचने का प्रयत्न करता है जहां से इस विश्व का अविर्भाव हुआ है। सृष्टिक्रम* का अध्ययन करने से पता लगता है कि जो चेतना पत्थर में सोई हुई है वह पेड़ पत्तों के अन्दर जागृत होती और कुछ २ दुःख सुख आदि का बोध प्राप्त करती है, पशुओं में आकर इन्द्रियानुभूति को पाती है, और अन्त में मनुष्य के अन्दर विचार करने की योग्यता प्राप्त करती है। एक पौदा चाहे जितना भी बड़ा क्यों न हो, विचारशील मनुष्य की महत्ता को कभी नहीं समझ सकता; और न एक पशु के लिए ही समझना सम्भव है। अस्तु; मानव-देहधारी अपने मन में उत्थित स्वाभाविक आहार सम्बन्धी प्रश्नों की सम्यक् मीमांसा करता है और शरीरोपयोगी आहार का आदेश तथा अनुपयोगी का निषेध करता है।

"अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः।"

कोई भी प्राणी आहार के बिना जीवित नहीं रह सकता। यह बात कोई विश्वास वा कथन-मात्र नहीं है किन्तु कार्य रूपेण यथार्थ है। अनुभव से पता चलता है कि यदि किसी प्राण-धारी को आहार से वञ्चित रखा जाय और उसका नित्य तोल किया जाय तो पता चलेगा कि वह नित्य दुर्बल हो रहा है और उसका भार घट रहा है। दुर्बलता ज्यों २ बढ़ती जाती है, इन्द्रियां भी शिथिल होती जाती हैं और वह मनुष्य अकर्मण्य होता हुआ एक-रोज काल के गाल में चला जाता है।

* अर्वाचीन सृष्टि-क्रम।

इन बातों से पता चलता है कि देहधारी प्रतिक्षण अपने परिश्रम[1] से शारीरिक उपादानों का ह्रास करता है और उसकी पूर्ति के लिए जिस द्रव्य की आवश्यकता पड़ती है उसी का नाम 'आहार[2]' है। आहार उन उपादानों को प्रदान करता है जो शरीर की वृद्धि, निर्माण तथा शारीरिक अवयवों के उपयुक्त संचालन के लिए आवश्यक हैं। यह सम्पूर्ण मानव शरीर के कार्यों को साम्यावस्था में रखता है जिससे शरीर रूपी यंत्र अपनी शक्ति पर्य्यन्त कार्य्य करता है[3]। अंग्रेजी में इसे 'फूड[4]' कहते हैं।

---

1 " After the expiration of the hour during which the experiment has lasted, let the man be released and weighed once more. He will be found to have lost weight. (Thomas Huxly)

२ "आह्रियते उपचीयते शरीमनेनेति आहारः। आहार–पु० आहरणे, द्रव्य मात्रस्य गलाधः करणरूपे भोजने च। आ + हृ + घञ्। "निराहाराश्च ये जीवाः "इति स्मृतौ। जलपानेप्याहार शब्दः। कर्मणिघञ्। अन्नादौ भक्ष्ये। (शब्दस्तोम)

" 3. The function of the food is to supply the body with the materials necessary for the growth, maintenance, repair, and efficient functioning of its various organs and structures and in this way to ensure the harmonious working of the whole human machine at its highest level

(Harry Benzamin)

4. " What one feeds on, that which being digested nourishes the body whatever sustains or promotes growth. Br. Ene.

रोगों का मूल कारण कुत्सित आहार

यदि मनुष्य के प्रत्येक रोग के मूल कारण को देखा जाय तो पता चलेगा कि मानव का कुत्सित भ्रमपूर्ण भोजन (आहार) ही उसका उत्पादक है। जो पोषक होता है वही अयथावत् प्रयोग से दूषण का कार्य करता है। एक चालू मशीन को ही लीजिए—यदि उसमें उसे चालू रखने वाले पदार्थ (आहार) को उपयुक्त मात्रा में न दिया जाय, तथा एकदम न दिया जाय तो वह आहार के अभाव से बन्द हो जायगी और अनुपयुक्त मात्रा में आहार मिलने से उचित कार्य न कर सकेगी। यदि इसमें चालू रखने वाले पदार्थ (ईंधन आदि) अधिक मात्रा में दे दिए जाय, तो भी इसके पुर्जे बिगड जायगे।[१] यही दशा इस शरीर की भी है। शरीर जिन २ उपादानों को मांगता है यदि उसे उपयुक्त मात्रा में उपयुक्त समय पर न दिया जाय तो वह ठीक २ कार्य न कर सकेगा। और पोषण के आभाव में वह दुर्बल तथा नाना तरह की आधि-

---

१. "नाभोजनेन कायाग्निर्दीप्यते नातिभोजनात् ।

"काले हितमिताहारो बलायोपचयाय च।

प्रतिक्षण क्षयस्थापि पूरणार्थं स इष्यते ॥

हृत्स्यन्द-श्वास चेष्ठाद्यैः क्षीयमाणेषु धातुषु।

सततं शीर्यते देहस्तस्याहारो हि पूरणः ॥" (गणनाथः)

व्या धयां से परिपूर्ण हो जायगा। व्याधि शरीर के लिये काष्ठगत घूण (क्रिम) के समान है जो अन्दर २ उसे निस्सार तथा निरुपयोगी बना देता है और अन्ततोगत्वा उसका नाश कर डालता है। मानव शरीर एक ऐसा कारखाना है जो स्वयमेव सुव्यवस्थित (Self-adjusting) हो जाता है स्वयमेव नियम बद्धता को प्राप्त होता है (Self-Regu-lating) और स्वयमेव अपना सुधार करता रहता है (Self-Repairing) एव स्वयमेव विकसित भी होता रहता है (Self-Deve-loping) । जो शक्ति उसे सृजती है वही उसकी रक्षा भी करती है। आवश्यकता है केवल उसे उपयुक्त ईंधन (आहार) पहुंचाते रहने की।

शरीर देह और काय विवेचन

'शरीर'[1] शब्दकी व्युत्पत्ति पर यदि विचार करें तो पता चलेगाकि यह शब्द कितना व्यापक तथा सार्थक है। इस शब्द की निष्पत्ति'शॄ'

---

१ "शीर्य्यते इति शरीरः"(शब्द स्तोम , । चीयतऽस्मादिभिः । ,

'Thus a living active man constantly does mechanical work gives off heat, evolves Carbonic Acid and Water and undergoes a loss of substance. Plainly this state of thing could not continue for an unlimited period, or the man would dwindle to nothing,. But long before the effect of this gradual diminution of substance become apparant to a bystander, they are felt by the subject of the expirement in the form of the two imperious

धातु मे 'इरन्' प्रत्यय लगाने से होती है। 'शृ' का अर्थ टुकडे २ होना है। अर्थात् यह शरीर प्रतिक्षण टुकडे २ होता रहता है। यह शब्द इस बात को बतलाता कि शरीर के अन्दर सदा सहार (नाश) की व्यवस्था चलती रहती है। तात्पर्य यह है कि शक्ति तथा उत्तरोत्तर धातुओं के निर्माणार्थ शरीर के अन्दर वह रासायनिक कार्य्य जिसमे कुछ शरीरिक उपादान दूसरे उपादानों को उत्पन्न करने के लिये सदा सहार को प्राप्त होते रहते है, चलता रहता है। इस व्यवस्था को अर्वाचीन विज्ञान 'केटाबोलिक प्रोसेस (Ketabolic process) कहता है इस शरीर का दूसरा नाम देह है जो दिह् धातु से बना हुआ है। दिह् का अर्थ बढना है। यह शब्द इस तथ्य का द्योतन

---

sensations called hunger and thirst To still these cravings, to restore the weight of the body to its former amount, to enable it to continue giving out heat, water and Carbonic acid at the same rate, for an indifinite period, it is absolutely necessary that the body should be supplied with each of three things and with three only. These are fresh air, drinking consisting of water in some shape or other however much it may be adulterated, thirdly food. Food consist of those elements out of which the bodily organs are constituted and nourished.

(Thomas Huxey., E. S. Bibbitt. M. D.,

करता है कि उक्त प्रक्रिया के परिणाम में रचना का कार्य सन्निहित है। इसे अर्वाचीन विज्ञानवेत्ता एनाबोलिक प्रोसेस कहते हैं। इस से यह पता चलता है कि हमारे ऋषियों ने इन दो व्यवस्थाओं (संहार और सृजन) को जतलाने के लिये ही उक्त दो शब्दों का प्रयोग किया है। उक्त संहार और सृजन के लिये इस शरीर के अन्दर सर्वदा उपयुक्त उपादानों का सञ्चय होते रहना परमावश्यक है अतः इसका तीसरा नाम 'काय' रखा गया है। 'काय' शब्द 'चिञ्-चयने' से बना हुआ है। इस प्रकार शरीर के मेटाबोलिक प्रोसेस की अभिव्यक्ति इस तीसरे पर्य्याय से हो जाती है।

प्राणधारी के शरीर के अन्दर यह संहार और सृजन की व्यवस्था सदा चलती रहती है। इस व्यवस्था को अक्षुण्ण रखने के लिये हम सदा उपयुक्त ईंधन (आहार) देते रहते हैं। जब ईंधन की कमी होती है तो उसकी प्रतीति हमें निम्न तीन सवेदनाओं द्वारा होती है- प्यास, क्षुधा, और श्वास। हमारा आहार हमारे शरीरान्तर्गत संहार तथा सृजन की व्यवस्था को अक्षुण्ण बनाए रखता है। इस व्यवस्था में तीन प्रकार के वस्तुओं की आवश्यकता होती है-यथा कुछ ठोस पदार्थों की, कुछ द्रव पदार्थों को और कुछ वायवीय पदार्थों की। हमारे आहार भी मुख्यतः उक्त तीन प्रकार के होते हैं। अतः जब हमारे शरीर के अन्दर द्रव पदार्थ की कमी होती है और उस कमी के कारण हमें जो संवेदना होती है उसे 'प्यास' कहते हैं। और जब ठोस पदार्थ की कमी की संवेदना होती है तो हम उसे क्षुधा नाम देते हैं। इसी प्रकार वायवीय के सवेदना को 'श्वास' कहते हैं।

शरीरोपादान की कमियों को सूचित करने वाली तीन [1]वेदनाएं

प्यास— तृष्णा मानव शरीर के अन्दर जलीयांश की न्यूनता का द्योतक तथा शरीर के पोषण द्रवांश के अभाव की सूचक, श्वसनिका और तालु में उत्तेजना पैदा करने वाली स्वाभाविक व्यथा है। यह सदा मनुष्य को चेतावनी देती रहती है कि तुम्हारे शरीर के अन्दर जलीय पोषक तत्त्व का अभाव हो गया है। यद्यपि यह थोड़ा रक्त-चापाधिक्य से भी हो जाया करती है तथापि शरीर तन्तुओं में उपयुक्त जलीयांश की लेशमात्रा की कमी भी इसके द्वारा द्योतित होती रहती है जो किसी तरल पदार्थ के उपयोग से शान्त हो जाती है। शरीर के अन्दर जलीयांश की कमी से गला तथा अन्य मुखस्थ ग्रंथियों का स्राव बन्द हो जाता है जिससे तालुस्थान तथा गला सूख जाता है और शुष्कता के कारण प्यास लगती है। यह अवस्था लवण प्रभृति आग्नेय पदार्थों के अधिक सेवन से भी उत्पन्न हो जाती हैं। स्थानीय शुष्कता-जन्य तृष्णा स्थानीय तर्पक पदार्थों से भी शान्त हो जाती है। जल का सम्बन्ध उदकवह स्रोतों से है और उदकवह स्रोतों का सम्बन्ध क्लोम के साथ और क्लोम गले तथा तालु से सम्बद्ध है, अतः प्राचीन शास्त्रों में इसकी उत्पत्ति गला, तालु और क्लोम की शुष्कता से मानी गई है।

---

१. पित्तानलौ प्रवृद्धौ सौम्यान् धातूंश्च शोषयतः। रस वाहिनिश्च नाड़ीर्जिह्वा मूल गल तालु क्लोम्नः॥ संशोष्य नृणां कुरुतश्च तृष्णाम्॥ (चरक)

क्षुधा—अर्वाचीन विज्ञान इस स्वाभाविक व्यथा को दो शब्दों से व्यक्त करता है। (१) हंगर और (२) एपेटाइट। क्षुधा का अर्थ वास्तव में हंगर ही रखता है क्योंकि क्षुधा वह संवेदना है जो शरीर के अन्दर ठोस आहार को कमी के कारण उत्पन्न होती है परन्तु एपेटाइट तो एक प्रकार को आमाशयिक उत्तेजना है जो किसी भी भोज्य पदार्थ को देख कर या आमाशय के रिक्त होने मात्र से उत्पन्न हो जाती है। इसे बुभुक्षा कह सकते हैं। मांस-पेशियों के अन्दर जो ओषदी-करण होता है उससे एक प्रकार का द्रव्य पैदा होता है जो आमाशय की सांवेदनिक नाड़ी में उत्तेजना पैदा करता है। यही कारण है कि मधुमेह में अधिक ओषदी करण होने से क्षुधा अधिक लगती है। वस्तुतः यह आमाशय की गतिशीलता का परिचायक होता है; जो बैलून आदि किसी अपाच्य पदार्थ को आमाशय में प्रवेश कराने से प्रतीत हो सकता है। कौलिस ने परीक्षणों से यह पता लगाया है कि ज्यों ही मनुष्य भोजन करता है और ज्यों ही भोजन मुख-कुहर में प्रवेश करता है और चबाया जाता है, जिह्वा की सांवेदनिक नाड़ी द्वारा प्रत्यावर्त्तन (Reflex-action)क्रिया होती है जिससे आमाशयिक उत्तेजना मन्द पड़ जाती है और भूख मिट जाती है। इससे यह प्रतीत होता है कि यह एक स्थानीय उत्तेजना है जो आमाशय के रिक्त होने से होती है अतः यह निश्चित नहीं कि शरीर के अन्दर पोषक तत्त्व की कमी होने से ही यह उत्पन्न हो क्योंकि परिशोषण प्रारम्भ होने के बहुत पूर्व ही भोजन करने पर क्षुधा शान्त हो जाती है। पोलटन तथा उसके मित्रों ने अपने आविष्कारों से यह सिद्ध किया कि है

सच्ची क्षुधा आमाशय में संकोच काल में नहीं उत्पन्न होती वरन जब आमाशय शिथिल होता है तब होती है। इस सम्बन्ध में उनका तर्क है कि आमाशय के अन्दर क्षुधा-काल में एक आयाम (Tension) पैदा होता है जो नाड़ीप्रान्त को दबा देता है। यही आयाम जब मांस-पेशी के अन्दर चला जाता है तो आमाशयिक नाड़ी प्रान्तों मे दबाव कम पड़ जाता है। इस प्रकार अर्वाचीन विज्ञान के लिये क्षुधा का वर्णन अब भी एक रहस्य बना हुआ है। प्राचीन विज्ञान ने इसे स्वाभाविक व्यथा के अन्तर्गत रखा है और इसका सुन्दर वर्णन निम्न प्रकार से किया है:[1] —

शरीर के छः स्वाभाविक व्यथाओं में क्षुधा भी एक व्यथा है जो शरीर के अन्दर जठराग्नि द्वारा धातुओं के शुष्क हो जाने पर उत्पन्न होती है। क्षुधार्त्त मनुष्य के लिये इन्द्रियों का विषय बोध प्रायः असम्भव सा हो जाता है। उसका बल तथा तेज नष्ट हो जाता है।

समस्त जीव-मात्र का मूल आहार

प्रस्तुत पुस्तक में शरीर शब्द से मानव-शरीर मात्र का ग्रहण

---

१. क्षुधा च पिपासा चप्रणस्य मनसः स्मृतौ।
शोक मोहौ शरीरस्य जरा मृत्युः षडुर्मयः॥
यथा भूमिगतं तोयं रवि रश्मिभिः शुष्यति।
शरीरस्य तथा धातुः शुष्यति जठराग्निना॥
न श्रृणोति न चाघ्राति चक्षुषा न च पश्यति।
दह्यते वेपते मूढः शुष्यते च क्षुधार्दितः॥

किया गया है क्यों कि इस पुस्तक का प्रतिपाद्य-विषय 'मानव-आहार' है। आहार बहुत व्यापक शब्द है। भगवान्[1] धन्वन्तरी के इस उपदेश के बाद कि "प्राणियों के बल वीर्य और ओज का मूल आहार है"-वह ६ रसों के आधीन है और रस पुन द्रव्यों के आधीन होते हैं, दोषों का क्षय, दोषों की वृद्धि तथा दोषों की समता, द्रव्यों के रस-गुण विपाक और वीर्य के कारण हुआ करती है। ब्रह्मादि लोक की भी स्थिति उत्पत्ति और विनाश का कारण आहार ही है आहार ही से शरीर की वृद्धि, बल, आरोग्य, वीर्य और इन्द्रियों की प्रसन्नता उत्पन्न होती है, और आहार ही की विषमता से रोग उत्पन्न हुआ करते है। जिसमे भोज्य पेय, लेह्य और भक्ष्य ऐसे चार प्रकार है, जो नाना द्रव्यों से बने हुए हैं। जिसमे खाद्य के नाना प्रकार होते है और जिनके सेवन से शरीर मे बहुविध शक्ति उत्पन्न होती है' महर्षि सुश्रुत ने कहा—' हे

1 "The desire for food depends intimately upon the tissue metabolism by which nature the body waste

प्राणिना पुनर्मूलमाहारो बल वीर्यौजसां च, स षट्सु रसेषु आयत्तः रसा पुनद्रव्याश्रयिणः, द्रव्य रस गुण वीर्य विपाक निमित्ते च क्षयवृद्धी दोषाणासाम्य च, ब्रह्मादेरपि च लोकस्याहारः स्थित्युत्पत्ति विनाशहेतु, आहारादेवाभिवृद्धिर्बलमारोग्य वर्णेन्द्रिय प्रसादश्च, तथा ह्याहारवैषम्याद् स्वास्थ्यम्, तस्याशित पीत लीढ खादितस्य नाना द्रव्यात्मकस्यानेकविध प्रभावस्य''' "आहारायत्ताश्च सर्वप्राणिनोयस्यात्तस्मादन्नपानविधिमुपदिशतु मे भगवान्।" (सु. सू ४६-१)

भगवन्, समस्त जीव-मात्र का मूल आहार है इसलिये मुझे अन्न-पान विधि का ही उपदेश कीजिये।

आहार क्या है? और वह शारीरिक उपादानों की पूर्त्ति या पुष्टि किस प्रकार करता है? यही यहां विचारना है। आहार शारीरिक उपादानों का प्रपूरक है। इसलिए शारीरिक उपादान क्या हैं और उनका आहार के साथ कैसा सम्बन्ध है यह पहले विचारना होगा।

पाञ्च-भौतिक आहार से पाञ्च भौतिक शरीर का पोषण

भारतीय विज्ञान (दर्शन) मानव शरीर को पञ्च[1]महा-भूत और आत्मा एवं मन के संयोग से बना हुआ मानता है। शरीर-विज्ञान दोष-धातु-मल को शरीर का मूल कारण[2] प्रतिपादन करता है। ये दोनों मत परस्पर भिन्न रूपेण वर्णित दिखाई देने पर भी वस्तुतः एक ही हैं। दोनों दो दृष्टि-कोणों से वर्णित हैं। दोष, धातु और मल भी उक्त पञ्च-महाभूत के ही विकार है। अर्थात् उनकी उत्पत्ति पञ्च-महाभूत से ही है। सारांश यह है कि मानव-शरीर पाञ्च भौतिक है अतः इसकी पूर्त्ति तथा पुष्टि के लिये भी पाञ्च भौतिक द्रव्य की आवश्यकता है। द्रव्य[3] (आहार-द्रव्य) पाञ्च भौतिक है। पृथ्वी तल पर सूर्य के ताप तथा जल वायु

---

१. सत्वमात्मा शरीरञ्च त्रयमेतत्त्रिदण्डवत्। लोकस्तिष्ठति संयोगात्, (चरक)

"पञ्च महाभूत शरीरि समवायः पुरुषः" (सु० सू० १)

२. दोषधातु मल मूलं हि शरीरम्" (सु० सू० १५)

३. द्रव्याणि पाञ्चभौतिकानि""सर्वं द्रव्यं पाञ्चभौतिकमस्मिन्नर्थे (चरक)

की सहायता से प्रकृति के उत्पन्न किये हुये शरीरोपयोगी द्रव्य ही 'आहार' हैं। देश, ऋतु और काल के अनुसार वे इस वसुन्धरा पर उगते हैं और पञ्चमहाभूतों के तरतमांश से उनके रस गुण वीर्य विपाक तैयार होते हैं। इस प्रकार पाञ्चभौतिक दोष, धातु और मल वाले मानव-शरीर का पोषण पाञ्च-भौतिक द्रव्य (आहार) से होता है। अर्थात् भुक्ताहार अपने पार्थिवादि अंश से शरीर के पार्थिवादि अंश का परिपोषण करता है। मानव अपने परिश्रमादि से जिन २ अंशों का ह्रास करता है उनकी पूर्ति भुक्ताहार-गत उन-उन अंशों से होती है[1]। क्योंकि समान गुण वाले पदार्थ, स्व-समान गुण वाले पदार्थों की सर्वदा वृद्धि करते हैं।

जिस प्रकार प्राचीन ऋषियों ने शरीर का सूक्ष्म विश्लेषण कर यह पता लगाया कि इसका निर्माण मूलतः दोष (वात-पित्त-कफ), धातु (रस-रक्त-मांस - मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र) और मल (स्वेद- मूत्र-पुरीष) से हुआ है, और यह दोषादि पाञ्चभौतिक हैं अतः तद्गुण विशेषांश द्रव्यों से, परिश्रमादि द्वारा कृत शरीरोपादान के ह्रास की पूर्ति करनी चाहिये। इसी प्रकार अर्वाचीन-विज्ञान ने भी मानव-शरीर का विश्लेषण कर इस शरीर के निर्मायक प्रधान २ (अपेक्षाकृत स्थूल) तत्वों का पता लगाया है। अर्वाचीन-विज्ञान ने शरीर के अन्दर निम्न छः पदार्थों का प्रधानतः अवलोकन किया है। यथा- (१) आमिषा (प्रोटीन)

१. यथा स्वं स्वं च पुष्यन्ति देह द्रव्य गुणाः पृथक्।
पार्थिवाः पार्थिवानेव शेषाः शेषां स्वकृत्स्नशः" (च. चि० १५)

२. सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम् (च० सू० १)

(२) शर्करा-जन्य पदार्थ (कार्बोहाइड्रेट) (३) वसा-जन्य (फैट) (४) लवण (साल्ट) (५) जल (वाटर) और (६) प्राणद (विटामिन)। उनका कहना है कि शरीर के उक्त उपादान परिश्रमादि से सदा क्षीण होते रहते हैं अतः हमें सदा इनकी पूर्ति के लिये सतर्क रहना चाहिए। उक्त उपादानों में से जिसकी कमी होती है शरीर में उस उपादान से बनने वाले अवयव दुर्बल हो जाते हैं।

षडरस भोजन तथा छः तत्वों से युक्त भोजन

प्राचीन-विज्ञान षडरस[1] भोजन का उपदेश करता है और अर्वाचीन-विज्ञान उक्त ६ तत्वों युक्त भोजन का आदेश करता है। दोनों ही अपने सिद्धान्तानुकूल स्वास्थ्य-वर्धक आहार का निर्देश करते हैं। एक मानव-शरीर को पाञ्चभौतिक दृष्टिकोण से देखता है; तो दूसरा इस शरीर के निर्माण में आधुनिक विश्लेषण के अनुसार प्रोटीनादि नाना तत्वों का अवलोकन करता है। दोनों का लक्ष्यबिन्दु एक होने पर भी विचार-सरणी भिन्न २ हैं। यदि यह कहा जाय कि अर्वाचीन विचारधारा जहां समाप्त होती है वहां से प्राचीन विचारधारा का श्री-गणेश होता है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। कारण स्पष्ट है, क्योंकि जहां प्राचीन विज्ञान का पञ्च-भौतिक तत्व अपने स्थूल रूप में परिणत होकर परमाणु, अणु, द्व्यणुक तथा त्रसरेणु आदि के स्वरूप में अभिव्यक्त होते हैं वहां अर्वाचीन विश्लेषण विराम करता है। उदाहरणार्थ, कुछ रोज पहले संसार के पदार्थों के मूल उत्पादक तत्वों का अन्वेषण कर ६२

[1] "षड्रस मधुरप्रायं भुञ्जीत"।

तत्वों का पता लगाया गया था और यह घोषित किया गया था कि इन प्रत्येक तत्वों के भिन्न २ अणु होते हैं और इन भिन्न २ अणुओं के परस्पर समवाय से संसार के सूक्ष्मतम से लेकर बृहत्तम पदार्थों का निर्माण होता है। अणु (Atoms) उस समय तक अविभाज्य समझा गया था, परन्तु क्वाय-टम सिद्धान्त ने इस पर हरताल फेर दी और यह प्रमाणित किया कि अणु दो शक्तियों धनविद्युत तथा ऋणविद्युत (Electrone & Protone) से निर्मित है और इन्हें स्पेस की आवश्यकता होती है। परन्तु प्राचीन विज्ञान का पञ्चमहाभूत उस प्रकृति के अहम् अवस्था का स्थूलतम विकार है जो सृष्टि का मूल कारण होने पर भी स्वयं अकारण है। यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि प्राचीन विज्ञान का पञ्चमहाभूत प्रत्यक्ष होने व ले पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश नहीं। यह तो उनके समवाय की स्थूलाभिव्यक्ति है जिनका तद्गुण बाहुल्य से व्यपदेश होता है. परन्तु इन स्थूलभूतों से ही सूक्ष्म भूतों का अनुमान होता है।१

षड्रसोत्पत्ति

षडरसों की उत्पत्ति भी पञ्च-महाभूतों से ही है; यथा— मधुर रस के प ञ्चभौतिक होने पर भी इस में पृथ्वी और जल का बाहुल्य है। इसी प्रकार अम्लरस मे अग्नि और पृथ्वी बाहुल्य है, लवण रस मे जल और अग्नि का बाहुल्य है, तिक्तरस मे वायु और

---

१. "सूक्ष्म भूतानां स्थूलभूतैरनुमानं भवति"।

२. "क्ष्मांभोऽग्निक्ष्मा- म्बुतेज ख- वायु अग्न्यनिल गोनिलैः।
द्वयोल्बणैः क्रमाद् भूतैर्मधुरादिरसोद्भवः." "(अ० ह० सू० २०)

आकाश का बाहुल्य है, कटुरस मे वायु और अग्नि का बाहुल्य है और कषाय रस में पृथ्वी और वायु का बाहुल्य है। आहार द्रव्य षड्रस होते है। इससे शारीरिक उपादानों की पुष्टि होती है। क्योंकि शारीरिक उपादान अर्थात दोष धातु भी पाञ्चभौतिक हैं। यथा-वात पञ्चभौतिक होने पर भी वायु और आकाश गुण विशिष्ट है, पित्त आग्नेय और कफ पृथ्वी तथा जलगुण विशिष्ट होता है। इसी प्रकार रसअप-बाहुल्य, रक्तजलाग्नि-बाहुल्य, मांसपृथ्वी-बाहुल्य, मेद पृथ्वी और जल बाहुल्य, अस्थि पृथ्वी-वायु और अग्निबाहुल्य, मज्जा और शुक्र-जल और वायु बाहुल्य तथा अर्त्तव पृथ्वी और अग्नि बाहुल्य हैं। इस प्रकार:[1]—

पोषक———————पोष्य

पाँच भौतिक	मधुर	षड् रस	पाँच भौतिक	कफ	त्रिधातु
	अम्ल				
	लवण			पित्त	
	कटु				
	तिक्त			वात	
	कषाय				

अर्थात्-षड् रस भोजन से शरीर के मूल भूत उपादान कफ पित्त और वात का पोषण होता है।

---

१. "तत्र दोषमेकैकं त्रयस्त्रयो रसा जनयन्ति"... ....रस दोष सन्निपाते तु ये रसा यैर्दोषैः समान गुणाः समानगुणाभूयिष्ठा वा तैस्तामभिवर्धयन्ति ? (चरक वा० १)

पुष्ट, कफ, पित्त वात शरीर के धातु रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा और शुक्र का पोषण करते हैं। इनमें मधुराम्ल-लवण कफ को, कटु-तिक्त-कषाय वात को और लवणाम्ल-कटु पित्त को परिपुष्ट करते हैं।

पोषक				पोष्य	
पाञ्चभौतिक	वात	त्रिधातु	पाञ्चभौतिक	रस	सप्तधातु
				रक्त	
	पित्त			मांस	
				मेद	
	कफ			अस्थि	
				मज्जा	
				शुक्र	

आहार-भेद[1]—मानव का आहार तीन प्रकार से होता है। प्रथम तथा मुख्य आहार प्रकृति देती है अर्थात् वायु, जल और ताप हम प्रकृति से पाते हैं। दूसरा आहार प्रकृति की देन होने पर

१. "तत्र पाञ्चभौतिकस्य चतुर्विधस्य षड्रसस्य द्विविधवीर्यस्याष्ट-विधवीर्यस्य वा अनेकगुणस्योपयुक्तस्याहारस्य सम्यक् परिणतस्य .....। .... (सु. सू. १४)
"पञ्चभूतात्मके देहे आहारः पाञ्चभौतिकः"। पेय-लेह्य-भक्ष्य-भोज्य। शीतोष्ण शीत: उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष विशद, पिच्छिल, मृदु, और तीक्ष्ण। अनेक गुण; २० गुण।

भी हमारे परिश्रम सापेक्ष्य है। और तीसरा आहार शारीरिक अन्तःस्रावी ग्रंथियां देती हैं। पहले और दूसरे आहार की ही विवेचना की जायगी। यह आहार मधुरादि भेद से ६ प्रकार का, पेयादि भेद से ४ प्रकार का, वीर्य भेद से २ प्रकार का और भूतांश भेद से ५ प्रकार का होता है। पञ्चभूतात्मक, च विंध, षड्रसात्मक, द्विविध या अष्टविध वीर्यात्मक, और अनेक गुणात्मक यथा-विधि भोजन, परिपक्व हो, प्रसाद रूप से रसादि धातुओं का पोषण करता है। अर्वाचीन विज्ञान का प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फायट, साल्ट, जल और विटामिन भी वही कार्य करता है।

जिस प्रकार किसी मशीन को चालू रखने के लिए उसमें ताप की आवश्यकता पड़ती है और ताप उत्पन्न करने के लिए ईन्धन देना पड़ता है; उसी प्रकार मानव शरीर रूपी मशीन को भी चालू रखने के लिए ताप या शक्ति की आवश्यकता पड़ती है और शरीर के ताप को अक्षुण्ण रखने के लिए ईंधन[1] (आहार)

---

1. "Since we know, that oxygen is a constant requirement of the body, specially of the nerve tissue and that oxygen is required to burn carbohydrates, it is reasonable to assume that failure of the fuel snpply will stop essential metobolism, effecting the nervous system which does not store fuel and eventually causing unconciousness and death from resperatory failure.— (Halliburton) ।

की आवश्यकता पड़ती है। ईंधन के अभाव से ताप का क्रमशः अभाव होने लगता है और ताप के अभाव में मशीनवत् शरीर अकर्मण्य हो जाता है। ईंधन[1] के अभाव में शारीरोष्मा (कायाग्नि) अपने को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिये शरीरोपादानों को जलाने लगती है। जिससे शरीरोपादान का क्रमशः विनाश होने लगता है। इस प्रकार शरीरोपादान के समाप्त हो जाने पर शारीरोष्मा का क्रमशः लय होने लगता है। ताप के लय होने से जीवन का भी लय हो जाता है क्योंकि ताप ही जीवन है।[2] इसीसे वेदों में अग्नि का नाम "तनूनपात्" अर्थात् "तनून् न पातयति" ऐसा आया है। अतः शारीरिक ताप को बनाए रखने के लिए तथा आवश्यक धातु निर्माण के लिये उपयुक्त आहार का होना परमावश्यक है।[3]

आहार के शरीर में दो कार्य: धातु निर्माण और शक्ति निर्माण

आहार शरीर में जाकर दो कार्य करता है—एक धातु निर्माण और दूसरा शक्ति निर्माण। प्रथम कार्य अर्थात् धातु-निर्माण (Tissue building.), आहार के प्रोटीनांश से होता है और दूसरा कार्य

---

१ "स यदा नेन्धन युक्तं लभते देहजं तदा। रसं हिनस्ति ··· (चरक)

२ "अन्नाभावे पचेद् धातून् धात्वभावे पचेदसून्।"

३ "बलमारोग्यमायुश्च प्राणाश्चाऽग्नौ प्रतिष्ठितः॥" (चरक)

"हिताभिर्जुहुयान्नित्यं अन्तराग्निं समाहितः। अन्न पान समिधिभिः"

शक्ति निर्माण (To act as a source of energy.) भोजन के उस अंश से होता है जिसे कार्बोहाइड्रेट और फैट कहते हैं। जल भोजन का तरल मिश्रण बना देता है जो परिभ्रमण, परिशोषण, धातुनिर्माण तथा मल-निःसारण के लिए आवश्यक है। लवण पाचन तथा धातु निर्माण में सहायक होता है। उक्त सारी क्रियाओं का नियामक विटामिन है। उपयुक्त तथा यथाविधि सेवन किये हुए भोज्य-पदार्थों के शोषण तथा सात्म्यीकरण के लिये दो बातों की अत्यन्त आवश्यकता होती है। पहली बात यह कि उन पदार्थों का अत्यन्त सूक्ष्मकणों में भौतिक विघटन होना चाहिए। यह कार्य दाँतों से चर्वण, पाचक रसों के जलांश तथा अन्त्र के आकुंचन से होता है। जो पदार्थ इस प्रकार महीन नहीं बनते हैं वे पोषण योग्य होने पर भी शोषित नहीं हो सकते और अन्य त्याज्य पदार्थों के साथ गुदद्वार से बाहर निकल जाते हैं। इसका कारण यह है कि खाद्य पदार्थों को शरीर-पोषण के लिए आन्त्र की श्लैष्मिक कला से होकर रक्त में पहुंचाना पड़ता है इसलिये जो पदार्थ इस कला में प्रवेश योग्य सूक्ष्म नहीं बनते उनका भोजन में होना न होने के बराबर है। दूसरी बात यह है कि इन खाद्य पदार्थों की सम्यक् परिणति या पचन का होना आवश्यक होता है। यह पचन लाला, जाठररस, पित्त, आन्त्ररस, अग्न्याशयरस आदि की क्रिया से होता है। पचन-क्रिया द्वारा मूल खाद्य पदार्थों का रासायनिक विश्लेषण (रूपान्तर, रसान्तर, और द्रव्यान्तर) होकर नये छोटे २ अणु वाले यौगिक बनते हैं जो आंत्र की श्लैष्मिक कला से होकर रक्त में पहुँचते हैं।

इस प्रकार के परिवर्तन के बिना शरीर-रूपी इमारत नहीं तैयार हो सकती है। इसका कारण यह है कि जो पदार्थ हम सेवन करते हैं उनसे अत्यन्त भिन्न प्रकार का पदार्थ शरीर के अन्दर होता है। जब तक खाद्य पदार्थ को छोटे अणु वाले यौगिकों में परिणति नहीं होती, तब तक शरीर के पदार्थ इनसे नहीं बन सकते। यदि एक पुराने मकान से हम एक नया मकान बनाना चाहें तो प्रथम पहले मकान का परिवर्तन ईंट, चूना, मिट्टी इत्यादि यौगिकों में करना चाहिए। तत्पश्चात् उनमें से नये मकान के लिए योग्य मसाले का उपयोग करके नया मकान बनाकर त्याज्य वस्तुओं को फेंक देना चाहिए।

आहार-रस का निर्माण और हृदय में पहुँचना

शरीर में ही खाद्य पदार्थों को परिणति होने के पश्चात वे रक्त में पहुँचते हैं। पुनः इन परिणत पदार्थों से शरीर के सेल (धातु) अपने विशिष्ट प्रकार के पदार्थ बना लेते हैं। परिणति के समय जो शरीर के लिए अयोग्य होते हैं वे मल रूप में शरीर के बाहर उत्सर्जित होते हैं। शरीर-पोषण योग्य खाद्य पदार्थों का पाचक रसों द्वारा विश्लेषित अंश, जो तैयार होता है, उसे 'रस'[1] कहते हैं। खाद्य पदार्थों में मांस जातीय (प्रोटीन), मेद जातीय (फैट) और शर्करा जातीय (कार्बोहाइड्रेट) पदार्थ

---

१ "तत्र पाञ्चभौतिकस्य चतुर्विधस्य षड्रसस्य द्विविध वीर्यस्याष्टविध वीर्यस्य वा अनेक गुणस्योपभुक्तस्याहारस्य सम्यक् परिणतस्य यः तेजोभूत सारः परम सूक्ष्मः स रस इत्युच्यते।" (सु॰ सू॰ ४१)

अधिकांश होता है। इनके अतिरिक्त जल और खनिज लवण भी होते हैं। इन में से मेद जातीय पदार्थ का शोषण क्षुद्रान्त्रस्थ रसांकुरों (Villi) द्वारा होकर वह रस प्रथम रसप्रपा (CisternaChyle) में पहुँचता है। वहां से मुख्य रस-कुल्या में से होकर अक्षाधरा शिरा (Sub clavian vein) में रक्त के साथ मिलता है और उत्तरा महाशिरा के द्वारा हृदय में पहुँचता है। मांस और शर्करा जातीय पदार्थों का रस प्रतिहारिणी शिरा (Portal Veins) की शाखाओं द्वारा रक्त के साथ यकृत् में जाता है। वहां इस रस के ऊपर यकृद्रस का कुछ कार्य होने के पश्चात् वह रस अधरा महाशिरा द्वारा हृदय में पहुँचता है। खनिज पदार्थ और जल शिरा तथा लसिकावाहिनियों द्वारा हृदय में आते हैं। इस प्रकार आहार-रस दो भिन्न २ मार्गों द्वारा हृदय में पहुँचता है।

उपरोक्त आहार के प्रोटीन आदि अंशों का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है। वह इस प्रकार है:—

१. प्रोटीन—इसे आमिक्षा या आमिषांश या छाना जातीय पदार्थ भी कहते हैं। यह मत्स्य, मांस, डिम्ब, छाना, दाल, गेहूँ, यव प्रभृति द्रव्यों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। शीत-प्रधान देश वासियों के लिए एतद्विशिष्ट-जातीय पदार्थ विशेष प्रिय तथा उपयोगी होता है। इनके अनेक प्रकार होते हैं जो दो जातियों में विभक्त हैं। (१) प्राणिज (Animal) और (२) वानस्पतिक (Vegetable)। शरीर में यह विशेषकर मांस-निर्माण के लिए होता है।

२. कार्बोहायड्रेट— यह शर्करा जातीय पदार्थ है। आटा मैदा, चावल, प्रभृति अन्नों में एवं गुड़, चीनी मिश्री प्रभृति मधुर द्रव्यों में यह होता है। यह उष्ण-प्रधान देशवासियों के लिए विशेष उपयोगी है। यह बलवर्धक होता है और शरीर के अन्दर शक्ति उत्पन्न करता है।

३. स्नेह-वस्तु—माखन, घृत, तैल, चर्बी प्रभृति में यह प्रधानतः पाया जाता है। शरीर-रक्षा के लिए इसकी विशेष उपयोगिता है। अन्यान्य खाद्यों की अपेक्षा शरीर में इसकी मात्रा अधिक रहती है। यह विशेषकर बल तथा ताप को बढ़ाता है। अतः शीतकाल में शारीरिक ताप-रक्षा के लिए यह अत्यावश्यक है।

४. लवण— अनेक प्रकार के खनिजों से उत्पन्न लवण सभी खाद्य पदार्थों में न्यूनाधिक परिमाण में रहता है। शरीर-रक्षा के लिए इसकी विशेष उपयोगिता है, इसका कारण यह है कि रक्त-मांस-अस्थि प्रभृति शरीर के धातु-समूह में नाना प्रकार के पार्थिव लवणाक्त पदार्थ रहते हैं। इनके अभाव से स्वास्थ्य-भंग होता है। लौह-ताम्र प्रभृति धातु, रक्तादि धातुओं में वर्त्तमान रहते हैं, इसलिए आवश्यक लवणों से युक्त खाद्य शरीर-रक्षा के लिए आवश्यक है।

५. जलीयांश या आप्य भाग—यह प्रायः सभी खाद्यों में प्रचुर परिमाण में रहता है। इसके बिना भुक्त पदार्थ का परिपचन हो ही नहीं सकता।

६. विटामिन (प्राणद)—पूर्वोक्त पांच प्रकार के स्थूल उपादानों के अतिरिक्त एक प्रकार का जीवन-शक्ति वर्धक सूक्ष्म-

पदार्थ नानाविध खाद्य पदार्थों में रहता है, इसे प्राणद या जीवनी-वस्तु (Vitamin) कहते हैं। रसायनाचार्य डा० चुनी लाल वसु इसे 'खाद्य प्राण' कहते हैं। इसकी विशेष चर्चा आगे के प्रकरणों में की जायगी।

भ्रम-निराकरण—इस प्रकार दो तरह के विचार हमारे सामने उपस्थित हैं। दोनों ही अपने २ स्थल पर अपने २ दृष्टि-कोण से सत्य, शिव और सुन्दर हैं। एक पाञ्चभौतिक शरीर का पाञ्चभौतिक आहार से पोषण करने को कहता है तो दूसरा (अर्वाचीन) शरीर के निर्मायक अंश जो खाद्य पदार्थों में प्राप्य हैं (प्रोटीनादि), उनसे इस शरीर के पोषण की व्यवस्था करता है। प्राचीन विज्ञान (आयुर्वेद) संसार के सभी पदार्थों को तथा इस शरीर को पाञ्चभौतिक मानता है। उक्त प्रोटीनादि भी उसका दृष्टि में पाञ्चभौतिक हैं। पञ्चमहाभूत के तरतमांश से ही उनकी भी निष्पत्ति है। प्रोटीन आदि के सूक्ष्म विश्लेषण से पता चला है कि ये नाना सूक्ष्म तत्वों के संयोग से बने हैं। यथा - प्रोटीन—यह प्रधानतः कार्बन, हाईड्रोजन, नाइट्रोजन, औक्सिजन और गन्धक प्रभृति के योग से बना हुआ है। प्रधान प्रोटीनों में अल्व्युमेन, केसीन, ग्लुटेन, मायोसिन, ग्लोब्युलोन, और फाइब्रीन आदि हैं। कार्बोहाइड्रेट-यह शर्करा जातीय पदार्थ, कार्बन औक्सिजन और हाइड्रोजन का यौगिक है। परन्तु इस में औक्सिजन इस मात्रा में रहता है कि यदि इसमें और हाईड्रोजन मिलाया जाय तो यह तरल बन जाय। प्रधानतः स्टार्च, इक्षुशर्करा। ग्लुकोज, डेक्सट्रोज तथा लैक्टोज आदि हैं। वसा (फैट) भी कार्बन,

ऑक्सीजन और हाईड्रोजन का ही यौगिक है पर इस में ऑक्सीजन की मात्रा न्यून रहती है। इसी प्रकार जल और लवण की भी व्यवस्था है।

षड्रस भोजन का उपदेश करने के कारण यदि कोई उसे अवैज्ञानिक कह बैठता है और प्रोटीन आदि युक्त भोजन व्यवस्था करने वालों को विज्ञान का ठेकेदार बता देता है तो हमें समझना चाहिए कि इस कथन में कोई तथ्य नहीं अपितु कोई राजनैतिक स्वार्थ छिपा हुआ है। वस्तुतः ये दोनों ही विज्ञान-पूर्ण विचार हैं. आवश्यकता है हमें उसको तह में पैठने की। एक सृष्टि के सूक्ष्मतम उपादान को लेकर आगे बढ़ता है तो दूसरा स्थूलतम से सूक्ष्म की ओर जाने की चेष्टा करता है। निम्न कतिपय उदाहरणों से यह और भी स्पष्ट हो जायगा

आहारोपदेश

आयुर्वेद उपदेश करता है कि मानव आहार ऐसा होना चाहिए जो "अनुत्पन्न व्याधियों को उत्पन्न न होने दे और स्वास्थ्य वर्धक हो।"[1] "भोजन षट्रस और मधुरप्राय होना चाहिए।

---

१. "तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्त्तते। अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत्॥ (सु सू० ५)

"षड्रस मधुरप्रायं भुञ्जीत"

"विशिष्टमिष्टसंस्कारैः पथ्यैरिष्टैरसादिभिः। मनोज्ञं शुचि नात्युष्णं प्रत्यग्रमशनं हितम्॥

षष्टिकान् शालि मुद्गांश्च सैंधवामलके यवान्। आन्तरिक्षं पयःसर्पिर्जांगलं मधु चाभ्यसेत्॥" (चरक)

भोजन इष्ट रसों से युक्त तथा विशेष प्रकार से सुसंस्कृत मनोज्ञ पवित्र, स्वच्छ और ताजा हो। यह षष्ठि-धान्य मूग, सैंधव, आमला, यव, अन्तरिक्ष जल, दूध, घृत, मांस रस, और मधु युक्त हो॥" यदि उक्त भोजन व्यवस्था को विचार पूर्वक देखें तो पता चलेगा कि अर्वाचीन[2] विज्ञान का प्रोटीनादि आवश्यक भोजनांश किस प्रकार उस मे सुव्यस्थित है। यह और भी स्पष्ट हो जायगा जब उक्त द्रव्यों के भोजनाशों (प्रोटीनादि) को आगे की सारिणी मे हम देखेंगे। इन सारी बातों को जानने के

---

2. The right kind of food for Indian children and, indeed for children in any country is one made up of the following simple things. (1) Any whole cereal grain or mixture of cereal grain (2) plenty of milk and the product of milk curds, butter-milk, butter ghee (3) sprouted pulse; (4) Eggs or liver, or meat or fish, occasionally, if religion permits their use; (5) Tuber and root vegetable (6) Abundant of green leafy vegetabls, and (7) Fruits—these are the things with which appetite should be satisfied; the things that should be eaten for health sake. Sir. Robert. M C. Carresson (food)

बाद हम एक ही नतीजे पर पहुंचेंगे कि प्राचीन तथा अर्वाचीन भोजन व्यवस्था में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है। अन्तर केवल कहने के तरीकों में है जो अपने २ मूल सिद्धान्तों के अनुकूल सही वा दुरुस्त हैं।

द्रव्य विश्लेषण की आर्षपद्धति अर्वाचीन पद्धति से बिल्कुल भिन्न है। आज कल भारतीय द्रव्यों का जो विश्लेषण अर्वाचीन ढंग से हो रहा है और उसमें यत्र तत्र मत भेद सा दिखाई पड़ रहा है इसका कारण विश्लेषण पद्धति के मूल सिद्धान्त में अन्तर होना ही है। इन्हीं सब बातों का अवलोकन करते हुए भारतके सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० आचन्ट लक्ष्मीपति भिषग्रत्न B.A.MB.C.M. ने निखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल के अध्यक्ष पद से ठीक ही कहा था कि "देश भर में बहुत-सा रुपया लगा कर अपनी प्रणाली के अनुसार अन्वेषण-प्रयोग-शालाएँ स्थापित की गई हैं; ताकि भिन्न २ प्रान्तों में वैद्य जिन द्रव्यों का औषध में प्रयोग करते हैं, उनके मूलगुण अन्वेषण द्वारा मालूम कर लिए जायें। मेरी तुच्छ सम्मति में उनके अन्वेषण के ढंग एक पक्षीय हैं और उनका श्री-गणेश ही त्रुटि-पूर्ण है। आवश्यकता तो इस बात की है कि रोगोपचार में वैद्य जिस पद्धति पर चलते हैं उसका विधिपूर्वक और भली-भाँति अवलोकन किया जाय। अन्वेषण की वर्त्तमान प्रणाली व्यय साध्य ही नहीं; किन्तु आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार वैज्ञानिक भी नहीं है।"

प्राचीन तथा अर्वाचीन भौतिक दृष्टिकोण

यद्यपि दोनों के विश्लेषण-सिद्धान्त भौतिक ही हैं फिर भी प्राचीन भौतिकवाद आध्यात्मवाद की ही स्थूल अभिव्यक्ति है। प्राचीन भौतिकवाद का आधार आध्यत्मवाद है। परन्तु अर्वाचीन भौतिकवाद ऐसे पदार्थों का अस्तित्व नहीं स्वीकार करता जो वैज्ञानिक विश्लेषणों द्वारा प्रत्यक्ष न होता हो। निःसन्देह आयुर्वेद ने भी "भूतेभ्यो हि परं यस्मान्नास्ति चिन्ता चिकित्सिते" ऐसा कहा है, फिर भी उसका चिकित्स्य पुरुष, शरीर सत्व और आत्मा का समवाय रूप है।[1] सृष्टि क्रम का निर्देश करते समय भी उसने ईश्वर, जीव, आत्मा, प्रकृति, पुरुष, आदि वेदान्त तथा सांख्य की शरण ले ही ली है। आयुर्वेद का सृष्टि विकास सांख्य के मूल प्रकृति से प्रारम्भ होता है पर अर्वाचीन विज्ञान सृष्टि की उत्पत्ति नीहारिका (नेब्युला) से मानता है।

जहां आयुर्वेद सांख्य मतानुसार यह कहता है कि त्रिगुण अर्थात् सत्व, रज और तम को साम्यावस्था (प्रकृति) में विषमता उत्पन्न होती है तो उसमें विकार उत्पन्न होते हैं। अर्थात् प्रकृति का पुरुष के साथ सम्पर्क होने से प्रकृति में विक्षोभ या विषमता उत्पन्न होती है और तब उसमें परिणति होने लगती है। प्रकृति का

---

१. "सत्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत्त्रिदण्डवत्। लोकस्तिष्ठति संयोगात्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ स पुमांश्चेतनं तच्च तच्चाधिकरणं स्मृतम्। वेदस्यास्य तदर्थं हि वेदोऽयं सं प्रकाशितः॥" (चरक:)

प्रथम परिणाम सत्वभूयिष्ठ होता है। अतः उसे महत्तत्व या बुद्धि तत्त्व कहते हैं। इस तत्व के उत्पन्न होनेके बाद अहंभावका आविर्भाव होता है जिसे अहंकार कहते हैं। यह अहंकार त्रिगुणात्मिका प्रकृति का विकार होने के कारण तीन प्रकार का होता है। वैकारिक(सात्विक) तैजस (राजसिक), और भूतादि (तामसिक)। बाद में सात्विक अहंकार से राजसिक की सहायता से एकादश इन्द्रियों की; और तामसिक अहंकार से और राजसिक की सहायता से पञ्च-तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। पञ्चतन्ममात्राओं से पञ्चमहाभूत उत्पन्न होते हैं और पञ्चमहाभूतों के तरत मांश योग से संसार के सूक्ष्मतम से लेकर बृहत्तम पदार्थ अर्थात् परमाणु से पहाड़ तक उत्पन्न होते हैं।

अर्वाचीन विज्ञान जबतक किसी वस्तु का प्रत्यक्ष नहीं कर लेता, उसके अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। अबतक; जहां-तक अर्वाचीन विज्ञान ने इस दिशा में प्रगति की है वह धन विद्युत् तथा ऋण विद्युत् नाम की दो शक्तियां हैं जो दिक् (Space) के अन्दर एक के पीछे दूसरी नाचती रहती हैं। यह प्रगति हमें स्पष्ट संकेत करती है कि वह दिन दूर नहीं जब उक्त विज्ञान भी अपनी चरम सीमा पर पहुँचेगा तब हमें उनकी क्रमोन्नति में न्याय वैशेषिक, सांख्य, योग तथा वेदान्त के बीज स्पष्ट रूपेण प्रस्फुटित दीख पड़ेंगे। इसी प्रकार मानव शरीर रचना आदि के वर्णन में भी जो मतभेद इतस्ततः दिखाई पड़ते हैं उनके भी कारण यही हैं। एक अनन्त की ओर से आता है और दूसरा अनन्त की ओर

जाने के प्रयास में संचेष्ठ है। समय की अपेक्षा है अर्थात् जब दूसरा भी अनन्त तक पहुँच जायगा तब दोनों का मार्ग एक हो जायगा अन्त में—

"आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद्देहधारकः।
आयुस्तेज समुत्साहस्मृत्योजोऽग्नि विवर्द्धनः॥"

—०—

दूसरा अध्याय

आहार विश्लेषण

भारतवर्ष शाकभोजी है

भारतवर्ष गरीबों का घर बन गया है। भारतवर्ष की समस्या अन्य देशों की समस्या से सर्वथा भिन्न है। यह मुख्यतः शाकाहारी देश है। मांस से उपेक्षा न करने वाले भी मुख्यतः शाक का ही व्यवहार करते हैं। कभी कभी थोड़ा मीन-मांस का व्यवहार कर लेते हैं। हमारे देश में अन्न पर्याप्त राशि में उत्पन्न होता है। अतः आमिष भोजन ने यहां 'अन्न' का स्थान, अन्य देशों की तरह कभी नहीं ग्रहण किया। इस देश की अधिकांश जनता किसान है और इनके बाद दूसरे जो हैं वे मजदूरी और अन्य धन्धा करने वाले हैं। आज की सभ्यता (पाश्चात्य सभ्यता) में आने वाले लोगों की संख्या नगण्य है। विशेष कर बृटिश शासन-प्रणाली ने इस देश की बहुसंख्यक जनता को गरीब बना दिया है। जिन्हें साल भर परिश्रम करने पर भी भर पेट अन्न के लाले

पड़े रहते हैं भला उन्हें निकृष्ट आमिष भोजन के लिए अधिक पैसे कहां से मिलें ? भारत वर्ष का जल वायु भी उन्हें शाकभोजी बने रहने के लिए बाधित करता हैं। आमिष भोजन मानव मात्र के लिए ही अनुपयुक्त होता है।

मनुष्य कभी भी मांस खाना पसन्द नहीं करता। उसे मांस के प्रति स्वभाविक घृणा होती है। यदि किसी मनुष्य को मांसघर (स्लटर हाउस) में निवास करने के लिये कहा जाय चाहे वह भले ही मांसहारी हो, वहां रहना वह कभी पसन्द नहीं करेगा। परन्तु वही स्थान एक हिंसक जन्तु (मांसाहारी जन्तु) के लिये बड़ा ही रुचिकर होगा। और ठीक उसी प्रकार मनुष्य के स्वाभाविक भोजन फल-फूल-कन्द-मूल-घृत-दुग्ध तथा अन्न से परिपूर्ण भवन मनुष्य के लिए आह्लादमय होगा। इन सब बातों से पता चलता है कि मनुष्य का स्वाभाविक भोजन मांस कदापि नहीं हो सकता। आज जो मांस खाने का फैशन सा चल गया है वह हमारे अन्य अनुचित तथा कुकृत्यों का परिणाम मात्र है। हम फैशन - वश बिगड़े हुए जिह्वा के स्वाद को तृप्त करने के लिये इच्छा न होने पर भी, मांस खाने की आदत बना लेते हैं और इस प्रकार अपनी बिगड़ी आदतों को छिपाने के लिए उसके अन्दर तरह २ के गुणों का अवलोकन करने लग जाते हैं। निम्न कतिपय उदरणों से पता चलेगा कि मनुष्य के अवयव किस प्रकार उन हिंसक तथा मांसाहारी जन्तुओं के अवयवों से भिन्न रूप से बने हुए हैं कि इनके लिये मांस कभी भी उपयुक्त नहीं हो सकता।

(१) डा० एलेकजेन्डर हैग एम-ए. एम. डी अपने "पथ्य और आहार" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं—'मानव भोजन तथा उनके दांतों की बनावट के सम्बन्ध में मुझ से बहुधा प्रश्न किया गया है। यह प्रश्न एक बड़ी व्यापक शरीर-शास्त्र की अनभिज्ञता का परिणाम मात्र है। निम्न दो तथ्य इसका समुचित निरूपण करने में समर्थ हो सकेंगे। एक शब्द में इसे हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं कि विधाता ने मनुष्य के दांत न मांस काटने के लिये, न उसके विषाक्त लवण को सहने के लिये दिए हैं। परन्तु मांस-भक्षी पशुओं को यह सुविधा प्राप्त है।" तुलनात्मक शरीर विज्ञान का अध्ययन हमें संकेत करता है कि मानव शाकाहारी जीव है।

(२) फ्रांस के प्रसिद्ध प्रोफेसर बैरन कुभोयर ने कहा है- "मनुष्य के शारीरिक अवयवों की रचना शाकाहारी जन्तुओं से हर प्रकार से मिलती है परन्तु मांसाहारी जन्तुओं से कुछ नहीं मिलती है।"

(३) प्रोफेसर विलियम लौरेन्स, एफ. आर. एस. ने अपने तुलनात्मक शरीर शास्त्र के व्याख्यान में कहा है कि "मनुष्य के दांतों की रचना मांसाहारी जन्तुओं के दांतों से सर्वथा भिन्न होती है"

४) प्रोफेसर जौन रे, एफ. आर. एस. कहता है—"मनुष्य कभी भी मांसाहारी पशु बनने के लिये नहीं बनाया गया है।"

(५) डा० सीलमेस्टर ग्राहम की उक्ति है कि-"शरीर-शास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि मनुष्य

शाकाहारी जीव है। उसका जीवन कन्द, मूल, फल, फूल आदि शाकों में पोषित है "

(६) एडोल्फ जस्ट जर्मन का महान् लेखक लिखता है— "शिकारी जन्तु जैसे कुत्ते आ द हड्डी तथा मांस का भक्षण कर सकते हैं परन्तु मनुष्य कदा प नहीं - यह इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि मनुष्य का आमाशय पशुओं के आमाशय से बिल्कुल विभिन्न ढग से नियन्त्रित है।"

(७) रेनहोल्ड एम. डी. पी-एच. डी. ने बड़े पुष्ट प्रमाणों के साथ कहा है कि "यह बिल्कुल सत्य बात है कि शाकाहारी (अमांस-भक्षी) जीव के आमाशय में मांसभक्षी जन्तु के आमाशय से बिल्कुल भिन्न प्रकार का पाचक स्राव (गैस्ट्रिक जूस) स्रवित होता है मांस भक्षी प्राणियों के आमाशय में एक ही प्रकार का गैस्ट्रिक जूस निकलता है।"

(८) टी. एल. निकोलस, एम. डी कहते हैं—"यह स्पष्ट तथा आवश्यक तथ्य है कि हर एक प्राणी का स्वरूप, अभ्यास, स्थान और भाग्य उसके शारीरिक संगठन पर निर्भर करता है। कोई प्रकृतिवित् शरीर शास्त्रज्ञ, तथा शरीर क्रिया विज्ञान का वेत्ता, मानवशरीर की परीक्षा करने तथा उसे अन्य पशुओं के शरीर की बनावट के साथ तुलना करने पर यह कहे बिना नहीं रहेगा कि मनुष्य शाकाहारी है।"

(९) अथर्ववेद में एक मन्त्र आता है जिस में दांतों को आदेश किया गया है कि हे दांत, तुम व्रीही खाओ, यव खाओ, उड़द खाओ, तिल खाओ, यह सब तुम्हारे लिये विहित है। नर तथा

मा दन जीवों की हिंसा मत करो।"१ (अथर्व . ६। १४०। २) और भी एक स्थान पर वेद में यह उपदेश किया गया है कि पशुओं का दूध और ओषधियों का रस ही आहार-रूप से ग्राह्य है।२

(१०) चरक ने स्पष्ट रूप से आदेश किया है कि 'प्राणियों के प्राण बढ़ाने वाले द्रव्यों में "अहिंसा" उत्कृष्टतम है। यहीं तक नहीं-स्थान स्थान पर मांस भक्षण (भोजन रूप से) की निन्दा तथा उसके भक्षण से भयंकर रोगों की उत्पत्ति का वर्णन मिल

भोजन-व्यवहार में आने वाले सुअन्न तथा कदन्न

साधारणतः भारतवर्ष में जो अन्न या शाक व्यवहार में आते हैं वे हैं—गेहूं, यव, चना, चावल, मकई, बाजरा, ज्वार, उड़द, अरहर, मसूर, मंग, मटर, खेसाड़ी, मडुआ (रागी), श्यामक कोदा, कगनी इत्यादि। कन्द और शाक में आलू, परलव, बैंगन, अलावु (लौकी) तोरी, भिण्डी, कद्दू (कुम्हड़ा), मूलो सेम, गोभी, करेला, बारा (लोबिया , शकरकन्द, अरबी, चुकन्दर,

---

१. "व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम्।
एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च॥
(अथर्व ६-१४०.२)

२. "पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाह चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम्।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नियच्छात्॥"
(अथर्व १९ ३१ ४-५)

शलजम, टिंडा, चिचिंडा, मालवीन, भतुआ (पेठा), गाजर, पालक, चौलाई, शालाद, बथुआ, कुल्फा, लोनी, पटुआ, ठडिया सरसों(पत्ता), चना, कर्मी, सरहंची ,पोथिका इत्यादि। वानस्पतिक स्नेह (तेल) के लिए सर्षप, तिल, कसुम्भ, मूंगफली, नारिकेल, महुआ, और प्राणिज स्नेह के लिये गोघृत, माहिष घृत का विशेष कर व्यवहार होता है। भारतेतर देशों में स्नेहार्थ चर्बी का भी भोजन में उपयोग होता है। आजकल भारत वर्ष में भी कृत्रिम घृत चर्बी से बन कर सर्वप्रिय हो रहा है। द्रव पदार्थों में दूध, दही, छांछ प्रभृति का विशेष उपयोग होता है। दूध, गाय भैंस तथा बकरी का और मारवाड़ प्रभृति देशों में ऊँटनी का व्यवहार में आता है। इनके साथ २ भोजन को सुस्वादु तथा रुचिकर बनाने के लिये हल्दी, धनियां, जीरा, मिर्च, दालचीनी, अजवायन, सौंफ, मेथी, प्रभृति मसालों का तथा आम, नीबू और इमली की खटाई का भी व्यवहार करते हैं।

भोजन को मधुर बनाने के लिए ईख, ताल, प्रभृति का गड़ या शक्कर काम में लाते हैं। इस प्रकार एक संक्षिप्त सूची भोज्य पदार्थों की, जो प्रायः व्यवहार में आते हैं, रखी गई है इसके अतिरिक्त भिन्न २ प्रान्तों में उत्पन्न होने वाले अन्न, कन्द, शाक, तथा फल हैं। फलों की लिस्ट यथास्थान मिलेगी।

दूध की सर्व श्रेष्ठता

उक्त पदार्थों में दूध ही एक ऐसी वस्तु है जो पूर्णाहार (Perfect-food) की गणना में आ सकती है। अर्वाचीन

विज्ञान भी इसे पूर्ण भोजन कहता है। शतपथ[1] ब्राह्मण में तो दूध को मनुष्यों का आहार कहा गया है। सुश्रुत[2] ने भी दूध को प्राणियों के लिए जातिसात्म्य और अप्रतिषिद्ध भोज्य पदार्थ कहा है। संसार में दूध के मुकाबले में दूसरा भोज्य पदार्थ नहीं हो सकता– यह अतिशयोक्ति नहीं है। आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि-कोण की कसौटी पर भी खाद्य पदार्थों में दूध की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध हुई है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्य्यन्त ऐसी कोई भी अवस्था नहीं है जिस में दूध निषेध किया गया हो। बाल्यावस्था में प्रथम दो-तीन वर्ष तक दूध ही जीवन का आधार होता है। जिनको माता या गौ का दूध पर्याप्त नहीं मिलता, उनका स्वास्थ्य सदा के लिए बिगड़ जाता है। बाल्य-सम वृद्धावस्था में, थकी मांदी अवस्था में, तथा अनेक प्रकार के रोगों में दूध ही पथ्य-कर होता है। इसका एक-मात्र कारण यह है कि शरीर-संवर्धन के लिये खाद्य द्रव्यों के जिन २ उपादानों की आवश्यकता होती है वे सब दूध में विद्यमान होते हैं, जिससे आवश्यकता के अनुसार न्यूनाधिक मात्रा में केवल दूध का ही सेवन करने से मनुष्य स्वस्थ तथा जीवित रह सकता है। इसलिये दूध पूर्णाहार कहलाता है। दूध में रस रक्तादि धातुओं की वृद्धि के लिये और क्षति-पूर्ति के लिए आवश्यक प्रोटीन होती है। वसा या चर्बी होती है। यह वसा इतने सूक्ष्म कणों

---

१ "एतद्वै पय एव अन्नं मनुष्याणाम्" (शतपथ ब्राह्मण– २। ५ १६)

२ "तत्र सर्वमेवक्षीरं प्राणिनामप्रतिषिद्ध जाति सात्म्यात् वातपित्त शोणित मानेष्वपिविकारेष्वविरुद्धात्" (सु. सू ४६)

के रूप में फैली होती है कि एक बूंद में १५ लाख के लगभग कण होते हैं। इस कारण दूध को चर्बी पचने में हल्की होती है। दूध में दुग्ध-शर्करा होती है। इसके अतिरिक्त चूने का अंश (Calcium) सर्जीक्षार (पोटाशियम, सोडियम) मग्नेशिया, लौह, गन्धक, स्फूर्ति (फौस्फोरस) निञोत (आयोडिन) इत्यादि शरीर के उपयोगी तथा आवश्यक खनिज दूध में होते हैं। इसके अतिरिक्त जीवन रक्षा के लिए परमावश्यक जीवनीय वस्तु (वीटामीन) विशेषकर के ए. डी. ई. (Vitamin A. D. E) भी दूध में उपस्थित रहता है। परन्तु हेलीबर्टन साहब कहते हैं कि दूध पूर्णाहार[1] है पर केवल बच्चों के लिये। क्योंकि मानव-शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इसकी अत्यधिक मात्रा की आवश्यकता पड़ती है और लौह का अंश इसमें अति न्यून-मात्रा में रहता है जो शरीर के लिए अनुपयोगी है। अणु-वीक्षण

I. "Milk is a perfect food only for young children. For those who are older, it is so voluminous that unpleasantly large quantity of it would have to be taken in the course of the day to ensure the proper supply of nitrogen and carbon. Moreover it is relatively too rich in protein and fat. It also contains too little iron, so children we red late become anemic. (Hulliburton)।

यन्त्र से परीक्षा करने पर पता लगता है कि दूध में दो तरह की चीजें होती हैं। एक तरल भाग और दूसरा सूक्ष्ममिगियों के वे ठोस भाग, जो उसमें तैरते रहते हैं। ये छोटी छोटी मिगिया स्नेह-मिगिया या स्नेहकण हैं जो भिन्न २ आकार के होते हैं। ये ०.००८५ से ०.००५ मी. मी. परिमाण तक के आकार के होते हैं। पशुओं के बच्चे पैदा होने के बाद कुछ दिन तक दूध में एक प्रकार के विशिष्ट स्नेहकण दिखाई पड़ते हैं जिसे अर्वाचीन वैज्ञानिकों ने कोलास्ट्रीयम (Collostrium) कहा है। इसमें 'कैसीनोजन' की मात्रा कम होती है और अलव्युमेन और स्नेहकण अधिक होते हैं। दुग्ध-ग्रन्थिओं की सेलों की परीक्षा अणु-वीक्षण यन्त्र द्वारा की गई तो पता चला कि उनमें स्नेह-मिगिया हैं जिन्हें कोलोस्ट्रम कॉर्पुस्लस कहते हैं।

दूध की प्रतिक्रिया तथा आपेक्षिक घनत्व— गाय के ताजे दूध और स्त्री के दूध की प्रतिक्रिया प्रायः अस्पष्ट ही रहती है। इसका कारण उनके अन्दर क्षार तथा अम्ल दोनों का अस्तित्व है। प्रायः सब दूध कुछ देर रख छोड़ने पर खट्टे हो जाते हैं; क्योंकि उनका सन्धान होने लगता है जिसके फलस्वरूप दुग्ध, शर्करा (Lactose) दुग्धाम्ल (Lactic acid) में परिवर्तित हो जाता है। गोदुग्ध का आ. घ. १०२८ से १०३४ तक रहता है। दुग्धस्नेह का रासायनिक संगठन एडिपोज-टीसु (Adipose tissue) के समान ही है। दूध में भी न्यून मात्रा में लीपायड्स (Lipoids) और दुग्धशर्करा रहती है। यह द्वाया साकारायड्स होता है। दूध में लौह की मात्रा बहुत कम होती है। गर्भस्थ

बालक इस कमी की पूर्ति माता के अपरा से करता है और यह भी देखा गया है कि स्त्रियां एतदर्थ लौह अपने यकृत् में संचित करती है। आयुर्वेद ने दूध को रसायन तथा जीवनीय द्रव्यों में श्रेष्ठ कहा है [१]। महिष का दूध कुछ गुरुतर शीत तथा निद्रोत्पादक होता है। इसमें स्नेह का अंश अधिक होता है। ऊँटनी का दूध रूक्षोष्ण तथा ईषत् लवणयुक्त कहा गया है। यह हल्का तथा बल्य होता है। बकरी का दूध मधुर, शीत, कषाय, ग्राही और लघु होता है। यह रक्त पित्त तथा अतिसार में हितकर है। क्षयकास तथा ज्वर को नाश करता है।

आहार विश्लेषण की प्राचीन रूपरेखा

भोज्य द्रव्यों का आहार-विश्लेषण आगे की सारिणी में स्पष्ट रूपेण मिल जायगा। प्राचीन आहार विश्लेषण किस प्रकार किया गया है उसे स्पष्ट करने का प्रयत्न कर रहा हूँ-"सभी [२] द्रव्य

---

१ "स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णं पिच्छिलम्। गुरुमन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः॥ तदेव गुणमेवौजः सामान्यादभिवर्धयेत्। प्रवरं जीवनीयानां क्षीरमुक्तं रसायनम्॥ माहिषीणां गुरुतरं गव्याच्छीततरं पयः। स्नेहाऽन्यून मनिद्राय हितमत्याग्नये च तत्। ("गुरुशीतं स्निग्धतरं माहिषमहितल्पं बृंहणं चाग्रयम्। तथा च गव्यात्स्निग्धतरम्)"। "रूक्षोष्णं क्षीरमुष्ट्रीणामीषत्सलवणं लघु। बल्यं स्थैर्यकरं सर्वमुष्णं चैकशफं पयः॥" छागं कषाय मधुरं शीतं ग्राहीपयोलघु। रक्तपित्ता-तिसारघ्नं क्षयकासज्वरापहम्॥" (रा. नि. चरक)

२ "सर्वं द्रव्य पाञ्चभौतिकमस्मिन्नर्थे"। (चरक)

पञ्चभौतिक हैं" यह आर्ष सिद्धान्त है। इनका नामकरण (पार्थिवादि-महाभूतांशों के बाहुल्य से किया गया है [१]। इन द्रव्यों के रस, गुण, विपाक, वीर्य आदि भी महाभूतों के परमाणुओं के तरतमांश संयोग एवं स्वभाव से हुए हैं। इन द्रव्यों के शरीर पर जो भी कार्य होते हैं वह उक्त रस, गुण विपाक और वीर्य के कारण ही होते हैं। अतः प्राचीन ऋषियों ने सभ द्रव्यों का विश्लेषण उनके रस, गुण, विपाक, तथा वीर्यादि से किया है। द्रव्यों के गुण कर्म द्रव्यों से भिन्न नहीं और द्रव्य बिना उक्त रस गुण विपाक वीर्य के कोई काय नहीं कर सकता। अतः द्रव्य के साथ गुण कर्म का अविच्छेद सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध समवायी सम्बन्ध कहा जाता है। यह नित्य सम्बन्ध होता है। द्रव्य भिन्न गुण कर्म की कोई सत्ता नहीं होती।

द्रव्य तथा उनके गुण धर्म— अभ्यास की सरलता के लिये द्रव्यों के तीन भेद किये गये हैं।—(१) औषध द्रव्य (Drug) (२) आहार द्रव्य (food) और (३) विषद्रव्य Poison)। इन तीन द्रव्यसमूहों का वर्णन करने वाली शाखाएं क्रमशः फार्मोकोलोजी, (पुराना नाम मेटेरियामेडिका) डायटेटिक्स और टौक्सौकोलोजी नाम से प्रख्यात हैं। उक्त तीन समूहों में दूसरा समूह अर्थात् आहार द्रव्य को वर्णन करने वाली शाखा-डायटेटिक्स-इस पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय है। अतः इस समूह का ही विवेचन यहां किया जायगा। द्रव्य पाञ्चभौतिक हैं इसके

१ "व्यपदेशस्तु भूयसा।" उत्कर्षेण व्यपदेशः॥"

अनुसार आहार द्रव्यों का भी संघटन पञ्चमहाभूतों से हुआ है यह स्वतः सिद्ध है। अर्वाचीन विज्ञानवेत्ताओं के अनुसार यह दृश्य जगत् ६२ मूल तत्त्वों के भिन्न २ संख्या तथा संयोग से बना हुआ है। प्रत्येक मूल तत्व अपने अणुओं से संघटित है और इन अणुओं का संघटन विद्युत् शक्तिमय है। पदार्थों का संघटन परमाणुमय है यह विचार अति प्राचीन है। प्राचीन वैशेषिकों ने तथा ग्रीस के तत्त्ववेत्ताओं ने भी यही अभिप्राय प्रकट किया था। परन्तु आधुनिक परमाणुवाद इन प्राचीन मतों से भिन्न है। क्योंकि प्राचीनकाल में परमाणु अखण्ड माने जाते थे। आजकल यः विभाज्य समझे जाते हैं। इनकी परीक्षा करने से इनमें एलेक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रोन आदि विद्युद्वाहीक प्रतीत हुए हैं। प्रत्येक रसायन प्रक्रिया में परमाणु भाग लेते हैं; और प्रत्येक मूलतत्त्व के परमाणुओं में विशिष्ट गुण धर्म होते हैं। कारण कि इनका भार तथा इनकी आन्तरिक रचना परस्पर भिन्न होती है। इस प्रकार मूलतत्त्वों के मिलने से यौगिक पदार्थ बनते हैं और उन्हें नवीन गुण धम भी प्राप्त होते हैं। ठीक इसी प्रकार भूतानुप्रवेश के कारण होने वाले पदार्थों के गुण धर्मों में परिवर्तन का निर्देश प्राचीन ऋषियों ने भी किया है। परन्तु प्राचीनों का महाभूत अर्वाचीनों के मूल तत्त्व नहीं हैं। दोनों विचार-धाराओं में मौलिक मतभेद है। उक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि आधुनिक विज्ञान के मत से भी पदार्थ के गुण-धर्म में पार्थक्य का कारण उनका पृथक् २ परमाणुमय संघटन है। और इस संघटन से उनके भौतिक तथा रासायनिक गुणों का निर्णय होता

है। इसका पुष्ट प्रमाण यह है कि इन मूल तत्त्वों के अथवा किसी पदार्थ के आणविक संघटन में यदि कृत्रिम रीति से विद्युत्प्रवाह द्वारा या लोहचुम्बक द्वारा अथवा किसी प्रभाव-शील रासायनिक द्रव्य मिला कर परिवर्तन किया जाय तो भी उनके गुण-धर्म में परिवर्तन हो जाता है। इसके विपरीत, प्रयोगशाला में कृत्रिम साधनों द्वारा अभीष्ट गुण वाले पदार्थ उत्पन्न किए जाते हैं।

औषध द्रव्य की तरह ही आहार द्रव्य को भी ४ भागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) वनस्पति जन्य, (२) प्राणिजन्य (३) खनिज और (४) प्रयोगशालाओं में कृत्रिम विधि से प्रस्तुत। उक्त सभी प्रकार के आहार द्रव्यों की निम्नोक्त बातों पर विशेष लक्ष्य रखना चाहिए।

(१) गुणोत्पादक तत्व (Active principles)—प्रायः सभी द्रव्यों में विशिष्ट रासायनिक संघटन वाले पदार्थ स्थित होते हैं। द्रव्यों के गुणधर्म प्रायः इन्हीं के कारण होते हैं। यह तत्व द्रव्यों के भिन्न २ अवयवों में विद्यमान रहते हैं। यथा-मूल, कन्द, फल, पुष्प, पत्र, त्वक्, निर्यास, बीज प्रभृति। आज कल प्रयोग-शालाओं में विश्लेषण द्वारा इनके गुण धर्म का पता लगाते हैं।

(२) देश तथा ग्रहणकाल (Habitat and time for collection) द्रव्य किस भूमि पर उगा है और उसका किस काल में संचय किया गया है, इस बात पर द्रव्य की शक्ति का बड़ा आधार है।

(३) द्रव्यों की ठीक पहचान—ये किस जाति के हैं और इनका क्या वर्ग है।

(४) भोक्ता तथा आहार द्रव्य की प्रकृति—बहुत से ऐसे द्रव्य हैं जिन से व्यक्ति-विशेष को सहज घृणा होती है। इसके अतिरिक्त आहार द्रव्यों के शरीर में प्रवेश, शोषण, प्रसार, संचय, तथा निःसरण आदि की व्यवस्था देखनी होती है। आहार-द्रव्य की शरीर पर क्या क्रिया होती है यह भी देखना आवश्यक है। ईर्ष्या-द्वेष, अज्ञान तथा जिज्ञासा-वृत्ति के अभाव से वैद्य आधुनिक विज्ञान की ओर देखना पाप समझते हैं और डाक्टर साहब प्राचीन विज्ञान को, पाश्चात्य चाकचिक्य में पड़े रहने के कारण मृत-साहित्य समझ, सदा उपेक्षा करते हैं। इस प्रकार परस्पर विचार-विनिमय न कर इस विषय से सदा अनभिज्ञ बने रहते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में दोनों विचारों का दोहन कर सार तत्त्व निकालने की चेष्टा की गई है। शरीर के विकास के लिए तथा जीवन व्यापार चलाने के लिए जो शक्ति चाहिए उसके उत्पादन के लिए तथा शरीर में प्रतिक्षण होने वाली टूटफूट की पूर्त्ति के लिये पूर्वोक्त आहार व्यवस्था की आवश्यकता होती है। यह बात प्राचीन तथा अर्वाचीन उभय पक्ष सिद्ध है। उक्त व्यवस्था के लिये जिन आहार द्रव्यों की आवश्यकता पड़ती है उनकी शरीर पर होने वाली क्रियाओं को देखते हुए द्रव्यों के सामान्यतः तीन भेद किये जा सकते हैं ये तीन भेद इस प्रकार[1] हैं—(१) शमन, (२)

---

१. शमनं कोपनं स्वस्थहितमिति द्रव्यं त्रिधा।"
किञ्चिद्दोषप्रशमनं किञ्चिद्धातुप्रदूषणम्॥
स्वस्थवृत्तौ मतं किञ्चित्। त्रिविधं द्रव्यमुच्यते॥ (चरक सू० १)

कोपन और (३) स्वास्थ्य-वर्धन। इन तीन शब्दों द्वारा प्राचीन ऋषियों ने द्रव्यों के प्रभाव से होने वाली क्रियाओं का संकेत किया है। आधुनिकों का विभाजन इससे कुछ भिन्न है। वे उत्तेजक (Stimulant), अवसादक (Depressive) और कोपन (Irritative) इन तीन क्रियाओं द्वारा द्रव्यों का विभाजन करते हैं। पुनः प्राच्यों ने इनके उद्भव-भेद से ३ विभाग किए हैं।[1] यथा (१) जङ्गम (२) औद्भिज और (३) पार्थिव। इसमें औद्भिज चार प्रकार का होता है (१) वनस्पति, (२) वृक्ष, (३) वीरुध या लता और (४) औषधि जिस में पुष्प के बिना ही फल लगे उसे वनस्पति कहते हैं। और जो फूले और फले उसे वृक्ष कहते हैं। इसका दूसरा नाम वानस्पत्य भी है। जो फैलने वाली लतायुक्त होती है उन्हें विरुध या लता कहते हैं और जो फल पकने पर या स्वयं पकने पर नष्ट हो जाँय उन्हें औषधि कहते हैं। जंगम[2] भी चार प्रकार के होते हैं। यथा (१) जरायुज, (२) अण्डज (३) स्वेदज और (४) उद्भिज।

औषध और आहार के भेद से भी द्रव्य दो प्रकार के होते[3] हैं जो द्रव्य वीर्य-प्रधान हो, अर्थात जिनके प्रयोग से

---

१. तत् पुनस्त्रिविधं प्रोक्तं जङ्गमौद्भिदं पार्थिवम्।
औद्भिदं तु चतुर्विधम्—वनस्पतयः वृक्षाः वीरुधः औषधयः, इति सुश्रुत ॥

२. जङ्गमाः खल्वपि चतुर्विधाः—जरायुजाण्डज स्वेदजोद्भिजाः। सुश्रुत ॥

३. औषधाहारभेदेनापि द्रव्यं तावद्द्विविधं—वीर्यप्रधानमौषध द्रव्यम्, रसप्रधानमाहारद्रव्यम्।" (चरक सू० २, चरक सू०-४, चरक विमान–८, च० सू० २२, च० सू० २७)

शरीर में वीर्य-संज्ञक शीतोष्णादि गुणों की उत्पत्ति प्रधानतया होती हो, शरीर के रसादि धातुओं की पुष्टि जिनका प्रधान कार्य न हो, उनको औषध द्रव्य कहते हैं। जैसे सोंठ-पीपर आदि। जो द्रव्य रस प्रधान हों अर्थात् जिन के उपभोग से शरीर में रस तथा रस से पुष्ट होने वाले रक्तादि-धातुओं का पोषण होता हो, ऐसे द्रव्यों को आहार द्रव्य कहते हैं। जैसे चावल, गेहूं आदि। मधुरादि रस के भेद से भी द्रव्यों के मधुरादि ६ वर्ग हैं इनका नाम गण और स्कन्ध भी है। संहिताओं में द्रव्यों के कर्मानुसार अनेक वर्गीकरण किए गए हैं। चरक संहिता के सूत्र तथा विमान में इनका वर्णन आता है। पञ्चकर्म में प्रयुक्त होने वाले द्रव्यों के उनके कर्मानुसार वर्गीकरण किया गया है। दस-दस द्रव्यों का एक २ गण करके उनके कर्मानुसार ५० गणों का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार लघन बृंहण आदि ६ गणों का और वर्णन मिलता है। ये गण प्रायः केवल चिकित्सोपयोगी होने से, यहां उपयोगी न होने से यहां उद्धृत नहीं किए जाते। आहारोपयोगी जो १२ वर्गों का वर्णन आता है उन्हें यहां दिया जाता है। (१) शूक-धान्य वर्ग (२) शमीधान्य वर्ग, (३) मांस वर्ग, (४) शाक वर्ग (५) फल वर्ग (६) हरित वर्ग, (७) मद्य वर्ग (८) अम्ल वर्ग, (६) गोरस वर्ग, (१०) इक्षु वर्ग (११) कृतान्न वर्ग, (१२) आहार योग-वर्ग। इनका विस्तृत वर्णन यथास्थान किया जायगा।

आहार द्रव्यों का शरीर पर कुछ तो रस के कारण, कुछ विपाक के कारण, कुछ वीर्य के कारण, और कुछ प्रभाव के कारण

कार्य्य होते है [1]। जैसे आधुनिक विज्ञानवादी द्रव्यों के गुणों का व्यक्तीकरण उनके सघठन (Structure or Composition) की दृष्टि से करते है उसी प्रकार प्राचीन आचार्यो ने द्रव्यों के गुणों का वर्णन उनके पाञ्च भौतिक सगठन को दृष्टि मे रख कर किया है। परन्तु शरीर के सम्पर्क मे आने के पश्चात द्रव्य के जो गुण देखने मे आते है उनमे शरीर मे स्थित पदार्थो की द्रव्यों पर होने वाली क्रिया का भी अन्तर्भाव हो जाता है अत गुणों को कर्मानुमेय कहा गया है। आशय यह है कि द्रव्य का–व्यक्ति को देकर उसकी क्रिया देखे बिना–उसके गुणों का निश्चय नहीं हो सकता। द्रव्यों की दोष हरण शक्ति की वास्तविक परीक्षा मानव शरीर पर किए गए परीक्षणों द्वारा ही हो सकती है।

मद्य तथा विष के वर्णन मे और दीपन, पाचन व्यवायी, विकासी, वाजीकरण आदि के वर्णन मे जो शैली दिखाई देती है वह आधुनिक विज्ञान-सम्मत है। यह वर्णन बहुत ही सुसम्बद्ध है। इससे द्रव्य के गुणों का वर्णन करते हुए, उसके गुणों का वर्णन, द्रव्यों की शरीर में होने वाली गति तथा उसमे होने वाले परिवर्तन की जानकारी परपरा से हो जाती है। यह विषय स्पष्ट करने के लिये हमे कुछ बातें दुहरानी पड़ेंगी। आहार द्रव्यों का पाचन होकर उसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाले रस का सार-भाग अन्त्रों द्वारा शोषित होकर रस धातु बनता है। यह सारे शरीर मे फिरता हुआ समस्त धातुओं का पोषण करता है। इस

१. "तद् द्रव्यमात्मना किञ्चित् किञ्चिद्वीर्येण सन्नितम्। किञ्चिद्रसविपाकाभ्यां दोष हन्ति करोति वा॥" (सु० सू० ४)

पोषण क्रम को समझाने के लिये तीन दृष्टान्त दिए गए हैं। (१) क्षीर-दधि न्याय, (२) केदार-कुल्या न्याय और (३) खले कपोत न्याय। आहार द्रव्यों की गति निम्न क्रम से होती है। विपाक होने के पश्चात् द्रव्य रुधिर प्रवाह में प्रविष्ट होते हैं। इनमें कई द्रव्य धीमे से चूसे जाकर और कई द्रव्य शीघ्र चूसे जाकर, शीघ्र सारे शरीर में फैल जाते हैं कई सम्पूर्ण धातुओं पर धीमे २ क्रिया करते हैं और कई शीघ्र ही अमुक धातु पर क्रिया करते हैं, जिन्हें क्रमशः मन्द और तीक्ष्ण कहते हैं। इन्हें और स्पष्ट करने के लिये निम्न उदाहरण देते हैं।

दीपन[1] (औषध-द्रव्य)—ये द्रव्य जठराग्नि को दीप्त करते हैं अर्थात् जाठर रस को बढ़ाते हैं जिससे भूख अधिक

---

1. दीपनीयम्-दीपनम्-अग्निदीपनम्— "दीपनीयं वह्नेरुद् पनाय हितम्।"(ग.) ॥ दीपनमन्तरग्नेः सन्धुक्षणं, तस्मै हितं दीपनीयम् (यो०)॥ दीपनमग्नि गुणा भूमिष्ठं, तत्समानतत्वात्" (सुश्रुत)॥ "पित्तवान् रसान् गुणांश्च दीपनीयम् । तदाग्नेयम्" (र० वै० सू० ४-१०) ॥ "यदग्निकृत् चेवनाम' दीपनं तद्यथा घृतम् ।" (च० द०) ॥ "पचेन्नामं वह्निकृच्च दीपनं तद्यथा मिशि:" (शा०) ॥ "पृथिव्यनिल बाहुल्याद्दीपन परिचक्षते

(र० वै० अ० ४ सू० ३)

लगती है; जैसे-भांग, सौंफ इत्यादि। पाचन[1] द्रव्य आम को पचाते हैं परन्तु जाठररस में विशेष वृद्धि नहीं करते। जैसे-नागकेशर प्रभृति। इन कर्मों का कारण द्रव्यों का पाञ्चभौतिक संगठन कहा गया है। पृथ्वी और वायु की अधिकता वाले दीपन और अग्नि गुण की अधिकता वाले द्रव्य पाचन होते हैं। आधुनिक द्रव्य विज्ञान इन कर्मों का कारण इन द्रव्यों के संघटन में स्थित विशिष्ट गुण जनक पदार्थ का होना बताता है। दीपन और पाचन दोनों सहकारी शरीर व्यापार हैं और इनके स्थान मुख्य करके आमाशय हैं। आढमल ने इनका समाधान द्रव्य प्रभाव द्वारा किया है, परन्तु रस-वैशेषिक में दिया गया समाधान अधिक युक्तियुक्त है। यहां यह भी उल्लेख करना परमावश्यक है कि दीपन और पाचन दोनों कर्म करने वाले द्रव्य भी अनेक हैं। दीपन और आम-पाचन कर्म स्थानिक हैं। अतः इन द्रव्यों की होने वाली क्रिया आमाशय पर होने वाली क्रिया हुई। इसके पश्चात् ये द्रव्य रुधिर-प्रवाह में प्रविष्ट होकर शरीर में सचार करते हैं और अन्य औषधीय गुणों को प्रकट करते हैं। जैसे भांग और नाग केशर की शरीर पर क्रिया प्रसिद्ध है। इसी प्रकार वमन छर्दि निग्रहण इत्यादि कर्मों का समाधान किया जा सकता है।

---

१. पाचनम्—"पचत्याम न वह्निं च कुर्याद्यत् तद्धि पाचनम् नागकेशरवद्विद्याच्चित्रो दीपनपाचनः (शा०)।"
"पचन्त्यमग्निं प्रतिपक्षतपसोन बलदानेन च यत् पाचयति तत् पाचनम्।" तच्च वाय्वग्नि गुण भूयिष्ठम्।" (चरक)
अग्नेस्तु गुण बाहुल्यात् पाचनं परिचक्षते। (र० वै०)

अब मैं इसी पद्धति से अन्य गुणों की परीक्षा करूँगा। आशु (आशुकारी), व्यवायी, विकाशी. आदि गुण रुधिराभिसरण द्वारा होने वाले द्रव्य का प्रसार सूचित करते हैं। द्रव्यों के इन गुणों के कारण वे रुधिर में शीघ्र ही प्रवेश कर जाते हैं: जैसे-'मद्य'। मद्य का पाक रुधिर में प्रविष्ट होने के अनन्तर प्रारम्भ होता है। मद्य शरीर के प्रत्येक कोष्ठ को वेष्ठित कर लेता है।[1] इसके पश्चात् इसके अन्य गुण, उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष आदि प्रकट होते हैं। इसी प्रकार 'विष' द्रव्य भी शीघ्र ही रक्त में प्रविष्ट हो जाते हैं और शरीर के विविध तंत्र यंत्रों पर अपनी क्रिया करते हैं। इन क्रियाओं का वर्णन गुणवाचक शब्द द्वारा करते हैं। चरक ने कल्प स्थान में वामक और विरेचक द्रव्यों की क्रिया समझाते हुए "इन द्रव्यों की (वीर्य की) क्रिया हृदय पर होती है" कहा है।[2] *'रस'—द्रव्यों के गुणों में रसगुण (Taste) का स्थान प्रधान है। रस को 'आप्य' विशेषण दिया गया है;[3] क्योंकि जड़ द्रव्य (Matter) के विकास क्रम में जब तक जलावस्था (Liquid state) न आवे, तब तक रस का आविर्भाव नहीं होता। इसी प्रकार यदि किसी अविलेय पदार्थ का जिह्वा से

१ "शरीरावयवान् सर्वान् अनुगच्छत्ययवानपि" (भेल)
"विहारयवयवान् सूक्ष्मान्" (सुश्रुत)

२ "स्ववीर्येण हृदयमुपेत्य........."(चरक-कल्प १)

३ "तस्मादाप्यो रसः" (सु. सू. ४२)

* "रस्यते आस्वाद्यते रसनेन यः स रसः" (Local action on the sense organ of taste)

स्पर्श कराया जाय तो जिह्वा को रस की प्रतीति नहीं होती है। अर्थात् 'रस' की प्रतीति के लिये द्रव्य को ऐसा होना चाहिए कि वह द्रवित हो सके। अतः 'रसो निपाते द्रव्याणां" यह परीक्षा-विधि भी यथार्थ है। शर्त इतनी होनी चाहिए कि द्रव्य ऐसा हो जो द्रवित हो सके। यद्यपि सोना चांदी, आदि कठिन पदार्थों को जिह्वा पर स्पर्श करने से, उनके रस का स्पष्ट भान नहीं होता; तथापि स्पर्श की संज्ञा होती है, जैसे विज्ञानवादी धात्वीय रस (Metalic taste) कहते हैं। रस युक्त द्रव्य की क्रिया त्वचा पर स्पर्श करने भी होती है परन्तु उसे 'रस' नहीं कहते।

कषाय और कटु रसवाले द्रव्यों की क्रिया त्वचा पर स्थानीय होती है। विविध रसवाले द्रव्यों के वर्णन में रसों की मुख तथा महास्रोत पर होने वाली स्थानीय क्रिया का तथा सार्वदैहिक पारस्परिक क्रिया का (General and indirect action) भी वर्णन मिलेगा। यह आधुनिक विज्ञान से पूर्णतः मिलता है। फिर भी आयुर्वेद की तरह आधुनिक विज्ञान में द्रव्यों का वर्गीकरण रस-प्रधान नहीं पाया जाता, किन्तु विभिन्न रस वाले औषधों का तथा इन रसों से युक्त द्रव्यों के गुण कर्मों का वर्णन पाया जाता है। तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो आधुनिक द्रव्य गुण विज्ञान के ग्रन्थों में, शर्करासमूह के वर्णन में मधुर रस के गुण कर्मों का, एसिड या अम्ल पदार्थ के वर्णन में अम्ल रस का, क्षारों के वर्णन में लवण रस के गुण कर्मों का, उड्डयनशील के वर्णन में कटु रस के गुण कर्मों का, तिक्त वर्ग में तिक्त रस के गुण कर्मों का, और ग्राही वर्ग (Astringent) के वर्णन में कषाय रस के गुण

कर्मों का वर्णन उपलब्ध होता है अतः जिज्ञासुओं को आकर-ग्रन्थों में इस विषय का विस्तार देखना चाहिये।

रस की परिभाषा—रसनेन्द्रिय से जिस विषय (गुण) का ग्रहण होता है उसको 'रस' कहते हैं। जल और पृथ्वी उसके आधार कारण हैं। इसकी उत्पत्ति और उसके मधुरादि भेद में आकाश, वायु, और तेज ये निमित्त कारण हैं।[१] इस प्रकार यह 'रस' पाञ्चभौतिक है। "रस्यते आस्वाद्यते इति रसः"- जिसका जिह्वेन्द्रिय द्वारा आस्वादन होता हो उसे 'रस' कहते हैं। जल नैसर्गिक रीत्या रस वाला होने से वही रस का मुख्य आधार कारण है और पृथ्वी जल के अनुप्रवेश से रसवती होनेसे गौण आधार-कारण है। इस प्रकार रस की अभिव्यक्ति में जल और पृथ्वी आधार कारण हैं, यह कहने से भान होता है कि अभिव्यक्त होता हुआ रस जल और पृथ्वी में ही अभिव्यक्त होता है।

रस के प्रकार—रस ६ प्रकार के होते हैं।[२]-यथा-मधुर अम्ल-लवण-तिक्त-कटु-कषाय इनमें अन्त से पूर्व पूर्व रस अधिकाधिक बल देने वाला होता है जैसे कषाय से कटु, कटु से तिक्त,

---

१. 'रसनार्थो रसस्तस्य द्रव्यमापः क्षितिस्तथा। निर्वृत्तौ च विशेषे च प्रत्ययो खादयस्त्रयः।"

२. रस स्तावत षट्—मधुराम्ललवण कटुतिक्तकषायाः (चरक)
स्वादुरम्लोऽथ लवणाकटुकस्तिक्त एव च।
कषायश्चेतिषट्कोऽयं रसानां संग्रहः स्मृतः" ॥ (चरक)
रसाः स्वाद्वम्ललवणाः तिक्तोष्णकषायकाः।
षड्द्रव्यमाश्रितास्ते च यथापूर्वं बलावहाः" ॥ (अ० हृ०)

तिक्त से लवण, लवण से अम्ल और अम्ल से मधुर रस विशेष बल देने वाला होता है। सब द्रव्य पाञ्चभौतिक होने से, तथा रसों की उत्पत्ति भी पञ्चमहाभूतों से होने से द्रव्य अनेक रस वाले होते हैं। शुष्क द्रव्य को जीभ पर रखते ही जो प्रारम्भ में यह मधुर है, यह अम्ल है, इत्यादि प्रतीति स्पष्टरूपेण होती है उसे 'रस' कहते हैं; और जो इस से विपरीत अर्थात् अस्पष्ट रूप से मालूम होता है या अन्त में कुछ स्पष्ट रूप से मालूम होता है, उस को या आर्द्रावस्था में स्पष्ट रूप से मालूम होने पर भी जो शुष्कावस्था में दब जाता है और अन्य रस मालूम होने लगता है, उसे 'अनुरस' कहते हैं।[1] इस प्रकार मधुरादि प्रत्येक रस अवस्था भेद से रस या अनुरस संज्ञा को प्राप्त होते हैं।[2] पञ्चमहाभूत के न्यूनाधिक मिलने के कारण रसों के ६ भेद होते हैं। अन्तरिक्ष में उत्पन्न हुआ दिव्य जल स्वभाव से ही ठंडा, सौम्य, लघु, और अव्यक्त रस वाला होता है। वह जल अन्तरिक्ष से गिरता हुआ मध्य में आकाशस्थ और भूमि पर भूमिस्थ पञ्चमहाभूतों के गुणों से

---

१. चरक में रसों का क्रम कटु तिक्त कषाय—ऐसा है जो ऊपर दिया है। पर इन रसों का तारतम्य वाग्भट के अनुसार दिया है। बलनिर्देश में वाग्भट ने तिक्त कटु कषाय यह क्रम रखा है।

२. "व्यक्तः शुष्कस्य चादौ च रसो द्रव्यस्य लक्ष्यते। विपर्य्ययेणानुरसो रसो नास्तीह सप्तमः" ॥ च० सू० २६।

समन्वित होकर जङ्गम और स्थावर मूर्त्तियों को उत्पन्न और तृप्त करता है जिनके अन्दर ६ रस उत्पन्न होते हैं।[1]

आकाश, वायु, अग्नि, जल, और पृथ्वी में शब्द-स्पर्श-रूप-रस-और गन्ध ये पांच गुण एक २ की उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ रहते हैं। पञ्च महाभूतों के परस्पर एक का दूसरे पर अनुग्रह से

---

1. सौम्याः खल्वापोऽन्तरिक्षप्रभवाः प्रकृतिशीता लघ्व्यश्चाव्यक्तरसाश्च, तास्त्वन्तरिक्षाद् भ्रश्यमाना भ्रष्टाश्च पञ्चमहाभूतगुणसमन्विता जङ्गमस्थावराणां भूतानां मूर्तीरभिप्रीणयन्ति, यासु मूर्तिषु षडभिमूर्च्छन्ति रसाः॥

तत्र षण्णां रसानां सोमगुणातिरेकान्मधुरो रसः। पृथिव्यग्निभूयिष्ठत्वादम्लः। सलिलाग्निभूयिष्ठत्वाल्लवणः। वाय्वग्निभूयिष्ठत्वात्कटुकः। वाय्वाकाशातिरिक्तत्वात्तिक्तः। पवनपृथिव्यतिरेकात्कषाय इति। एवमेषां षण्णां रसानां षट्त्वमुपपन्नमूनातिरेकविशेषान्महाभूतानां, भूतानामिव जङ्गमस्थावराणां नानावर्णाकृतिविशेषाः षड्ऋतुकत्वाच्च कालस्योपपन्नो महाभूतानामूनातिरेकविशेषः॥

(च० सू० २६)

क्ष्माम्भोऽग्निक्ष्माम्बुतेजः खवाय्वग्न्यनिलगोनिलैः। द्वयोल्बणैः क्रमाद् भूतैर्मधुरादिरसोद्भवः। अ० हृ० सू०।

और एक दूसरे में परस्पर अनुप्रविष्ट होने से, सब कार्यद्रव्यों में सब भूतों का सान्निध्य पाया जाता है। परन्तु जिस द्रव्य में जिस महाभूत का उत्कर्ष होता है उसी महाभूत के नाम से उसे कहते हैं। इस प्रकार यह आप्य-रस शेष महाभूतों के संसर्ग से परिपाक को प्राप्त होकर ६ प्रकार का होता है। इस में सोम गुणों की अधिकता से (जल और पृथ्वी मधुर रस, पृथ्वी और अग्नि की अधिकता से अम्लरस, जल और अग्नि की अधिकता से लवण-रस, वायु और अग्नि की अधिकता से कटु रस, वायु और आकाश की अधिकता से तिक्त रस, और वायु और पृथ्वी की अधिकता से कषाय रस की उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार पञ्चमहाभूतों के न्यूनातिरेक विशेष से संघटित होने से स्थावर और जङ्गम प्राणि-आदि के अनेक वर्ण और आकृति आदि विशेष होते हैं। इसी प्रकार पञ्चमहाभूतों के न्यूनाधिक मात्रा में मिलने से पदार्थों में ६ रसों की उत्पत्ति होती है। काल भिन्न २ स्वभाव वाला ६ ऋतुओं में विभक्त होने से पञ्चमहाभूतों में काल स्वभाव से न्यूनाधिक भाव होता रहता है।

अग्नि और वायु की अधिकता वाले, रस प्रायः ऊपर की तरफ गति करने वाले (वमनादि) होते हैं; क्योंकि वायु लघु और ऊपर की ओर गति करने वाला है तथा अग्नि ऊर्ध्व ज्वलन स्वभाव वाला है। जल और पृथ्वी की अधिकता वाले रस प्रायः नीचे की ओर गति करने वाले होते हैं (विरेचनादि); क्योंकि जल स्वभाव से ही नीचे की ओर गति करने वाला और पृथ्वी भी गुरु होने से नीचे की ओर गति करने वाली होती है। जो रस ऊपर

कहे हुए दोनों प्रकारों वाले होते हैं वे उभयतो भाग (वमन-विरेचन) गति करने वाले होते हैं।[1]

रस विज्ञान—रसों का ज्ञान जिह्वा के साथ सम्बन्ध होने पर होता है।—[2]रस का प्रतिशब्द 'टेस्ट' नहीं हो सकता क्योंकि

---

१. तत्राऽग्निमारुतात्मका रसाः प्रायेणोर्ध्वभाजो लाघवादुत्प्लवनत्वाच्च वायोरूर्ध्वज्वलनत्वाच्च वह्नेः; सलिलपृथिव्यात्मकास्तु प्रायेणाऽधोभाजः; पृथिव्या गुरुत्वान्निम्नगत्वाच्चोदकस्य; व्यामिश्रात्मकाः पुनरुभयतो भाजः ॥ (च० सू० अ० २६)

२. यद्यपि 'रसनाग्राह्य' ऐसी व्याख्या रस की की गई है तथापि औषधियों के रसों का ग्रहण जिह्वा के अतिरिक्त अन्य अंगों से भी होता है। फर्क यही है कि जिह्वा पर रस की संवेदना अन्य अङ्गों की अपेक्षा अधिक और विशेष रूप से होती है। जैसे कटु या कषाय रस का ज्ञान जैसे जिह्वा पर होता है, वैसे ही गले पर भी हो सकता है। आमाशय में भी होता है, त्वचा पर भी होता है। शरीर में रस का कार्य नियत स्थान के संबन्ध होते ही होता है। ['रसो निपाते द्रव्याणां"](च०सू०२६) ''रसं विद्यान्निपातेन" (अ० स० सू० ४) उसमें रूपान्तर की आवश्यकता नहीं होती। रस का यह कार्य बहुधा निपात स्थान के ऊपर प्रत्यक्षतया हुआ करता है और उसी स्थान पर मर्यादित रहता है, यथा 'फिटकरी' जैसे कषाय रस का प्रयोग त्वचा पर करने से स्थानीय क्लेसिका स्राव तथा रक्तस्राव बन्द हो जाता है,

रुचि के अतिरिक्त 'रस' में आधुनिक परिभाषा के अनुसार द्रव्यों की स्थानीय, प्रत्यक्ष तथा प्राथमिक क्रिया (Local direct and primary action) भी अन्तर्भूत है। ऊपर कहे हुए छहों रस द्रव्यों में व्यक्त और अव्यक्त द्विविध प्रकार से उपस्थित रहते हैं। इन्हीं को क्रम से 'रस' और 'अनुरस' कहते हैं। द्रव्यों का जो रस जिह्वा के साथ संबन्ध होते ही विशेष रूप से प्रतीत होता है। वह रस और जो पीछे तथा अस्पष्टतया प्रतीत होता है वह अनुरस व्यक्त कहलाता है।

आंखों में करने से पानी का स्राव बन्द हो जाता है और मुख द्वारा सेवन करने से आमाशय तथा अन्त्र का स्राव कम हो जाता है। कभी २ रस स्थानीय वातनाड़ियों के अग्राङ्गों (Nerve terminals) द्वारा प्रत्यावर्त्तन (Reflex action) से भी कार्य्य करता है। यथा अम्लोत्वालयते मुख,लवण, स्यन्दयत्यास्यं, कटुः स्रावयत्यक्षिनासाग्यं, ये सबउदाहरण प्रत्यावर्त्तन के हैं। पाश्चात्य वैद्यक में यद्यपि आयुर्वेद की भांति रसों की कल्पना नहीं है, तथापि सुविधा के लिये तिक्त (Bitter) कषाय (Astringent) और अम्ल (Acid) 'रस' ऐसे रसों के अनुसार औषधियों के कुछ वर्गीकरण पाये जाते हैं। पाश्चात्य वैद्यक में रस के लिये कोई उपयुक्त शब्द नहीं मिलता जो इसके पूरे अर्थ को बतला सके।

मधुर रस[1]—मधुर रस मुख में जाते ही सारे मुख में व्याप्त हो जाता है और मुख को लिप्त सा कर देता है; स्नेहन, सत्व इन्द्रियों की प्रसन्नता, आह्लाद, भोजन का। में आनन्द, और तृप्त उत्पन्न करता है, मूर्च्छित को सञ्ज्ञा प्रदान करता है, कफ को बढ़ाता है, भौंरों और चिड़ियों का अत्यन्त प्रिय है, कण्ठ को तृप्त करता है।

अम्लरस[2]—खाते ही दन्तहर्ष, मुख मे लालास्राव, शरीर में स्वेद, मुख की शुद्धि, मुख और कण्ठ का विदाह; नेत्र और भौंहों का सकोच, रोमाञ्च और क्लेदन करता है तथा हृदय को प्रिय है।

लवणरस[3]—खाते ही मुख में घुल जाता है, तथा क्लेद, लालास्राव, मृदुता, मुख में विदाह, अन्न पर रुचि, कफ का स्राव कण्ठ तथा कपोल में जलन करता है; सारे मुख में शीघ्र फैल जाता है और उष्णता उत्पन्न करता है।

कटु रस[4]—जीभ पर लगते ही जीभ में उद्वेग, सुई चुभने की सी पीड़ा, विदाह के साथ मुख नासिका और नेत्र से स्राव, शिर में वेदना, कण्ठ और कपोलों में चिमचिमाहट, और अन्न पर रुचि उत्पन्न करता है।

तिक्त रस[5]—जीभ पर रखते ही जिह्वा की अन्य रस-ग्राहक-शक्ति का नाश करता है, जीभ को अप्रिय होता है। मुख में स्वच्छता, मुख शोष, तृषा और दाह का प्रशमन, गले में कोई खींचता हो ऐसी

---

१. (चरक-सू० अ० २६) (अ० स०) (सुश्रुत), (अ० हृदय) (१० वै०)

पीड़ा, अन्न पर रुचि, तथा रोमहर्ष उत्पन्न करता है, और कण्ठ को शुद्ध करता है।

कषाय रसः—जिह्वा में विरसता, स्तब्धता, और जड़ता उत्पन्न करता है। कण्ठ को जकड़ता सा है, मुख को सुखाता है, हृदय में खींचने सी पीड़ा करता है, मुंह में ठंडापन लाता है और गले को सुखाता है।

रसों के गुण और कर्म—

मधुर रस—जन्म से ही मनुष्य के शरीर को सात्म्य होने से रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-ओज और शुक्र को बढ़ाने वाला, आयु को टिकाने वाला, मन सहित छः इन्द्रियों को प्रसन्न करने वाला, बल कारक, शरीर की कान्ति को बढ़ाने वाला, पित्त, विष तथा वायु का नाश करने वाला, तृषा और दाह का शमन करने वाला, अभिघात से मूर्च्छित को जीवन देने वाला, तृप्तिकर, बृंहण शरीर को दृढ़ करने वाला, उरःक्षत और भग्न अस्थि का संधान करने वाला, घ्राणेन्द्रिय-मुख-कण्ठ-ओष्ठ और जिह्वा को आनन्द देने वाला; दाह और मूर्च्छा का नाश करने वाला, भौरों और चींटियों को अत्यन्त प्रिय; स्निग्ध, शीत, गुरु (चरक); स्तन्य वर्धक, नेत्रों के लिये हितकर, रक्त और रस धातु को शुद्ध करने वाला; बाल-वृद्ध और क्षतक्षीण के लिये हितकर, कृमि और कफ को करने वाला (सुश्रुत) मृदु (अ सं०) और रस आदि सर्वधातुओं को उत्तम बल देने वाला है। (अ. हृ.) मधुर रस ऐसे उत्तम गुण होने पर भी अकेले के अति उपयोग से

स्थूलता, मृदुता, आलस्य, अतिनिद्रा, भारीपन, अरुचि, अग्निमान्द्य, मुख और कण्ठ में मांस की वृद्धि, श्वास, कास, प्रतिश्याय, अलसक, शीतज्वर, आनाह, मुखमाधुर्य, वमन, संज्ञानाश, स्वरभङ्ग, गलगण्ड, गण्डमाला, श्लीपद, गले की सूजन; मूत्राशय, धमनियों और गले में क्लेद; नेत्रों के रोग, अभिष्यन्द, आदि कफरोग (चरक; कृमि, अर्बुद, गुदोपलेप (सुश्रुत); प्रमेह, नेत्रार्बुद, गलार्बुद, उदर्द, सिरदर्द, उदर रोग, बार बार थूकना (अ. स.; मेदोरोग और सन्यास आदि कफज विकारों को करता है।

अम्लरस—(खट्टा)—अन्न पर रुचि उत्पन्न करने वाला, अग्निदीपन, शरीर को बढ़ाने वाला, उत्साह वर्धक, मन को जागृत करने वाला, इन्द्रियों को दृढ़ करने वाला, बलवर्धक, मूढ़वातानुलोमन, हृदय को तृप्त करने वाला, मुख में लालास्राव उत्पन्न करने वाला, खाये हुए अन्न को नीचे ले जाने वाला, क्लिन्न करने वाला (गलाने वाला) और पकाने वाला, प्रीणन, लघु, उष्ण, स्निग्ध (चरक); व्रणशोथ को बढ़ाने वाला, वातहर, पेट में विदाह करने वाला, स्पर्श में ठण्डा (परन्तु वीर्य में उष्ण), क्लेदन, प्रायः हृद्य (सुश्रुत) रक्त और पित्त को करने वाला, इन्द्रियों को उत्तेजित करने वाला, तर्पण, व्यवायी (अ० सं०) तथा कफकर (अ. हृ.) है। अम्लरस ऊपर लिखे हुए गुण वाला होता हुआ भी, केवल अकेले अत्युपयोग से दन्तहर्ष, तृषा, नेत्रसंमीलन, रोमाञ्च, कफविलयन, पित्तप्रकोप, रक्त दोष, मांस में विदाह, शरीर-शैथिल्य, क्षीण-क्षत-कृश और दुर्बल पुरुषों में श्वयथु, क्षतअभित सविषप्राणि-दंश-दग्ध टूटी हुई हड्डी- अस्थि आदि का स्थानभ्रंश, अवमूत्रित (सविष

प्राणियों का शरीर पर पेशाब करना) परिसर्पित सर्प विष प्राणियों का स्पर्श मर्दित (अङ्ग का मसल जाना) छिन्न भिन्न विश्लिष्ट विद्ध उत्पिष्ट आदि में आग्नेय स्वभाव के कारण पाक (पूय) की उत्पत्ति; कण्ठ-छाती और हृदय में दाह (चरक); खाज, पाण्डुरोग दृष्टि को मारना, ललाई सी, रक्तपित्त, भ्रम, (अ. सं.) तिमिर, फोड़े फुंसी और ज्वर (अ. हृ०). इन विकारों को करता है।

लवण रस—पाचन, क्लेदन, दीपन, अवयवों को अपने स्थान से च्युत करने वाला, छेदन, भेदन, तीक्ष्ण, अनुलोमन, विकाशी द्रव करके बहाने वाला, स्रोत आदि में अवकाश करने वाला, वातहर, स्तम्भ, स्रोतों के अवरोध और काठिन्य को दूर करने वाला, कफ को पघलाने वाला, स्रोतों का शोधन करने वाला, शरीर के सब अवयवों को मृदु करने वाला, अन्य सब रसों का विरोधी (उनके स्वादों को छिपा देने वाला) मुख में लालास्राव कराने वाला, रोचक, आहार के उपयोग में आने वाला, कुछ गुरु, स्निग्ध, और उष्ण, (चरक) संशोधन, विश्लेषण, शैथल्यकारी, (सु.) शापण, स्नेहन, स्वेदन लटकते हुए मांस आदि का छेदन करने वाला, अनुलोमन, व्यवायी, विकाशी तथा कुछ तीक्ष्ण (अ. सं.) है। लवण रस ऊपर कहे हुए गुण वाला होने पर भी केवल उस अकेले के अत्युपभोग करने से पित्तप्रकोप, रक्त की अतिवृद्धि (प्रकोप), तृषा, मूर्च्छा, अंगों में चीरे पड़ना, मांस में शथिल्य, कुष्ठ में गलाव, शरीरस्थ विष की वृद्धि, शोथों का फटना, दाँतों का गिरना, पुंस्त्व-नाश, इन्द्रियों की अपने २ कार्यों में असक्ति, वली (झूरिका) पलित (बाल पकना) खालित्य (केश गिरना)

रक्तपित्त, अम्लपित्त विसर्प, वातरक्त, विचर्चिका, इन्द्रलुप्त, (च.) खाज, कोढ, शोथ शरीर का वैवर्ण्य, इन्द्रियों का उपताप मुखपाक, खट्टी डकार आदि; किटिभ, आक्षेप, घाव का बढ़ाना, मेदवृद्धि, बलक्षय, ओजक्षय, (अ० स०) और कुष्ठ—इन विकार को उत्पन्न करता है।

कटु रस—मुख को शुद्ध करने वाला, अग्निदीपन, खाए हुए अन्न का विदाह करने वाला, नासिका और नेत्रों में स्राव करने वाला, इन्द्रियों को उत्तेजित करने वाला, अलसक, सूजन, मांसादि की वृद्धि, पित्ती अभिष्यन्द, स्वेद क्लेद, और मल इनका नाश करने वाला; रोचक, कण्डू का नाश करने वाला, व्रण अवसादन, कृमिघ्न, मांस का लेखन करने वाला, रक्त के जमाव को तोड़ने वाला, बंधों स्रोतों के रुकावट) को दूर करने वाला और स्रोतों को खोलने वाला कफनाशक, लघु, उष्ण, रूक्ष (च० शोधन, स्थूलता—आलस्य—कफ—विष और कुष्ठ को दूर करने वाला, सन्धियों के बन्धों को तोड़ने वाला, स्तन्य—शुक्र तथा मेद का नाश करने वाला, (सु०) स्नेह और क्लेद को सुखाने वाला, मुखरोगहर, तीक्ष्ण (अ० स) तथा गलरोगहर है। कटुरस ऊपर लिखे हुए गुण वाला होते हुए भी केवल उस अकेले के ही अति उपयोग से कटु विपाक के प्रभाव से पुंस्त्व का नाश करता है। अपने रस और उष्ण वीर्य के प्रभाव से मोह, ग्लानि अवसाद, कृशता, मूर्च्छा, शरीर का झुकना, अँधेरी, चक्कर, कण्ठ में दाह, शरीर में ताप, बलक्षय, और तृष्णा उत्पन्न करता है; वायु और अग्निगुण की अधिकता से चक्कर, दाह, कम्प, सूई चुभने सी वेदना, भेद और

हाथ, पाँव, पार्श्व, पृष्ठ आदि में वातविकार को उत्पन्न करता है। एवं गले, तालु और ओष्ठ का सूखना (सु०) वमन, शुक्रक्षय, हाथ-पाँव-पार्श्व-पीठ आदि में संकोच और भेदन सी वेदना (अ० सं०) इन विकारों को उत्पन्न करता है।

तिक्त रस—स्वयं न रुचने वाला होने पर भी अरुचि का नाश करने वाला, विषघ्न, कृमिघ्न, मूर्च्छा-दाह-कण्डू-कुष्ठ और तृष्णा का नाश करने वाला; त्वचा और मांस को दृढ़ करने वाला, ज्वरघ्न दीपन, पाचन, स्तन्यशोधन, लेखन; मेद-क्लेद-वसा मज्जा-लसीका-पूय-स्वेद-मूत्र-पुरीष-पित्त और कफ को सुखाने वाला; रूक्ष, शीत, लघु (च०) छेदन, शोधन, (सु०) कण्ठ शोधन, मेधा को बढ़ाने वाला और उत्क्लेश को दूर करने वाला तथा अरूक्ष है। तिक्तरस ऐसे गुण वाला होने पर भी केवल उस अकेले के अति उपयोग करने से अपने रूक्ष, विशद और खर गुण से रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा और शुक्र-इनको सुखाता है; स्तनों में कठिनता उत्पन्न करता है; बलक्षय, कृशता, ग्लानि, मूर्च्छा, चक्कर मुखशोष इस प्रकार के अन्य वात रोग; शरीर की स्तब्धता, मन्यास्तम्भ आक्षेप, अर्दित, सिरदर्द, सोंट कराने या काटने वेदना, मुखवैरस्य; (सु०) परुषता और खाज तोद (अ० सं०) इन रोगों को उत्पन्न करता है।

कषाय रस—संशमन ग्राही, संधानीय (व्रण) पीडन, रोपण, शोषण, स्तम्भ, कफ रक्त और पित्त का शमन करने वाला शरीर के क्लेद को सुखाने वाला, रूक्ष शीत गुरु, (च०) लेखन, (सु०)-विकृत त्वचा को स्वाभाविक वर्ण में लाने वाला प्रीणन,

रक्त शोधक, मेद का शोषण करने वाला और-आमस्तम्भक (आम दोष के पाक को रोकने वाला) है। कषाय रस ऐसे गुणों वाला होने पर भी केवल उस अकेले का अति उपयोग से मुखशोष, हृदय में पीड़ा पेट का अफारा वाकस्तंभ, स्रोतों का अवरोध वर्ण की श्यामता, और षण्डता को लाता है; पेट में गुड़ गुड़ाहट करके पचता है वात मूत्र, मल और वीर्य को रोकता है, शरीर में कृशता ग्लानि, तृषा और स्तब्धता उत्पन्न करता है। खर, विशद और रूक्ष होने से पक्षाघात, अपतानक आदि वात विकार; (च.) मन्यास्तम्भ, अङ्ग का फड़कना, सुनसुनाहट, आकुंचन, आक्षेप (सु०) आदि विकारों को उत्पन्न करता है।

इस प्रकार ये ६ रस अलग-अलग या एक साथ उपयुक्त (योग्य) मात्रा में उपयोग करने से लोगों के उपकार के लिए होते हैं। इन के विपरीत यदि अति मात्रा में उपयोग किए जायँ तो हानिकारक होते हैं। इसलिये बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि इनका योग्य मात्रा में ठीक उपयोग करे। इन में मधुर अम्ल और लवण रस वातनाशक होते हैं; मधुर तिक्त और कषाय पित्तनाशक होते हैं, और कटु तिक्त कषाय कफ का नाश करते हैं। इन में वायु की आत्मा (योनि) वायु ही होती है; पित्त अग्न्यात्मक होता है; और कफ सोमात्मक होता है। ये मधुरादि रस स्वयोनि (जो दोष होता है उसका) को वर्धन करते हैं और अन्ययोनि का प्रशमन करते हैं। जैसे - शीतता रूक्षता, लघुता, विशदता और विष्टम्भता, इन गुणों से युक्त लक्षणों वाली वायु है और उसके समान-योनि कषाय रस है। अतः वह अपनी शीतलता से वायु के शैत्य को,

रूक्षता से रौक्ष्यको लघुता से लाघव को, विशदता से वैशद्य को और विष्टम्भी गुण से विष्टम्भत्व को बढ़ाता है। इसी प्रकार उष्णता, तीक्ष्णता, रूक्षता, लघुता, और विशदता इन गुणों से युक्त लक्षणों वाला पित्त है। अतः उसके समान योनि कटुरस अपनी उष्णता से पित्त का उष्णता को तीक्ष्णता से तैक्ष्ण्य* को रूक्षता से रौक्ष्य को और विशदता से वैशद्य गुणों को बढ़ाता है। कफ—मधुर,स्नेह गुरु, शैत्य, पिच्छिल, गुणों वाला है अतः उसके समान-योनि मधुर रस अपनी मधुरता से कफ के माधुर्य को स्नेह से स्निग्धता को गुरुता से भारीपन को, शीत गुण से शैत्य को और पिच्छिल गुण से पैच्छिल्य को बढ़ाता है। इसी प्रकार विपरीत योनि वाले रस विपरीत योनि वाले दोष को शमन करते हैं।

द्रव्यगत रसों का परस्पर समवाय दो प्रकार से होता है। (१) प्रकृतिसमसमवाय और (२) विकृतिविषमसमवाय। प्रकृतिसमसमवाय में द्रव्यों के गुण और प्रभाव रस के अनुकूल होते हैं परन्तु विकृतिविषमसमवाय में द्रव्यों के गुण प्रभाव रसों के अनुकूल नहीं होते। गुरु आदि गुण रस के आश्रय भूत पृथिव्यादि- द्रव्य के अंदर ही होते हैं क्योंकि गुण गुण का आश्रय नहीं होता। इसलिये मधुरादि रसों के जो गुण कहे गए हैं वे मधुरादि रस वाले द्रव्यों के ही समझने चाहिएं।

गुण—द्रव्यों के भैषजीय कार्यों के द्योतक गुण होते हैं। गुणों को अर्वाचीन विज्ञान में (Pharmacological action)

---

*. (चरक सू० २६) (अ० हृ० सू० १)

"फार्मोकोलिजिकल ऐक्शन" कहते हैं। ये संख्या में साधारणतया २० हैं परन्तु इनके अतिरिक्त विकाशी, व्यवायी इत्यादि अन्य गुण भी हैं। कुछ आधुनिक विद्वान् गुण से भौतिक गुण (Physical properties) समझते हैं; परन्तु उनका ऐसा समझना ठीक नहीं। भौतिक गुण-धर्म प्रत्यक्ष होते हैं परन्तु आयुर्वेदीय गुण कर्मानुमेय होते हैं। इसलिये रस वीर्य आदि द्वारा औषधियों के जो २ कार्य्य शरीर पर होते हैं वे सब गुण होते हैं। औषधियों के इन गुणों का उत्कर्षापकर्ष भी संस्कार तथा भावनाओं द्वारा किया जाता है। इस में संदेह नहीं कि गुरु, लघु, द्रव्य, कठिन इत्यादि गुण वाचक शब्द द्रव्यों की भौतिक स्थिति को प्रदर्शित करने के लिये भी प्रयुक्त होते हैं परन्तु औषधि विज्ञान की परिभाषा में गुण मुख्यतया शरीरगत विविध क्रियाओं के द्योतक हैं। गरु आदि गुण द्रव्यों में आश्रित होकर रहते हैं और निष्क्रिय होने से उन में कर्तृत्व नहीं होता; वमन विरेचन आदि कर्मों में गण उपकरण-साधन रूप होते हैं परन्तु कर्त्ता द्रव्य ही होता है। जो दूसरों का आश्रय और कर्त्ता होता है वह प्रधान होता है और जो अन्याश्रित और उपकरण होता है वह अप्रधान-गौण होता है। गुरु आदि गुण अन्याश्रित और उपकरण होने के कारण गौण होने से 'गुण' कहे जाते हैं।[१] गुण तथा द्रव्य का अंतर यह है कि द्रव्य गुण का आश्रय होता है परन्तु गुण गुण का आश्रय नहीं होता।[२]

---

१. क्रिया हीनत्वेन कर्तृत्वाभावादप्राधान्येन गौणत्वाच्च तस्य 'गुण' इति संज्ञा।" (र० वै०)

२ गुणा गुणाश्रया नोक्ताः" (चरक)

गुण वर्णन—गुरु– लघु, शीत–उष्ण, स्निग्ध–रूक्ष, मन्द–तीक्ष्ण स्थिर–सर, मृदु–कठिन, विशद पिच्छिल, श्लक्ष्ण–खर सूक्ष्म स्थूल और सान्द्र–द्रव ये २० गुण प्रधानतः होते हैं। इनके अतिरिक्त शुष्क, आशु, व्यवायी, विकाशी जीवन बृंहण लेखन भेदन, सधान, दपन पाचन वाजीकरण वृष्य, रसायन, ग्राही, स्तम्भन, स्नेहन शमन, अनुलोमन, स्रंसन, भेदन, रेचन, वमन, शोधन, भेदन, मदकारी, प्रमाथी, अभिष्यन्द, आशुकारी, विदाही, इत्यादि कर्मानुमेय गुणों का वर्णन मिलता है। इन पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या करना परमावश्यक है।

१. गुरु—गुरुगुण अवसाद मलों की वृद्धि (उपलेप), बल, तृप्ति, और शरीर की पुष्टि करने वाला है। वह वातहर, कफ करने वाला, और देर से पचने वाला होता है। जिस गुण में शरीर की पुष्टि करने की शक्ति हो उसे गुरुगुण कहते हैं। गुरु गुण पार्थिव और आप्य है। जल और पृथ्वी में पतन कर्म का जो कारण है उसे गुरुत्व[1] कहते हैं।

२. लघु—लघु गुण गुरु से विपरीत गुण वाला है। यह शरीर में उत्साह-स्फूर्ति, मल का क्षय और दुर्बलता लाने वाला है। शरीर को कृश करने वाला तथा व्रण को रोपण करने वाला है। वह शीघ्र पचने वाला और कफघ्न होने के कारण परम पथ्य है। जिस गुण में शरीर को हल्का करने की शक्ति हो उसे लघु

१. "गौरवं पार्थिवं आप्यंच" 'गुरुत्वं जलभूम्योः पतनकर्मकारणम्'

कहते हैं। लघु गुण वायु-आकाश और अग्नि के गुणों की अधिकता वाला है।[1]

३. शीत—शीत गुण उष्ण पीड़ित को सुख देने वाला, स्तम्भन तथा मूर्च्छा तृषा, स्वेद और दाह का नाश करने वाला है। जिस गुण में स्तम्भन करने की शक्ति हो उसे शीत कहते हैं। यह आप्य है।[2]

४. उष्ण—उष्ण गुण शीत गुण से विपरीत है। शरीर को दुःख देने वाला, मूर्च्छा तृष्णा, स्वेद और दाह को उत्पन्न करने वाला और पचाने वाला है। जिस गुण में स्वेद लाने की शक्ति हो वह उष्ण है। उष्ण गुण आग्नेय है[3]

५. स्निग्ध—स्निग्ध गुण स्नेह और मृदुता करने वाला है। बल और वीर्य को बढ़ाता है यह वातहर, श्लेष्मकर, वाजीकरण है। जिस गुण में शरीर को क्लिन्न करने की शक्ति वह स्निग्ध है। यह आप्य है।

६. रूक्ष—रूक्ष गुण स्निग्ध के विरुद्ध कार्य करने वाला; रूक्षता, कठिनता लाने वाला तथा बल और शरीर के वीर्य को ह्रास करने वाला विशेषकर स्तम्भन तथा खर है। यह वातकर और परम कफहर है। जिस गुण में शोषण करने की शक्ति हो वह रूक्ष गुण पार्थिव और वायव्य होता है।[4]

---

१. "लाघवमन्यद्दीपम्"।
२. "शीतहि रजगुरुपिच्छिलास्तत्राप्याः" (र० वै०)
३. "तैजसमौष्ण्य तैक्ष्ण्यं च" (र० वै०)
४. "रौक्ष्यवैशद्ये पार्थिववायव्ये" (र० वै०)

७. मन्द—मन्द गुण कालक्षेप करने वाला, मन्दता से कार्य करने वाला चिरकारी होता है।

८. तीक्ष्ण—तीक्ष्ण गुण दाह पाक और स्राव करने वाला है। यह पित्तकर, प्रायः शरीर को पतला करने वाला कफ और वायु का नाश करने वाला होता है। जिस गुण में शोधन कर्म करने की शक्ति हो वह तीक्ष्ण है। यह आग्नेय होता है।

९—स्थिर—स्थिर गुण वात और मल का स्तम्भ करने वाला है (जिस गुण में रुकावट (धारण) करने की शक्ति हो वह स्थिर है।

१०—सर—सर गुण वात और मल को प्रवृत्त करने वाला होता है। जिस गुण में प्रेरण करने की शक्ति हो वह सर होता है। इसे 'चल' भी कहते है।

११ मृदु—मृदु गुण दाह-पाक स्राव का नाश करने वाला है। जिस गुण में कोमल करने की शक्ति हो, वह मृदु होता है। यह गुण आकाश और जल गुणाधिक वाला है[१]।

१२—कठिन—जिस गुण युक्त द्रव्य में दृढ करने की शक्ति हो उसे कठिन कहते हैं। कठिन गुण पार्थिव है[२]।

१३—विशद—विशद गुण पिच्छिल से विपरीत कर्म वाला है। विशेष करके क्लेद का शोषण करने वाला और व्रणरोपण

---

१. "मार्दवमन्तरिक्षम् प्यम्" (र०वै०)

२. "कठिनत्वं पार्थिवम्" (र०वै०)

है। जिस गुण में चालन की शक्ति हो वह विशद है। यह पार्थिव और वायव्य है।

१४—पिच्छिल—पिच्छिल गुण जीवन, बलकारक, टूटी हुई दृष्टि को जोड़ने वाला कफ कारक, और गुरु है। यह लसेदार होता है जिस गुण में शरीर में उपलेप की शक्ति हो वह पिच्छिल है। यह आप्य है।

१५—श्लक्ष्ण—श्लक्ष्ण गुण पिच्छिल के समान गुण वाला है। स्नेह के बिना जो चिकनापन होता है उसे श्लक्ष्ण कहते हैं। जिस गुण में रोपण की शक्ति हो वह श्लक्ष्ण होता है। यह तैजस[1] है।

१६—खर—खरस्पर्श वाला जसे ककोड़े का फल। किसी २ ने इसे 'ककश' भी कहा है। जिस गुण की लेखन में शक्ति हो उसे खर कहते हैं। यह वायु गुण वाला[2] है।

१७—सूक्ष्म—सूक्ष्म गुण अपनी सूक्ष्मता के कारण शरीर के अत्यन्त सूक्ष्म स्रोतों में भी प्रवेश करता है। जिस गुण युक्त द्रव्य में स्रोतों को खोलने और प्रवेश करने की शक्ति हो वह सूक्ष्म है।

१८—स्थूल—स्थूल गुण शरीर में स्थूलता लाने वाला और स्रोतों का अवरोध करने वाला है। जिस गुण में स्रोतों में अवरोध करने की शक्ति हो वह स्थूल है।

---

1. "तैजसं श्लक्ष्णत्वं नाम" (र०वै०)

2. "कर्कशत्वं वायव्यम्" (र०वै०)।

१६—सान्द्र सान्द्र गुण भी शरीर को स्थूल और पुष्ट करने वाला है जिस गुण युक्त द्रव्य की प्रसादन में शक्ति हो वह सान्द्र है।

२०—द्रव—द्रव गुण शरीर को तर करने वाला है। यह आर्द्रता करता है और सर्वत्र व्याप्त होने वाला है। जिस गुण की विलोडन में शक्ति हो वह द्रव है।

१—शुष्क—भाव प्रकाश में यह द्रव के विपरीत में आया है।

२—आशु—सुश्रुत और भाव प्रकाश में इस गुण का कर्म जल में तैल बिन्दु के समान शरीर में शीघ्र फैलने वाला कहा गया है यह भाव प्रकाश में मन्द गुण के विपरीत में आया है।

३—व्यवायी—जो द्रव्य अपने प्रभाव करने से पहले शरीर में व्याप्त हो अपना प्रभाव दिखादे और उसका परिपाक पीछे से हो वह 'व्यवायी' कहलाता है।

४—विकाशी—जो द्रव्य पाक होने के पहले ही संधि के बन्धनों को शिथिल करता है और धातुओं से ओज को विभक्त करके धातुओं में शैथिल्य लाता है, उसे विकाशी कहते हैं।

५—जीवन—जो द्रव्य जीवन के लिए हितकर हो और उपयोगी हो उसको जीवन या जीवनीय कहते हैं। यह पृथ्वी और जल के गुणों की अधिकता वाला होता है।

६—बृंहण—जो द्रव्य शरीर को पुष्ट करता है (मोटापन लाता है) उसे बृंहण कहते हैं। यह भी पृथ्वी और जल गुण की अधिकता वाला है।

७ लेखन—जो शरीर के रसादि धातुओं और मलों को सुखा कर शरीर को पतला करता है, वह लेखन है।

८—भेदन—जो द्रव्य अबद्ध, बद्ध तथा पिण्डित मल को तोड़ कर गुद मार्ग से बाहर निकालता है उसे भेदन कहते हैं।

९—अनुलोमन—जो द्रव्य दोष तथा मल को पका कर और उनके विबन्ध को तोड़ कर अधोमार्ग से बाहर निकाले उसे अनु-लोमन कहते हैं।

१०—स्रंसन—जो द्रव्य पक्व तथा अपक्व आंतों या कोष्ठों में चिपके हुए मल को जैसे का तैसा अधोमार्ग से बाहर निकाले उसे स्रंसन कहते हैं।

११—रेचन*—जो द्रव्य पक्व वा अपक्व मलादि को द्रव करके विरेचन के द्वारा बाहर निकाले उसे रेचन कहते हैं।

---

*—रेचन-(Purgatives) इन द्रव्यों से शौच (पाखाना) जल्दी होता है किंवा अधिक होता है। न्यूनाधिक क्रिया के अनुसार इन द्रव्यों के पांच भेद हैं।

(१) आनुलोमिक या सर (Laxatives) मल और वायु की स्वाभाविक प्रवृत्ति का उत्तेजक, इन से मल नरम होता है और आंतों की (पेरीस्टौल्सिस) हलन चलन कुछ बढ़ कर शौच आता है।

(२) स्रंसन (Simple purgatives) इन से आंतों का हलन चलन बढ़ता है और आंतों की ग्रंथियों को उत्तेजना मिलती है जिससे पतला शौच आता है। (३) भेदन (Drastic purgatives) इन से आंतों में थोड़ा दाह होता है और जोर दार क्रिया होती

१२-संधान-भग्न अस्थि आदि के संयोग के लिये उपयुक्त द्रव्य को संधानीय या संधान कहते हैं।

१३-दीपन-अन्तर य अर्थात् जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाले द्रव्य को दीपन कहते हैं। अर्थात् जो आम को न पचावे किन्तु अग्नि को दीप्त करे।

१४-पाचन-जो आम को पचावे पर अग्नि को दीप्त न करे उसे पाचन कहते हैं।

१५-दीपन पाचन—जो दोनों कार्यों को करें।

१६-ग्राही-जो द्रव्य अपक मल को पका कर अपनी उष्णता के कारण मल के द्रवांश को शुष्क कर मलबन्ध को उत्पन्न करे, उसे ग्राही कहते हैं।

१७-स्तम्भन-जो रूक्षता, कषायता, और शीत गुण के कारण आंतों के पतले द्रवों और स्रावों को रोके, उसे स्तम्भन कहते हैं।

१८-वाजीकरण या वृष्य-जिस द्रव्य के सेवन करने से वाजी (अश्व) के समान मैथुन की शक्ति प्राप्त हो उसे वाजीकरण या वृष्य कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है। शुक्रल, कामोत्तेजक और स्तम्भक। जो शुक्र की मात्रा को बढ़ावे वह शुक्रल है। जो मैथुन करने की शक्ति को बढ़ावे वह कामोत्तेजक

है। (४) विरेचन (Hydrogogue purgative) आंतों में बहुत सा द्रव उत्पन्न हो कर द्रव शौच होता है (५) पित्त विरेचन।

होता है और जो शुक्र को शीघ्र स्खलित होने से रोककर मैथुन के समय शक्ति को बढ़ावे, वह स्तम्भक कहलाता है।

१९-रसायन—जिस द्रव्य के सेवन से प्रशस्त रस रक्तादि धातुओं की पुष्टि और वृद्धि हो तथा आरोग्य, तारुण्य और उत्तम बल लाभ हो, उसे रसायन कहते हैं।

२०-शोधन—जो द्रव्य वमन तथा विरेचन द्वारा शरीर में स्थित दोषों का निर्हरण करे उसे शोधन कहते हैं। संशोधन द्रव्य उभयतोभागहरत्वरूप प्रभाव से विशिष्ट पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के गुणों की अधिकता वाले होते हैं। ये दोनों मार्गों से निकलते हुए अपने साथ उदान और अपान से प्रेरित किए दोषों का भी उर्ध्वाधोभाग से बलात् निर्हरण करते हैं। जो द्रव्य मलों के सचय को अपने स्थान से ऊपर के या नीचे के किसी एक मार्ग से या दोनों मार्गों से बाहर निकाले उस को 'देह संशोधन' कहते हैं।

२१-शमन—जिस द्रव्य के सेवन से बढ़े या घटे हुए दोष अपनी साम्यावस्था में चले आवें (बिना शोधनादि क्रिया के) उसे शमन कहते हैं। यह द्रव्य आकाश गुण वाला होता है।

२२-स्नेहन—जो द्रव्य शरीर में स्निग्धता, द्रवपन, अथवा स्नेहका क्षरण, मृदुता, तथा क्लेद उत्पन्न करे, उसे स्नेह कहते हैं।

२३-वमन—जो द्रव्य ऊर्ध्व मार्ग द्वारा शरीर के दोषों को निकाले उसे वमन कहते हैं। यह अग्नि-वायु-गुण-भूयिष्ठ होता है।

२४-छेदन— जो द्रव्य शरीर में संचित और चिपके हुए दोषों को (कफादि को) बलपूर्वक निर्मूल करता है उसे छेदन कहते हैं।

२५-प्रमाथी—जो द्रव्य अपनी शक्ति से स्रोतों को अर्थात् रस रक्तादि वहन करने वाली शिराओं और मार्गों तथा कर्ण, मुख, नासिका, आदि छिद्रों से दोषों के संचय को दूर करे, उसे प्रमाथी कहते हैं।

२६-अभिष्यन्दि—जो द्रव्य अपनी पिच्छिलता तथा गौरव से रसवहा शिराओं को रुद्ध करके गौरव उत्पन्न करे, वह अभिष्यन्दि कहलाता है।

२७-विदाही—जो द्रव्य तीक्ष्ण, उष्ण आदि अपने द्रव्य स्वभाव से अथवा पचने में भारी होने से देर में पचे और पचते समय अन्नवहा नाली में जलन, खट्टी डकार, आदि करके पित्त का प्रकोप करे उसे विदाही कहते हैं।

२८-मदकारी—जो द्रव्य तमोगुण प्रधान होने से बुद्धि का नाश करके मद (नशा) उत्पन्न करता है उसे मदकारी या मादक कहते हैं।

२९-उत्तेजक— जिन द्रव्यों के सेवन से (शरीर तथा शरीर के अवयवों में) उत्तेजना हो, उसे उत्तेजक कहते हैं।

३०—अवसादक—जिस द्रव्य के सेवन से शरीर तथा शरीर के विभिन्न अवयवों में अवसाद पैदा हो उसे अवसादक कहते हैं।

विपाक—खाए हुए मधुर आदि रसों का (रसों के आधार भूत रस वाले द्रव्यों का) महास्रोत में जाठराग्नि द्वारा परिपाक होकर अन्त में जो रसविशेष की उत्पत्ति होती है, उसको 'विपाक'कहते हैं।[1] आयुर्वेद में द्रव्यों के दो प्रकारके पाक माने गए हैं (१) अवस्थापाक और (२) निष्ठापाक। अवस्था पाक का विस्तृत वर्णन च० चि० १५ वें अध्याय में तथा इस पुस्तक के ६ वें अध्याय (आहार गति निश्चय) में वर्णित होगा। आहार द्रव्यों के शरीर में जाने पर उनकी क्या दशा होती है, यह प्रत्यक्ष प्रमाण का नहीं किन्तु अनुमान का विषय है। अतः कर्मनिष्ठा[1] के अतिरिक्त इसके जानने का कोई दूसरा उपाय नहीं। इस कर्मनिष्ठा या निष्ठापाक को ही आयुर्वेद में विपाक कहा गया है। ये विपाक तीन प्रकार के होते हैं। (१) स्वादु (मधुर), (२) अम्ल और (३) कटु। मधुर और लवण रस का मधुर या स्वादु विपाक होता है। अम्ल का अम्ल और कटु, तिक्त, कषाय, का कटु विपाक होता है।[2] किसी२ आचार्य ने दो ही विपाक माने हैं यथा—सुश्रुत 'पाक

---

१. "परिणाम लक्षणो विपाकः" (र० वै० १ सू० १७) "जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम्। रसानां परिणामान्ते स विपाकः इति स्मृतः (अ० हृ०) विपाकः कर्मनिष्ठया' (चरक)

२. 'त्रिधा विपाको द्रव्यस्य स्वाद्वम्लकटुकात्मकः' । स्वादुः पटुश्च' मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः । तिक्तोषणकषायाणां विपाकः प्रायशः कटु ॥ (अ० हृ० सू० ६)

३. 'द्रव्येषु पच्यमानेषु येष्वम्बुपृथ्वीगुणाः निर्वर्त्तन्तेऽधिकास्तत्र पाको मधुर उच्यते। तेजोऽनिलाकाश गुणाः पच्यमानेषु येषु तु। निर्वर्त्तन्तेऽधिकास्तत्र पाकः कटुक उच्यते ॥" (सुश्रुतः)

होने वाले द्रव्यों में जो अम्बु और पृथ्वी गुण विशिष्ट द्रव्य होता है, उसका पाक कटु होता है।"[1]

निष्ठापाक या विपाक (Final products of digestions) पाचन क्रिया के परिणाम स्वरूप जो द्रव पदार्थ बनाता है उसका सार भाग (प्रसाद रूप भाग) हृदय की ओर जाता है। और किट्ट रूप भाग मलमूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है। यह प्रसादरूप आहाररस दो मार्गों द्वारा—प्रतिहारिणी शिरा तथा कुल्या द्वारा-हृदय में जाता है और किट्ट भाग का द्रवांश सीधा वस्ति में नहीं जाता परन्तु वृक्क द्वारा विश्लिष्ट होकर गविनियों द्वारा वस्ति में जाता है। आयुर्वेद में इसका वर्णन सूत्र रूप में या यों कहिए कि गोलमटोल भाषा में मिलता है जिस से अल्प मति जिज्ञासुओं को उसके अर्थ या भाव को समझने में भ्रम उत्पन्न हो जाता है। आयुर्वेद में उपलब्ध सूत्र 'शिराभिस्तज्जलं नीतं वस्तौ मूत्रत्वमाप्नुयात्" का सीधा अर्थ यह होता है कि शिराओं से लाया हुआ जल वस्ति में मूत्र रूप को प्राप्त होता है।' इस सूत्र में शिरा शब्द उस मार्ग के अर्थ में केवल आया हुआ है जिनके द्वारा जल स्वरूप किट्टांश वस्ति मे लाया जाता है और वह जल रूप किट्टांश जल वस्ति में आता है तब उसका नाम मूत्र पड़ता है। मूत्र का निर्माण कैसे और कहां होता है यह कहना इस सूत्र में अभीष्ट नहीं है। रक्त से वृक्कों द्वारा विश्लिष्ट जलीय किट्टांश जब गविनियों द्वारा वस्ति में आता है तब यह मूत्र कहलाता है।

---

१. शिराभिस्तज्जलं नीतं वस्तौ मूत्रत्वमाप्नुयात्, (सुश्रुत)

इस विपाक के परिणाम स्वरूप तैयार होने वाले द्रव पदार्थ का भी अपना रस होता है, जो अनुमानगम्य अथवा कर्मानुमेय है। यह रस मधुर, अम्ल अथवा कटु हो सकता है, ऐसा त्रिविध-विपाकवादी कहते हैं। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से देखने पर भी इसका समर्थन होता है। कारण आजकल परीक्षणों द्वारा पता लगता है कि प्रोटीन के पाचन के अन्तिम परिणाम रूप 'एमायनो-एसिड' नामक अम्ल पदार्थ तैयार होता है। इसी प्रकार आहार के कार्बोहाइड्रेट श्वेत सार आदि के पाचन के परिणाम स्वरूप 'ग्लकोज' नामक मधुर पदार्थ बनता है तथा वसामय या चर्बी वाले पदार्थों के पाचन का परिणाम रूप कटुरसप्रधान पदार्थ 'फैटी एसिड' और ग्लाइसोरल' नाम का पदार्थ तैयार, होता है। इस प्रकार निष्ठा पाक के परिणाम स्वरूप कौन रस बनता है यह द्रव्य विशेष पर अवलम्बित है तथा विपाक में विपर्यास होना, यह द्रव्य के प्रमाण सस्कार सात्म्य आदि पर अवलम्बित है।[1] गुणों की दृष्टि से देखें तो द्विविध विपाकवादियों का मत भी विज्ञान-सम्मत है। क्योंकि आहार द्रव्यों के पाचन होने के पश्चात् जो रस तैयार होगा वह या तो गुरु होगा या लघु। विज्ञान कहता है कि सामान्य परस्थिति में प्रोटीनों का पाक गुरु और कार्बोहाइड्रेट तथा फैट का पाक लघु होता है। अतः दोनों मत अपने २ दृष्टि कोण से ठीक हैं। मधुर विपाक वाला द्रव्य मलमूत्र को सृष्ट करने वाला और कफ,

---

१. द्रव्यप्रमाण-संस्कार-सात्म्याग्निबलाबलदेशकाल संयोगपाक विशेषै विपाकविपर्यासाः। (र० वै०)

शुक्र को बढ़ाने वाला होता है। अम्ल विपाक वाला द्रव्य पित्त को बढ़ाने वाला, शुक्र का नाश करने वाला, तथा मल मूत्र को सृष्ट करने वाला होता है और कटु विपाक वाला द्रव्य मल मूत्र को रोकने वाला और शुक्र का नाश करने वाला होता है।[1] इन विपाकों का कार्य रस सदृश (रसैरसो तुल्यफलः) होता है। फर्क इतना होता है कि विपाक का कार्य्य सार्वदैहिक, अप्रत्यक्ष और कर्मानुमेय, द्वितीयक तथा रस से बलवत्तर होता है। विपाक का बलाबल रस के बलाबल पर निर्भर करता है।

वीर्य—आयुर्वेद में वीर्य शब्द का दो अर्थों में प्रयोग किया गया है। एक—द्रव्य की शक्तिरूप वीर्य (Potency) और दूसरा पारिभाषिक[2] वीर्य के अर्थ में (Active principle)। शक्ति रूप वीर्यवादियों का कथन है कि संसार में सब कार्य शक्ति से ही सम्पन्न होते हैं। कोई भी कार्य शक्ति के बिना नहीं हो सकता, अतः द्रव्यगत जिस कार्यकारिणी शक्ति के द्वारा शरीर पर जो कुछ कार्य हो जाता है, उस शक्ति को चाहे वह द्रव्य स्वभाव रूप हो, रस रूप हो, विपाक रूप हो या शीतोष्णादि गुण रूप हो वीर्य कहते हैं।

---

१. मधुरः सृष्टविण्मूत्रो विपाकः कफशुक्रलः। पित्तकृत् सृष्टविण्मूत्रो पाकोऽम्लः शुक्रनाशनः॥ शुक्रहा बद्धविण्मूत्रो विपाको वातलः कटु॥ (चरक)

२. 'रसविपाकप्रभावातिरेकैः प्रभूतकार्यकारी गुणो वीर्यमिति संज्ञा' (र० वै०) 'ना वीर्यं कुरुते किञ्चित् सर्वा वीर्यकृता क्रिया' (च० सू० २६)

इस मत में द्रव्य स्वभाव, रस गुण, और विपाक जो भी शरीर में क्रिया करने वाली शक्ति हो उसे वीर्य कहा जाता है। अर्थात वीर्यका सम्बन्ध शरीरगत (Biochemical & metabolic process) के साथ है। जैसे हरीतकी और आमलकी दोनों गुण और कर्म में समान होने पर भी वीर्य में विरुद्ध है।[1] दूसरे पारिभाषिक वीर्य वादियों[2] का कहना है कि द्रव्य स्वभाव रस गुण और विपाक इनका आयुर्वेद मे पृथक् स्वतन्त्र रूप से वर्णन है अत इनके अतिरिक्त उत्कृष्ट शक्ति सम्पन्न और प्रभूत—विशेष कार्य करने वाले गुरु आदि गुण को ही वीर्य कहना उचित है।

इन पारिभाषिक वीर्यवादियों में भी दो मत हैं एक अष्टविध वीर्यवादी और दूसरे द्विविध वीर्यवादी। अष्ट विध वीर्य वादी कहते है कि गुरु, स्निग्ध, शीत मृदु लघु, रूक्ष उष्ण और तीक्ष्ण, ये आठ गुण समग्र गुणों में साररूप अर्थात् चिरस्थायी हैं[3] और अन्य गुणों की अपेक्षा उत्कृष्ट शक्ति वाले हैं। लोक और शास्त्र में मुख्यतया इन से ही व्यवहार होता देखा गया है। अनेक गुणों को मे गुरु आदि गुणों की पहले गणना है रस-प्रभाव अन्य गुणों का पराभव करके अपना कार्य कर लेते हैं अतः

---

१. 'येन कुर्वन्ति तद्वीर्यम्' (चरक सू० २२)

२. तान् गुणांस्तानि कर्माणि विवाद मजकीऽपि। यान्युक्तानि हरीत क्या वीर्यस्तु विपर्ययः ॥ (चरक)

३. "मृदु-तीक्ष्ण गुरु-लघु स्निग्ध रूक्षोष्णशीतमवम् वीर्यमष्टविधं केचित् '' केचिद्द्विविधमास्थिताः, शीतं ष्णमिति ॥ (चरक)

गुरु आदि अष्ट गुण जब उत्कृष्ट शक्ति सम्पन्न होकर द्रव्य में रहते हैं तब उनको 'वीर्य' कहा जाता है। द्विविध वीर्य वादी कहते हैं कि यद्यपि जगत् में सब द्रव्य पाञ्चभौतिक हैं तथापि पञ्चमहाभूतों में अग्नि और सोम के महा बलवान होने से, सब द्रव्यों पर उनका प्रभाव विशेषतया पड़ता है और काल भी आदान (आग्नेय) और विसर्ग (सौम्य) भेद से दो प्रकार का होता है; अतः अग्नि गुण प्रधान उष्ण, और सोम गुण प्रधान "शीत" ऐसे दो प्रकार का वीर्य मानना उचित है। इस सम्बन्ध में मुझे बौद्ध द्रव्य गुण वेत्ता भदन्त नागार्जुन [2] की युक्तियाँ अच्छी प्रतीत होती हैं। औषध द्रव्यों में कौनसी शक्ति है जिसका उनके गुणों रसों, प्रभावों और विपाकों में समावेश नहीं हो सकता है? इस प्रश्न का उत्तर ही 'वीर्य' के अस्तित्व को निश्शंक बना देता है। वीर्य का अर्थ है द्रव्यों में स्थित विशिष्ट गुणोत्पादक तत्त्व (Active-principles) जिसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं। आज नानाविध उपकरणों से युक्त प्रयोग शालाओं में जिस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक गुण द्रव्यों का रासायनिक पृथक् करण (Chemical analysis) कर उनके गुणदोषों का आदेश करते हैं उसी प्रकार हमारे आचार्यों ने भी मानव शरीररूपी प्रयोगशाला पर द्रव्यों के भिन्न २ तत्त्वों का प्रयोग कर उनके सामान्य तथा विशिष्ट गुणों का

---

१. नानात्मकमपि द्रव्यमग्निषोमौ महाबलौ ।" (अ० सं० सू० १७)
तच्च वीर्यं द्विविधं–उष्णं शीतंच अग्निषोमीयत्वाज्जगतः (सुश्रुत)

२. "कर्म कुर्वन्ति वीर्यं' 'रस गुण व्यतिरेकेण योपलब्धिः" (र० वै०)

निर्देश किया है जो आज की भौतिक प्रयोगशालाओं में भी उसी प्रकार सत्य एवं शिव प्रमाणित हो रहे हैं।

कुछ उपयुज्यमान द्रव्यों के वीर्यों का ज्ञान अधिवास[1] से अर्थात् जबतक वे शरीर में रहें तबतक शरीर पर होने वाली क्रियाओं से होता है—जैसे आनुप मांस के उष्णत्व का ज्ञान जब तक वह शरीर में रहता है तब तक शरीर पर होने वाली उसकी क्रियाओं से अनुमान किया जाता है। और कुछ उपयुज्यमान द्रव्यों के वीर्य का ज्ञान निपात से अर्थात् जिह्वा या त्वगिन्द्रिय के साथ उनके संयोग मात्र से होता है, जैसे काली मिर्च आदि के तीक्ष्णत्व आदि का ज्ञान निपात से होता है। कुछ द्रव्यों के वीर्य का ज्ञान निपात और अधिवास दोनों से होता है। शीतवीर्य वाला द्रव्य मूर्च्छा, तृषा, स्वेद को जीतने वाला और स्तम्भन एव मन को प्रसन्न करने वाला होता है। उष्ण वीर्य वाला द्रव्य वायु और कफ को नाश करने वाला पित्त को बढ़ाने वाला और जरा को करने वाला होता है।

प्रभाव—(Specefic actions)[2]- जब औषध या द्रव्य का कोई भी समाधान कार्यकारणभाव के नियम द्वारा न हो

१. "वीर्यं यावदधिवासान्निपाताच्चोपलभ्यते।" ,(चरक सू० २६)

२. "रसादि साम्ये यत्कर्म विशिष्टं तत्प्रभावजम्।" (अ० हृ० सू०)
दन्ती रसाद्यैस्तुल्यापि चित्रकस्य विरेचनी ॥
मधुकस्य च मृद्वीका, घृतं क्षीरस्य दीपनम् ॥" (अ० हृ०)
"रसवीर्यविपाकानां सामान्यं यत्र लक्ष्यते।
विशेषः कर्मणां चैव प्रभावस्तस्य स स्मृतः ॥" (च० सू०)

सके तो प्रभाव के द्वारा किया जाना है। जिस द्रव्य में रस, वीर्य, विपाक, सामान्य हों अर्थात् उस द्रव्य में रहे हुए रस, विपाक, और वीर्य के जो कार्य शास्त्र में कहे हुए हैं वे समान हों, परन्तु कर्म में विशेषता हो अर्थात् उस द्रव्य में रहे हुए रसादि के कर्मों से भिन्न ही कम देखने में आवे तो उस विशेष कर्म का "प्रभाव" कारण समझना चाहिए। जैसे चित्रक रस में कटु है, उसका विपाक भी कटु है और उसका वीर्य उष्ण है। चित्रक में कटु रस का, कटु विपाक का, और उष्ण वीर्य का जो कार्य शास्त्रों में वर्णित है वही देखने में आता है परन्तु दन्ती का, चित्रक के समान रस, विपाक वीर्य होने पर भी, भिन्न विरेचन रूप कर्म देखने में आता है। दन्ती के इस विरेचन रूप कर्म का कारण प्रभाव है। इसी प्रकार मुनक्का (द्राक्षा) के मुलेठी के समान होने पर भी, मुलेठी विरेचन नहीं कराती, पर मनुक्का विरेचक है। घृत, दूध समान होने पर भी घृत दीपन होता है परन्तु दूध दीपन नहीं होता इत्यादि।

द्रव्यगत कार्यकारिणी शक्ति को वीर्य कहते हैं। यह शक्ति दो प्रकार की होती है। एक चिन्त्य शक्ति और दूसरी अचिन्त्य शक्ति। चिन्त्य शक्ति वह है जिसका द्रव्यों के पाञ्चभौतिक संगठन, रस, गुण, या विपाक द्वारा कर्म के साथ कार्यकारण सम्बन्ध दिखाया जा सके। इस चिन्त्य शक्ति को आयुर्वेद शास्त्र में वीर्य कहा जाता है। अचिन्त्य शक्ति वह है जिसका द्रव्यों के पाञ्चभौतिक संगठन, रस, गुण या विपाक द्वारा, उसके कर्म के साथ कार्य कारण सम्बन्ध न दिखाया जा सके। इस को आयुर्वेद की परि-

भाषा मे 'प्रभाव' कहते हैं।[1] 'जिन द्रव्यों की कार्य कारिणी शक्ति युक्ति और तर्क से सिद्ध नहीं होती तथा जिनका विरेचकत्व, स्तम्भकत्व, विषहरत्व आदि कर्म अपने स्वभाव से ही शास्त्र मे प्रसिद्ध हैं, उन द्रव्यों का उपयोग वैद्यगण शास्त्र के आधार पर ही करते हैं। जिन औषधियों का फल-कर्म प्रत्यक्ष देखा जाता है और जो स्वभाव से शास्त्र मे प्रसिद्ध है, उन औषधियों की विद्वान् वैद्य तर्क और युक्ति से परीक्षा न करें। क्योंकि 'अम्बाष्ठादिगण' की औषधियां हजारों तर्क और युक्ति से विरेचन कराने मे समर्थ नहीं हो सकतीं। इस लिए बुद्धिमान वैद्य अचिन्त्य और प्रत्यक्ष फल वाली औषधियों के विषय में शास्त्र के वचनों पर विश्वास रख कर उनका प्रयोग करें।।" एक विष जो दूसरे विष का नाश करता है उसका कारण उस विष मे रहा हुआ प्रभाव है। वामक और विरेचक द्रव्य जो वमन और विरेचन कराते हैं उनमे भी

---

१ "अमीमांस्यान्यचिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावत ।
आगमेनोपयुज्यानि भेषजानि विचक्षणै ॥
प्रत्यक्षलक्षण फलाः प्रसिद्धाश्च स्वभावतः।
नौषधिर्हेतुभिर्विद्वान् परीक्षेत कदाचन ॥
सहस्रेणापि हेतुनां नाम्बाष्ठादिविरेचयेत्।
तस्मात्तिष्ठेत्तु मतिमानागमे न तु हेतुषु ॥ (सुश्रुत)
"विषं विषघ्नमुक्तं यत् प्रभावस्तत्र कारणम् ।
मणीनां धारणीयानां कर्म यद्विविधात्मकम् ॥
तत् प्रभावकृतं तैषां प्रभावोऽचिन्त्यमुच्यते ॥" (चरक)

प्रभाव ही कारण है। क्योंकि उसके समान रस, वीर्य और विपाक वाले अन्य द्रव्य वमन या विरेचन नहीं कराते। नाना प्रकार के रत्नों तथा अन्य वनस्पति आदि धारण करने से जो विविध प्रकार कर्म करते हुए देखे जाते हैं वे उनके प्रभाव से ही होते हैं।

आहार द्रव्यों के वर्गीकरण—इसी अध्याय में आहारोपयोगी द्रव्यों के १२ वर्गों का संकेत किया गया है। इन वर्गों में द्रव्यों की संख्या निम्न प्रकार से है। यह वर्गीकरण चरक के अनुसार है—

शूकधान्य वर्ग:—

सुधान्य

(१) रक्त शाली (२) महाशाली (३) कलमः (४) शकुनाहृतः (५) चूर्णकः (६) दीर्घशूकः (७) गौरः (८) पाण्डुकः (९) लाङ्गुलः (१०) सुगन्धकः (११) लोहबालः (१२) शालिकाख्यः (१३) प्रमोदकः (१४) पतङ्गः (१५) तपनीयः।

ये १५ प्रकार के शूकधान्य रस तथा विपाक में मधुर वीर्य से शीत होते हैं। कुछ वायु को करने वाले, मलको बांधने तथा अल्प करने वाले होते हैं। स्निग्ध, बृंहण, शुक्र और मूत्र को बढ़ाने वाले हैं। इन में रक्तशाली श्रेष्ठ है। यह विशेषकर तृष्णा और मल (दोष) को नाश करता है। इसके बाद महाशाली का स्थान है और तीसरा स्थान कलमशाली का है। इनके बाद अन्य शालियों का क्रमशः स्थान है। सुश्रुत ने रक्तशाली को चक्षुष्य भी

कहा है। ये सुधान्य कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त एक षष्ठिक (षाठी) होता है जो बहुत हलका-शीतल, स्निग्ध-स्वादु और त्रिदोष का नाश करने वाला है। यह दो प्रकार का होता है गौर और कृष्ण-इन में गौर श्रेष्ठ है। यह देह को दृढ़ करने वाला होता है।

कुधान्य

(१६) यवका (१७) हायनाः (१८) पांशुवाष्य (१६) नैपधक इत्यादि (२०) वरकः (शाकम्भरी) (२१) उद्दालकः (वनकोद्रव) (२२) चीनः (२३) शारदः (२४) उज्ज्वलः (२५) दर्दुरः (२६) गन्धलः (२७) कुरुविन्दः (२८) व्रीहि-मधुर रस-अम्ल विपाक-पित्तकर-गुरु-मूत्र पुरीषोष्मा को रोकने वाले (२६) पाटलः(पाटल कुसुम वर्णा व्रीहिः) त्रिदोष को करने वाला।

ये कुधान्यों में हैं। इनका गुण भी शालिविशेष होने से प्रायः शालि-समान है। वृद्ध-वाग्भट्ट के अनुसार-ये स्वादु-उष्ण गुरु, स्निग्ध, विपाक से अम्ल, श्लेष्म और पित्त को बढ़ाने वाले, मलमूत्रको निकालने वाले हैं। इनमें वरक (शाकम्भरी) से कुरुविन्द तक अच्छे हैं। ये षष्ठी से किञ्चित् न्यून गुण वाले हैं।

(३०) कोरदूषः—कोद्रव को कहते हैं—यह भी तृणधान्य विशेष है (३१) श्यामाकः—तीन प्रकार का होता है—श्यामाक—हस्तिश्यामाक—जलश्यामाक ये दोनों कोरदूष और श्यामाक कषाय, मधुर-वातल, कफपित्तघ्न, शीत, संग्राही होते हैं।

(३२) हस्तिश्यामाक (३३) नीवार (३४) तोय पर्णी (३५) गवेधुकः (३६) प्रशान्तिका (३७) अम्भश्यामाक (३८) लोहित्याभः (३९) प्रियङ्गुः (४०) मुकुन्दः (४१) झिण्टि (४२) गर्मूटी (४३) वरूका (४४) वरका (४५) शिम्बीर (४६) इत्कट (४७) जूर्णाह्वा।

ये तृण धान्य है। गुण में श्यामाक के सदृश हैं। (४८) वेणुयव—रूक्ष—कषायानुरस - मधुर—कफपित्तहा-मेद-क्रिमिविषघ्नः बल्यः। (४९) गोधूमः—गेहूं—सधानकृत्, वातहर, स्वादु-शीतल, जीवन, बृंहण वृष्य, स्निग्ध, गुरु, स्थैर्यकर है। (५०) नान्दी मुख और (५१) मधूली ये दोनों तृण धान्य के भेद हैं। ये मधुर स्निग्ध और शीतल होते हैं (५२) यवः—यव रूक्ष शीत-गुरु-स्वादुः, वायु और मल को अधिक करने वाला, वय स्थापनकर, बल्य, श्लेष्म विकार को नाश करने वाला, ईषत् कषाय रस वाला है।

२. शमीधान्य वर्ग—

मुद्ग (मूंग) कषाय-मधुर-रूक्ष-शीत-पाक में कटु-लघु श्लेष्म पित्तनाशक सब दालों में श्रेष्ठ है।

(२) माष—(उड़द).—वृष्य-वातहर-स्निग्ध-उष्ण मधुर-गुरु-बल्य-मलको बढ़ाने वाला, शीघ्र पंस्त्व को देने वाला है।

(३) राजमाषः—(बोरां-लोबिया) सर-रुचिको बढ़ाने वाला-कफ-शुक्र-और अम्ल पित्त का नाश करने वाला, पाक में स्वादु, वातल, रूक्ष, कषाय-विशद और गुरु है।

(४) कुलत्थः (कुलथी)—उष्ण कषायरस-पाक में अम्ल कफ शुक्र और वायु का नाश करने वाली, ग्राही, है तथा कास हिक्का श्वास और अर्शरोग में हितकर है। सुश्रुत ने इसे विपाक में कटु कहा है।

(५) मकुष्ट (बन मंग)—मधुर (रस तथा पाक में) ग्राही, रूक्ष, शीतल, रक्तपित्त में हितकारी।

(६) चणक (चना) (७) मसूर (८) खाण्डिका (खेसारी) (९) हरेणवः (कविली) १०) कलायः (मटर)

चणक से लेकर मटर तक, ये पांच दाल लघु, शीतवीर्य वाले, मधुर ईषत्कषाय रसवाले, रूक्ष, पित्त और श्लेष्म विकार में लाभप्रद हैं। इनमें मसूर ग्राही और कलाय परम वातल है।

(११)तिलः—स्निग्ध-उष्णवीर्य मधुर तिक्त कषाय और कटु रस वाला, केश और त्वचा के लिये हितकारी, बल बढ़ाने वाला, वातघ्न, कफ पित्त को करने वाला है।

(१२) शिम्बी—यह कृष्ण-पीत-रक्त-श्वेत भेद से अनेक प्रकार की होती है। यह गुरु, मधुर रस वाली, शीत वीर्य, रूक्ष, बल नाश करने वाली है। यह मुद्गादि की आर्द्र फली है। यह रूक्ष कषाय और पेट में वायु का प्रकोप करने वाली होती है।

(१३) आढ़की—(अरहर)-कफ पित्त को नाश करने वाली, वातल, परन्तु सुश्रुत ने "नातिवातप्रकोपिणी" ऐसा लिखा है।

(१४) अवल्गुजः

(१५) सैड़गजः

(१६) निष्पावः (भटवास)-इसकी लता होती है इसके फल फूल सेम के समान होते हैं। इसकी सब्जी (तरकारी) बनती है।

(१७) काकाण्डोला

(१८ आत्मगुप्ता- (कौंच कवाच)

सुश्रुत संहिता तथा भाव प्रकाश में धान्य के कई वर्ग किए गए मिलते हैं। यथा-"शालिधान्य व्रीहिधान्य शूकधान्य तृतीयकम्। शिम्बीधान्यं क्षुद्रधान्यमित्युक्तं धान्यपञ्चकम्॥" परन्तु चरक और वाग्भट में धान्य के केवल दो ही वर्ग किए हैं जैसा कि ऊपर कहा गया है। उक्त पांचों वर्ग इनके अन्दर ही आ जाते हैं।

भावप्रकाश के अनुसार (१) शालिधान्य के अन्तर्गत—महाशालि, रक्तशालि कलम, पाण्डुक, शकुन हृत सुगन्धिक कर्दमक, पृषक, कूष्माण्डक, पुण्डरीक, महिषमस्तक, दीर्घशूक, काञ्चनक, हायन, लोध्र, पुष्पक, इत्यादि हैं। ये भिन्न २ देशों में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के चावल हैं।

(२) व्रीहिधान्य के अन्तर्गत—कृष्ण व्रीहि, पाटल, कुकुटाण्डक, शालामुख, जतुमुख हैं। जो चावल वर्षा ऋतु में पैदा होते हैं अर्थात् पक कर तैयार होते हैं तथा ओखली में छांटने पर सफेद होते हैं तथा देर में पकते हैं वे व्रीहि धान्य कहलाते हैं। षाष्टिक (साठी) चावल भी इसी के अन्तर्गत हैं।

(३) शूक धान्य के अन्तर्गत— यव, अतियव, तोक्य ये तीन हैं। शूक धान्यों में 'यव' प्रसिद्ध हैं। अतियव– यह शूक रहित काले तथा अरुण रंग का होता है। तोक्य-यह हरे रंग का

शूक रहित छोटा यव होता है और लोक में इसे जई कहते हैं। गेहूं भी इसी वर्ग में आता है। यह १. महागोधूम २. मधूली और ३. दीर्घ गोधूम इन भेदों से ३ प्रकार का होता है।

(४) शिम्बीधान्य - मूंग, मसूर, मोठ, उडद, चने, अरहर, मटर, खेसारी, कुलथी, लोबिया (बोरा) इत्यादि शिम्बीधान्य के अन्तर्गत है। तिल, अलसी (तीसा) तोरी, सरसों, राई, सफेद सरसों, काली राई, मेथी इसी के अन्तर्गत वर्णित हैं।

(५) क्षुद्रधान्य—कंगुनी, चीना, श्यामाक, कोद्रव, कुसुम्भ बीज, गरहड़ेआ (गवेधुका) तीना (निवार) जनेरा या जुवार आदि क्षुद्र धान्य के अन्तर्गत वर्णित हैं।

शूक धान्य (Cereals) और शिम्बीधान्य या वैदल (Pulses) यह दो भेद आधुनिक विज्ञान के अनुसार अच्छे प्रतीत होते हैं। उपर्युक्त धान्यों में से कुधान्य जंगली तथा गरीब लोगों के अतिरिक्त दूसरे लोग कम खाने के व्यवहार में लाते हैं। शूक धान्य वर्ग के अन्न आधुनिक विज्ञान के अनुसार "ग्रेमीनेसी" (Gramineae) श्रेणी के वनस्पतिओं का बीज है। मनुष्य-जाति का प्रधान खाद्य केवल इस श्रेणी के धान्य से ही आता है। इन में मुख्य चावल, गेहूं, यव, मकई, बाजरा, ज्वार इत्यादि हैं। केवल चावल और गेहूं संसार के लोगों का प्रधान खाद्य है। भारतवर्ष, चीन, जापान, ब्रह्म प्रदेश, इत्यादि पौरस्त्य देशों में चावल का सेवन अधिक हैं। यूरोप में गेहू का सेवन अधिक होता है।

इटली, अमेरिका, में मकई का सेवन अधिक है। इन खाद्य द्रव्यों में शर्करा जातीय तत्त्व (कार्बोहाइड्रेट) अधिक मात्रा में होता है। प्रोटीन तथा स्नेह वस्तु की न्यूनता रहती है। इन में कुछ खनिज द्रव्य भी होते हैं। पौष्टिकता की दृष्टि से गेहूं चावल से उत्तम है। प्रोटीन गेहूं में चावल की अपेक्षा ज़्यादा होता है। इस लिये गेहूं भारी बलकारक, स्निग्ध स्थिर और संधानकृत कहा गया है। गेहूं के छिलके का रासायनिक संगठन देखने से यह मालूम होगा कि उसमें खनिज द्रव्य अधिक परिमाण में होने के कारण उसको फेंक देने से, हम गेहूं के पौष्टिक अंश से वञ्चित रह जाते हैं। इस लिये आटे को बहुत बारीक चलनी से छानना अच्छा नहीं। बिना छना आटा ही सब से अच्छा होता है। उस में 'सेल्यूलोज' (Cellulose) भी होता है जो मलावरोध नहीं होने देता। इसी लिये गेहूं 'सर' भी है।

शिम्बी धान्य—इस वर्ग के धान्य वनस्पति वर्ग के लेग्युमिनेसी (Leguminoceae) श्रेणी के हैं। इनमें अन्य वनस्पति द्रव्यों की अपेक्षा प्रोटीन की राशि अधिक होती है। इस कारण से इनको निर्धनों का 'मांसाहार' कहते हैं परन्तु दाल का प्रोटीन मांस के प्रोटीन की अपेक्षा अधिक भारी है। प्रोटीन के अतिरिक्त इस में पोटाशियम, कैल्शियम, गन्धक, इत्यादि खनिज भी होते हैं। जिनका मुख्य खाद्य चावल है वे प्रोटीन आदि की कमी की पूर्त्ति दाल से ही करते हैं। दालें पचने में गुरु होती हैं। छिलका उतरी हुई दालें छिलके दार की अपेक्षा पचने में हल्की होती है। दाल में 'प्युरीन' नामक द्रव्य भी होता है। आम वात (Gout)

के रोगियों को दाल का निषेध है। खेसारी त्रिपुटक आदि) के अधिक सेवन से कलाय खंज (Lathyrism) नामक वात व्याधि होती है।

३. मांस वर्ग- इनके अन्तर्गत पशु पक्षी-सरीसृप जल तथा स्थल में रहने वाले जन्तुओं के मांसों का वर्णन है। ये (१), प्रसहाः (ऐसे जन्तु जो बल पूर्वक पकड़ कर खाते हैं। अर्थात् शिकारी जानवर) (२) भूमिशया (ये भूमि में मांद बना कर रहने वाले हैं। (३) आनूपाः (आनूप देश में रहने वाले सृगादि) (४) वारिशया (जल में रहने वाले कूर्मादि) (५) जलचराः (जल में तैरने वाले हंसादि) (६) जांगला (जंगल में रहने वाले हरिणादि) (७) विष्किरा (चोंच और चंगुल से चुग कर खाने वाले पक्षी) ८) प्रतुदा (चंचु चरण से मार कर खाने वाले बाज आदि इत्यादि हैं इन में प्रसहा, भूमिशया, आनुपाः और वारिजाः, वारिचरा इनका मांस उष्ण गुरु, स्निग्ध, मधुर, बल को बढ़ाने वाला, वृष्य, परमवातहर, कफपित्त को बढ़ाने वाले नित्य व्यायाम करने वाले तथा दीप्ताग्नि वाले मनुष्यों के लिये हित है। विशेषकर मांसाहारियों के लिए जो जीर्ण अर्शग्रहणी से कृश हो गए हों प्रसहा का मांस-रस लाभ-प्रद होता है। लावा आदि विष्किर, प्रतुद तथा जांगल मृगों का मांस लघु-शीत-मधुर, ईषत् कषाय होता है।

४-शाक वर्ग—इनके अन्दर सभी शाक आजाते हैं। जैसे पाठा, कासमर्द (शुषा), कचूर (शटी) बथुआ (वास्तुक) शुशुनि (सुनिषण्णक) काकमांची, राजक्षवः, कालशाक,

चाङ्गेरी उपोदिका तण्डुलीयक चौलाई मण्डूकपर्णी, वेत्राग्र कुचेला, वनतिक्तक: कर्कोटक अवल्गुज पटोल शकुलादनी, वासापुष्प शर्ङ्गिष्टा, केम्बुक, नाड़ीक कलाय, गोजिह्वा, वार्ताकी (बैंगन) तिल्लपर्णिका कौल्क, कर्कश, निम्ब पर्पटक, सभी दालों के दो पत्ते ब्राह्मणयष्टि गौडयारतुक (चिल्ली) द्रोपुणष्पी आलूक (रक्ताल पिण्डाल मध्याल.) कठिञ्जर (ताम्रमूलक) शण पुष्प, शाल्मली पुष्प, कर्वुदार (श्लेष्मांतक) सुवर्चुला शिम्बा (निष्पाव) काञ्चनार, पत्तूर (शालिञ्च) कुन्तुपर्णी, कुमारजीव, लोट्टाक, पालक (पालंकय), मारिष कलम्बी (कदम्ब), नालिका आसरी (राई) कुसुम्भ, वृकधूमक भूमिशिरीष), मधुयष्टि प्रपुन्नाड, नलिनी, कुठेरक (तुलसी भेद) लोणिका, यवशाक, कुष्माण्ड अवल्गुज, जातुकं शाल कल्याणी, त्रिपर्णी पीलुपर्णिका षटपत्रि, पिप्पल पत्र पाकर पत्र उदुम्बर पत्र गुड़ूची, गाण्डरी गजपिप्पली, बिल्वपर्णी मण्डी, शतावरी बला, जीवन्ती, पर्वणी, पर्वपुष्पी, लाङ्गली पत्र, एरण्ड पत्र, त्रपुष, एर्वारुक, (ककड़ी, फूट) अलावु चिर्भिट, केलूटु, कदम्ब, नन्दी, माषक, ऐन्द्रक, कमल के पत्र, पुष्प, नाल, कन्द, फल, तालपुष, खर्जूर तथा ताल के मस्तक, मज्जा, तरुट (कहलार कन्द) बिस (मृणाल), शालूक, कसेरू, शृंगाटक, पद्मबीज विदारी कन्द, अम्लिका कन्द, पिण्डालु, इत्यादि। इनका गुण तथा परिचय यथा स्थान दिया जायगा। उपरोक्त शाकों के अतिरिक्त और भी जो शाक उपलब्ध होते हैं वे सब शाक वर्ग के अन्दर आजाते हैं।

५. फल वर्ग—मृद्वीका, खर्जूर, अञ्जीर (फल्गु), फालसा (परुषक) महुआ, (मधूक), आमड़ा (आम्रातक), तालफल,

नारिकेल, भव्य (चालता) द्राक्षा, बेर, सेव, आ क, कर्कन्धु, लकुच, गम्भारी फल, टंक, कपित्थ, बिल्व, आम्र, जामुन, सिञ्चितिका फल,(बदर भेद)गाङ्गेरुकी, करीर, बिम्बी, पनस (कटहल) केला, राजादन (खीरी) लवली हरफरौड़ी , कदम्ब, पील, (अखरोट) केतकी फल, विकंकत (पानीयाला) इङ्गुदी, तिन्दुक, आमलकी, विभीतकी हरीतकी, अनार (दाडिम) वृक्षाम्ल, इमली, अम्लवेतस नींबू, सन्तरा, मौसमी बिजौरा, गलगल चकोतरा, बादाम किशमिश, पिस्ता, अखरोट, मुकुलक, निकोचक, प्रियाल, लसोड़ा, अङ्कोट शमीफल करौंदा अमरूद, वर्ताक फल पर्कटी फल, आर्चिकी फल अश्वत्थ उदुम्बर न्यग्रोध का फल, भल्लातक सेव, नाशपाती, नाख, सीता फल, (शरीफा), अलूचा, लौकाट, शहतूत, अंगूर, काजू इत्यादि ।

६. हरित वर्ग—आर्द्रक, सोंठ, जम्बीर, मूलक, तुलसी, यमानी, अर्जक, शोभाञ्जन, शालेय, गण्डीर, जलपिप्पली, गन्धतृण, अजमोदा, कृष्णजीरक, धनिया, अजगन्धा, तेजपत्र, गाजर, पलाण्डु, लशुन, इत्यादि ।

७. मद्य वर्ग—सुरा, मदिरा, जगल बक्कस, प्रसन्ना, कादम्बरी, गौड़ी, पैष्टी, माध्वी, वारुणी, मेदक, शीधु, आसव, अरिष्ट, शर्कर, पक्वरस, शीतरस आर्चिकी, मैरेय, अभिषुत, मधुलिका, सौवीर, तुषोदक, आरनाल, काँजी, इत्यादि ।

८. जल वर्ग—ऐन्द्रम्, गांगम्, सामुद्रम्, दिव्यम्, आन्तरिक्षं, भौमम्, कौपी नादेयं, तडागम्, वार्षिकम्, शारदम् शैशिरम्,

हैमन्तिकम्, वासन्तिकम्, ग्रैष्म, राजभि, वापी, उत्सः, सरः, प्रस्रवण, काजल, आनूप, धात्व, शौलेय, इत्यादि ।

६. दुग्ध वर्ग—गोदुग्ध, महिष दुग्ध, अजा दुग्ध, स्त्री दुग्ध, ऊँटनी का दुग्ध, घोड़ी का दूध, भेड़ का दूध, हस्तिनी का, दूध, दधि, मन्दक, तक्र नवनीत, घृत, पीयूष, मोरट, किलाट, कट्वर, उदश्वित-मन्थ, इत्यादि ।

१०. इक्षु वर्ग—इक्षु, पौण्ड्रक, गुड़, क्षुद्रगुड़, मत्स्यण्डिका, खण्ड, शर्करा, विमला, गुड़ शर्करा, चारु शर्करा, मधु शर्करा, सर्व शर्करा, फाणित, माक्षिक, भ्रामर, क्षौद्र, पौत्रिक, इत्यादि ।

११. कृतान्न वर्ग—मण्ड, पेया, यवागु, विलेपी, लाजमण्ड, लाजसक्तु, सृष्टतण्डुल, ओदन कृशरा रोटिका, शष्कुली, कुल्माष, यूष, दाल, अपूप, यावक, वाट्य, मधु क्रोड़ सपिण्डिका, बेसवार, रसपूपका गौधूमिका, पृथुका, रसाला, पानक, लेह, संजाव, शिण्डाकी, आसुत इत्यादि—(देखिए-कृतान्न वर्ग)

१२. आहारोपयोगी वर्ग—तिल तैल, एरण्ड तैल, सार्षप तैल, कुसुंम्भ तैल, पियाल तैल तथा अन्य आहारोपयोगी तैल । मज्जा वसा, शुण्ठी, पिप्पली, मरीच, हिंगु, सैंधव, सौवर्चल बिड् लवण, सामुद्र और औद्भिद्, लवण, यवक्षार, सर्जीक्षार, कृष्ण-जीरा, जीरा, स्याहजीरा, यमानी धनिया, इत्यादि ।

नोट—प्रधान भोजन के साथ २ कुछ शाक, फल और कन्दों के भी व्यवहार होते हैं । अतः उनके भी रसायनिक संगठन आगे सारिणी में दे दिये हैं । भूमि के पृष्ठ के नीचे उत्पन्न होने

वाले वनस्पतियों के अंग की गणना कन्दों और मूलों में होती है। कन्द और मूल में वनस्पतियां अपने उपयोग के लिये पोषक पदार्थ एकत्र करती हैं। इनमें से कुछ कन्द और मूल मनुष्यों के भी उपयोग में आते हैं। इस में स्टार्च की राशि अधिक होती है और प्रोटीन तथा स्नेह की मात्रा अत्यल्प होती है। इन में कुछ खनिज पदार्थ (विशेषकर पोटाशियम) भी होता है। यद्यपि ये भोजन के प्रधान अंग नहीं बनते परन्तु मनुष्य इनका व्यवहार भोजन में प्रचुर मात्रा में करता है। कन्द और शाकों में थोड़ा सैल्युलोज भी होता है अतः भोजन में इनका होना भी आवश्यक है। भोजन में प्रोटीन कितना आवश्यक पदार्थ है यह कहने की आवश्यकता नहीं है।

अब हम आहारोपयोगी द्रव्यों की आयुर्वेदीय मतानुसार गुणविश्लेषण की तालिका देते हैं। इससे आहारोपयोगी द्रव्यों के गुण समझने में सरलता होगी।

आहारोपयोगी द्रव्यों के आयुर्वेदीयमतानुसार गुणविश्लेषण

नाम द्रव्य	रस	गुण	विपाक	वीर्य	प्रभाव
चावल	मधुर, कषाय	लघु, स्निग्ध, वृष्य, बृंहण	मधुर	शीत	किञ्चित् वात कफकारक, पित्तनाशक
" (अगहनी)	"	लघुपाकी, रूक्ष, वृष्य	"	"	मलमूत्र को निकालने वाला कफनाशक, पित्तनाशक
" (केदारज)	"	गुरु, शुक्रल	"	"	वात पित्तनाशक, कफकर
" (स्थलज)	ईषत्तिक्तरस	दीपन	कटु	"	पित्तकफघ्न
रक्तशाली (लाल चावल)	मधुर	लघु, बृंहण, स्निग्ध	मधुर	शीत	त्रिदोषनाशक, चक्षुष्य, विषमज्वरतृषानाशक
षष्टिक चावल	मधुर	मृदु, लघु, बृंहण, स्निग्ध	"	"	" "
यव	कषाय, मधुर	मृदु, लेखन, रूक्ष, गुरु पिच्छिल	कटु	शीत	कफपित्तहारी, वातल, मूत्रावपकारी, मेधा और जाठराग्निकृत

नाम द्रव्य	रस	गुण	विपाक	वीर्य	प्रभाव
गेहूँ	मधुर	गुरु, स्निग्ध, बृंहण, शुक्रल, सर, जीवण	मधुर	शीत	वातपित्तहर, संधानकृत
मूंग	मधुर, कषाय	रूक्ष, लघु, ग्राही, विशद	कटु	,,	पित्तश्लेष्महर, नेत्र्य, ज्वरघ्न
मसूर	मधुर	ग्राही	मधुर	,,	कफपित्तघ्न, मूत्रकृच्छ्रनाशक
चना	कषाय	रूक्ष	कटु	,,	वातल, रक्तपित्तशमन
उड़द	मधुर	गुरु, वृष्य, स्निग्ध	मधुर	उष्ण	वातहर
मोठ	,,	लघु, ग्राही	,,	तीक्ष्ण	वातल, कफपित्तहर, कृमिहर
अरहर	कषाय	रूक्ष, बृंहण	,,	शीत	कफपित्तघ्न, विष्टम्भी
मटर	मधुर	रूक्ष	,,	,,	अतिवायुहर, विष्टम्भी
कुलथी	कषाय	,,	अम्ल	उष्ण	वायुनाशक, अश्मरी-नाशक
लोबिया	,, मधुर	गुरु, सर, रूक्ष	मधुर	शीत	वायुकारक, दुग्धवर्धक
सेम	मधुर	गुरु	मधुर	शीत	वातल
मकई	,,	रूक्ष	,,	,,	श्लेष्मजीत्

नाम द्रव्य	रस	गुण	विपाक	वीर्य	प्रभाव
बाजरा	मधुर, कषाय	रूक्ष	कटु	उष्ण	श्लेष्मघ्न, बलदायक
कोद्रव	कषाय, मधुर	,,	,,	,,	,,
श्यामाक	,,	,,	,,	शीत	पित्तनाशक
रागी या मडुआ	,,	रूक्ष, ग्राही	,,	उष्ण	श्लेष्मघ्न, गर्भाशयस्थिति-स्थापक
थवक्	,,	स्निग्ध	,,	शीत	पुष्टिकर
तिल	ईषत्कषाय, तिक्त, मधुर	,,	मधुर	उष्ण	वातघ्न
सर्षप	कटु	तीक्ष्ण	कटु	,,	रक्तपित्त प्रकोपक
राई	कटु, तिक्त	,,	,,	,,	पित्तवर्धक, दाहजनक
अलसी	मधुर	स्निग्ध	,,	,,	कफवायुनाशक, बलकर
घोकर	,,	लघु	मधुर	शीत	पुष्टिकारक
आलू	,,	गुरु, रूक्ष	,,	,,	विष्टम्भी
बैंगन	,,	लघु, ग्राही	कटु	उष्ण	कफवायुनाशक

नाम द्रव्य	रस	गुण	विपाक	वीर्य	प्रभाव
लौकी	मधुर	स्निग्ध	मधुर	शीत	हृद्य, रक्तपित्तनाशक
कोषातकी (तोरी)	”	”	”	”	”
कुम्हड़ा	”	गुरु, रूक्ष	”	”	”
पेठा	”	लघु	”	”	”
फूलगोभी	”	गुरु	”	”	वातल, रुचिकृत्, पुष्टिकर
पत्रगोभी	”	”	”	”	विष्टम्भी
परवल	”	लघु	”	उष्ण	त्रिदोषघ्न, रुचिकृत्
करेला	तिक्त	लघु सर	कटु	शीत	पित्तप्रशामक
मूली	कटु, मधुर	लघु दीपन, पाचन	कटु	उष्ण	त्रिदोषघ्न, शोथघ्न
सूरण	कटु, कषाय	रूक्ष, विशद	”	उष्ण	विष्टम्भी अर्शोनाशक
शकरकन्द	मधुर	गुरु	मधुर	शीत	रक्तपित्तघ्न, विष्टम्भी
गाजर	मधुर, तिक्त	लघु, दीपन	मधुर	उष्ण	”

नाम द्रव्य	रस	गुण	विपाक	वीर्य	प्रभाव
कच्चू	मधुर	स्निग्ध	मधुर	शीत	मलकर, कुष्ठव र्द्धकर
चुकन्दर	"	गुरु	"	"	बल्य, विष्टम्भी, अतिशर्करायुक्त
पलाण्डु	मधुर, कटु	तीक्ष्ण	"	अनुष्ण	वायुनाशक, रसायन
लहसुन	" "	"	कटु	उष्ण	वृष्य वायुनाशक रसायन मेध्य पित्तल
भिण्डी	मधुर	रूक्ष	मधुर	शीत	मूत्रल, अश्महर
खेखसा (कर्कोटक)	तिक्त	लघु, दीपन	कटु	शीत	श्वासकासज्वरहर
चौलाई	मधुर	लघु, रूक्ष, दीपन, पाचन	मधुर	"	विषहर
बथुआ	मधुर	लघु सर दीपन, पाचन,	कटु	"	त्रिदोष नाशक
मानकन्द	कषाय मधुर	लघु रूक्ष	मधुर	"	शोथनाशक
पद्मकन्द	"	"	"	"	पित्तनाशक, वातल
कदलीकन्द	मधुर	लघु, दीपन	"	"	अम्लपित्तनाशक, दाहशामक
सलजम	"	गुरु	"	उष्ण	वायुनाशक
कुन्दुरु	"	"	"	शीत	स्तम्भन, आध्मानकर,
चिरचिरा	"	लघु	"	"	सुपच, क्षयरोग में पथ्य

नाम द्रव्य	रस	गुण	विपाक	वीर्य	प्रभाव
खीरा	ईषत्तिक्त मधुर	लघु, सर	मधुर	शीत	हृद्य, रक्तपित्तनाशक
कन्दगोभी	मधुर	गुरु	”	”	विष्टम्भी
पालक	”	लघु	”	”	पित्तरक्तविषनाशक
सलाद	” ईषल्लवण	”	”	”	जीवनीय गुणाधिक
टमाटर	” अम्ल	”	”	”	धातुवर्धक
आर्द्रक	कटु	तीक्ष्ण, भेदक	”	उष्ण	क्षुधाकारक
सोया	”	रूक्ष	कटु	”	”
मेथी	कटु	”	”	उष्ण	वायुनाशक
धनिया	कटुतिक्तकषाय	लघु, स्निग्ध	मधुर	”	हृद्य, मूत्रल
हरिद्रा	तिक्तकटु	रूक्ष	कटु	उष्ण	कफपित्तनुत्, कृमिघ्न
मिर्च (लाल)	कटु	तीक्ष्ण	”	उष्ण	पित्तकर, विदाही
मिर्च (काली)	”	”	”		वायुकफनाशक
तेजपत्र	मधुर	”	मधुर	उष्ण	कफवातनाशक
हाथगोभी	” तिक्त	” स्निग्ध	कटु	”	वायुपित्तनाशक

नाम द्रव्य	रस	गुण	विपाक	वीर्य	प्रभाव
जीरक	कटु	रूक्ष	कटु	उष्ण	कफनाशक, कृमिघ्न
छोटी इलायची	”	लघु	”	शीत	कफरक्तपित्तनाशक
लवंग	कटुतिक्त	” रूक्ष	”	शीत	”
तिल तैल	कषाय मधुर	सूक्ष्म, व्यवायी	मधुर	उष्ण	पित्तल, श्लेष्मल
सर्षपतैल	कटु	लघु, तीक्ष्ण	कटु	”	कफनाशक, रक्तपित्तप्रकोपक
नारिकेल तैल	मधुर	गुरु	मधुर	”	वातपित्तनाशक
गोघृत	”	स्निग्ध	”	शीत	त्रिदोषघ्न
महिषघृत	”	गुरु, स्निग्ध, वृष्य	”	शीत	रक्तपित्तनाशक
दधि	मधुराम्ल	स्निग्ध अभिष्यन्दी	”	उष्ण	कफमेदबलकृत्
तक्र	कषायाम्ल	लघु, ग्राही, दीपन	”	”	त्रिदोष
मस्तु	अम्लकषायमधुर	लघु	मधुर	शीत	कफवायुनाशक
मोरट	मधुर	बृंहण, वृष्य	मधुर	शीत	पित्तनाशक
किलाट	”	गुरु	”	”	वातहर
दधिसर	”	स्निग्ध	”	उष्ण	”

नोटः—स्मरण रहे आयुर्वेद का आहारविश्लेषण कहीं विशाल और दोषरहित है। उसका बड़ा भाग, शत-शत विद्वानों के अश्रान्त प्रयत्नों के होते हुए भी, अस्पृष्ट पड़ा है। इस लिये जिज्ञासुओं को आयुर्वेद के शब्दों में ही आयुर्वैदिक आहार तत्व का अनुशीलन करना चाहिये और जहां संभव हो, वहाँ उसकी अधुनिक व्याख्या उपलब्ध करनी चाहिये।

आयुर्वेद और जीवनीय तत्त्व—आयुर्वेद में जिन औद्भिद् तथा जगम द्रव्यों को ओज तथा श्लेष्म का वर्धक कहा गया है वे जीवनीय 'ए'—'डी' तथा '३' के योनि (आश्रय) भूत द्रव्य प्रतीत होते हैं। जो द्रव्य पित्त के शामक कहे हैं वे जीवनीय 'सी' के और जो द्रव्य वायु के शामक हैं वे जीवनीय 'बी' के आश्रय भूत पदार्थ प्रतीत होते हैं।—

आहारोपयोगी द्रव्यों के अर्वाचीन गुणविश्लेषण

भोजन द्रव्य	प्रोटीन	मज्जा	शर्करा	कलारी (ताप)	विटामीन A.	B.	C.
नींबू	०·१४	०·१४	०·८८	५	...	+	+++
नाशपाती	०·०६	०·०३	२·११	१०	...	+	+

भोजन द्रव्य	प्रोटीन	मज्जा	शर्करा	कलारी (ताप)	विटामिन A.	B.	C.
अनार	०'१८	..	०.१९	२	......	+	+
लीची	०'८४	०.०७	१'६०	१२	......	+	++
आम	०'०४	०'६२	५'२०	२३	+	...	++
अमरूद	०'३७	०.२०	२.२७	१२	...	+	+
तरबूज	०'११	०'०६	१'६०	६	...	...	++
आलू	०'७०	०'०४	८'१५	३९	कम	+	+से++
चुकन्दर	०'३४	०'०३	१'७५	६	"	+	++
प्याज	०'३७	०.०३	३'०६	१४	"	+	++
लहसुन	१'६२	०'०३	७'६०	४०	+	+	++
मूली	०'२५	०-०३	२'३४	१०	+से++	++	++
गाजर	०'२८	०.०३	०'६६	५	कम	+	+
शलगम	०'३४	०'०३	१'२५	७	"	++	+

भोजनद्रव्य	प्रोटीन	मज्जा	शर्करा	कलारी (ताप)	विटामिन A.	विटामिन B.	विटामिन C.
करमकल्ला	०·३१	०·०३	१·२७	५	+++	++	+++
टमाटर	०·५०	०·०३	१.२७	६	++	+++	+++
गोभी	०·५०	०·०६	१·६७	६	+	+	+
ककड़ी	०·१७	०.०२	० ५७	३	......	+	++
गोदुग्ध	०·६४	१·०२	१·३६	१८	+++	++	+
स्त्रीदुग्ध	०·४२	१.५०	०·७५	१८	+से++	+	+
मलाई	०.७०	५·२४	१·२७	५५	+++	+	......
मठा(मक्खन युक्त)	०·८५	०·१४	१·३६	१०	+	+	+
मठा मक्खनरहित)	०·६६	०·०८	१·४४	१०	+	+	+
दधि	१·४०	१·००	०·८०	१८	++	+.	+
भैंस का दुग्ध	१·३५	२·१८	१·२४	३०	+++	+	+
बकरी "	१·२१	१·१३	१·२१	२०	+++	+	+

भोजनद्रव्य	प्रोटीन	मज्जा	शर्करा	कलारी (ताप)	विटामिन A.	विटामिन B.	विटामिन C
भेड़ का दुग्ध	१.५०	९.००	१.४१	३०	+++	+	+
तैल महुआ	......	२८.००	......	२५२	बहुत कम		
” नारिकेल	......	”	......	”	”		
” अलसी	......	”	......	”			
” जैतून	......	”	......	”			
” सरसों	......	”	......	”			
” तिल	......	”	......	”			
” विनौले	......	”	......	”			
” कोकोजम	......	”	......	२१४	+	+	
” मारगटीन	......	२३.८	......				
चीनी	......	......	२८.३	११२			
शकर	......	”	२६.६	१०८			

भोजनद्रव्य	प्रोटीन	वसा या मज्जा	शर्करा	कलारी (ताप)	विटामिन A.	विटामिन B.	विटामिन C
गुड़	०·०८	......	२५·०	८१	०	कम	—
मधु	०·११	......	२०·२१	६७	+	+	०
साबुदाना	२·८	०·०४	२२·०	—			
गन्ना	०·४२	०·१६	६.२०	२८			
गेहूं का मैदा	३·१४	०·३७	२१.५४	१०२	०	++	०
" आटा	३·६०	०·५४	२०·३५	१०२	+	+	+
सूजी	४·२०	०·६८	१४·२०	८०	+	++	०
यव	२·६७	०·६२	२०·६२	१०	+	++	०
चावल	२·३०	००·८५	२२·३०	६६	+	+	०
" धोया	१·६२	०·१५	२६·३४	११३	०	०	०
" संस्कृत	१·७६	०·१३	२६·०६	११३	०	+	०
बजरी	२·७८	०·४६	२३·३५	१०६	+से++	++	०

भोजनद्रव्य	प्रोटीन	मज्जा	शर्करा	कलारी (ताप)	विटामिन A.	B.	C.
चोलम	२'९०	१'१७	१९'०	१०१	+	++	०
जई	३'३७	२'४३	१९.८२	११५	+	++	०
मकई	२'१३	०'४८	२०'८०	९६	++	++	०
अरहर	६'४४	०.५०	......	११२	+	++	०
चना	६'७	१'४	......	१२०	+	++	०
उड़द	६'६१	०.२२६	......	११३	+	++	०
मसूर	७.५६	०'१९	......	११२	+	++	०
मूंग	७'२	०'२२५	......	११३	+	++	०
बादाम	५'२६	१५'९६	४'३०	१८२	कम	++	०
गोला	१'६१	१४'३१	७'९०	१६७	+	++	०
अखरोट	७'३०	१०'९२	६'९०	१५५	कम	+	०

भोजन द्रव्य	प्रोटीन	मज्जा	शर्करा	कलारी (ताप)	विटामिन A.	B.	C.
मुनक्का	०'४८	०.०१	११.६६	५०	......	...	...
खजूर	०'४५	०.०३	१६'७३	८१	......	+	...
अंजीर—	०'५६	०'१४	१५'६६	६७	......	+	...
इमली—	०'३१	......	८.८६	३७	......	+	+
नारंगी—	२'२५	०'०३	२'६६	१२	+	+	+++
सेव—	०'०१	०'०६	३'५४	१५	......	+	+
केला	०'४५	०'०३	२'२६	११	कम	+	+
अंगूर—	०'१७	०.०३	३'६३	१७	......	+	कम

शूक और शिम्बी वर्ग के प्रधान धान्यों का रासायनिक संगठन

	नाम	प्रोटीन	स्नेह	कार्बोहाइड्रेट	खनिज	जल
शूक वर्ग	१. गेहूं	१२. ४	२.१८	७ .१२	२.२७	११.८३
	२. चोकर	१६.४	३.५	४३.६	६.०	१२.५
	३. चावल	६.२६	०.८	७८.८	१.२३	११.५
	४. यव	८.१२	१.१०	७६.१	२.३	१२.३
	५. मक्ई	६.५७	४.४४	६८.६	३.७५	११.५
शिम्बी वर्ग	१. मूंग	२४.६२	०.६१	५३.४५	३.५७	१०.८७
	२. अरहर	२७.६७	३.३१	५७.२७	५.५	१०.८
	३. मसूर	२५.४७	१.०	५५.३	३.३३	१०.२३
	४. चना	१६.६४	४.३१	५१.१३	३.७२	१०.७
	५. उड़द	२२.३३	१.६५	५५.२२	३.०	१७.५०
	६. मटर	२१.०	१.८	६१.४	२.६	१३.०

	नाम	प्रोटीन	वसा	कार्बोहाइड्रेट	क्षार	जल
कन्द	आलू	१·२	०·१	१९·७	०·९	७६·७
	रतालु	१·६	०·५	२४·३	०·७	७२·९
	प्याज	१·६	०·३	९·३	०·६	८९·१
	मूली	१·४	०·१	४·६	०·९	९०·८
	गाजर	०·५	०·३	१०·१	०·९	८५·७
	चुकन्दर	०·५	०·१	१४·०	०·९	८३·९
	शलजम	०·९	०·१५	६·८	०·८	९३·४
	कसेरक	४·१	०·१०	१७·६	१·६	७५·१
शाक	बन्दगोभी	१·८	०·४	५·८	१·३	८९·६
	फूलगोभी	२·२	०·४	४·७	०·८	९०·७
	टमाटर	१·३	०·२	५·०	०·७	९६·९
	खीरा	०·८	०·२	३·१	०·५	९५·४
	केला	१·३	०·६	२२·०	०·८	७५·३

	नाम	प्रोटीन	वसा	कार्बोहाइड्रेट	क्षार	जल
शाक	बैंगन	०.८९	०.९४	३.४८	०.२६	९०.९८
	भिण्डी	१.९६	१.१	५.७२	०.८	९०.४०
	कद्दू	०.९०	१.०	३.९६	०.७	९३.४०

पदार्थ	जल	वोसजन	प्रोटीन	मज्जा	कलारीताप
	प्र० श०	प्र० श०	प्र० श०	प्र० श०	प्र० श०
गेहूँ	१०.२०	१९.६	१२.२५	२.१७	४.०१०
गेहूँ का आटा	९.८२	२.३३	१४.५६	३.३९	४.०९३
”	१०.५१	२.०२	१२.६३	२.१४	३.९४९
मकई	९.००	१.७७	११.०६	५.०३	४.१३२
” का आटा	९९.४	१.५२	९.५०	४.४१	४.०५७
अरहर की दाल	९.७०	३.५८	२२.३८	१.५१	४.०६७
”	९.३०	३.५८	२२.३८	१.४५	४.०७२
”	७.९९	३.६५	२२.८१	१.८२	४.११
चने की दाल	९.००	३.५०	२१.८८	४.८१	४.०९०
”	८.९९	३.५४	२२.१३	५.१४	४.२९३

पदार्थ	जल प्र० श०	नोमजन प्र० श०	प्रोटीन प्र० श०	मज्जा प्र० श०	कलारीताप प्र० श०
चने की दाल	९·४८	३·८२	२३·८८	५·१४	४·२७४
उड़द की दाल	९·६५	३·६६	२४·७५	०·७५	४·०२६
”	१०·४३	३·६१	२४·४४	०·८८	४·०४२
मसूर की दाल	९·७८	४·२३	२६·४४	०·६७	४·०६३
”	१०·.६	४·४२	२७·६३	०·७०	४·०५८
”	९·८०	४· ४	२६·५०	०·८०	४·०६०
मटर की दाल	९·८२	४·२२	२६.३८	०·६०	४·०४१
”	९·८२	४·८७	३०·४०	१·०२	४·११०
बर्मा का चावल	८·६५	१·२६	७·८८	०·४२	३·८२३
रंगूनी ”	११·५६	१·२६	८·०६	०·४३	३·८१८
नया ”	१०·८२	१·२३	७·६६	०·१६	३·८१
पुराना ”	११·६६	१·१६	७·४४	०·२६	३·८०१
मूंग की दाल	९·८०	४·०६	५·५६	०·८५	४·०५१

भोजन की दृष्टि से दूध सर्वोत्तम पदार्थ माना गया है। भिन्न२ प्राणियों के दूधों का जिनका हम सेवन करते हैं विश्लेषण नीचे दिया जाता है।

दूध	प्रोटीन प्र० श०	वसा प्र० श०	शर्करा प्र० श०	विटामिन A.	B.	C
गो दुग्ध	३.३	३.६	४.६	+++	++	+
स्त्री दुग्ध	१ ४४	५.२४	२'६४	+++	+	+
भेड़ "	५.२८	७.०४	४.६	+++	+	+
बकरी "	४ २६	४ ००	४.२६	+++	+	+
भैंस "	४. ८	७.६७	४ ३६	+++	+	+

आटा	गेहूं	यव	जई	चावल	मटर	आलू
जल	१३.६	१३.८	१२.४	१३.१	१४ ८	७६ ०
प्रोटीन	१०.४	११.१	१०.४	७.६	२३.७	२.०

आटा	गेहूं	यव	जई	चावल	मटर	आलु
वसा	१.४	२.२	५.१	०.६	१.६	०.२
श्वेतसार	६७.६	६४.६	५७.८	७६.५	४६ ७	२०.६
सेल्युलोज	२.५	५.३	११.२	०.६	७.५	०.७
खनिज लवण	१.८	२.७	३.०	१.०	३.०१	१.०

नाम	प्रोटीन	वसा	कार्बोहाइडेट	खनिज	जल
बादम	२१.०	५४.६	१७.२	२.३	४.६
अखरोट	१५ ५७	५७.४३	१३.०८	१.७	१२.२२
पिस्ता	२२ ६	५४.८	१५.६	२.८	४.२

भोज्यांशों के विशेष ज्ञान के लिए परिशिष्ठ में दी हुई सारिणी को देखें। यहां पर सर रौबर्ट मैक करीसन, डाइरेक्टर न्यूट्रीशनल रीसच और पौस्चर इन्स्टीच्यूट लिखित 'फूड' नामक पुस्तक में दिए हुये "Food star" के उद्धरण को पाठकों के सुलभ ज्ञान के लिए दे कर हम इस अध्याय को समाप्त करते हैं।

"आहार तारा" (Food star)—इस पुस्तक में रङ्गीन तारा जिसको आहार तारा कहेंगे पाठकों को देखने को मिलेगा। इसमें सभी आवश्यक भोज्यांशों को जो शरीर (मानव) के पुष्टि, वृद्धि, पूर्ति, स्वास्थ्य तथा उचित कार्यवाही के लिए आवश्यक है, दिया गया है। शारीरोपयोगी भोज्यांशों को भिन्न २ वर्णों में स्पष्ट किया गया है। यथा—आहार तारा के केन्द्र में एक छोटा लाल क्षेत्र है, जहां प्रोटीन लिखा है; और उस प्रोटीन शब्द के ऊपर प्राणिज (Animal) तथा नीचे वानस्पतिक (Vegitable) लिखा है। ये शब्द इस बात को जतलाने के लिए है कि हमारे आहार मे प्रोटीन नामक उपादान प्राणिज तथा वानस्पतिक दोनों आहारों से मिलता है। ये प्रोटीन शरीर का निर्माणकर्त्ता हैं, अर्थात् इससे शरीर का मांस तथा अवयव यथा मस्तिष्क, यकृत, हृदय और वृक्क आदि बनते हैं। और चूंकि मांस का रङ्ग लाल होता है अत उक्त तारे में प्रोटीन का भी रङ्ग लाल रखा गया है। प्राणिज प्रोटीन दूध, मांस, अण्डे, और मछली से प्राप्त होते हैं और वानस्पतिक प्रोटीन अन्न (यथा चावल, गेहूँ, यव, मकई, रागी प्रभृति) बादाम, सब्जी और फलों से प्राप्त होते हैं।

उक्त लाल केन्द्र के चारों तरफ पतला उजला एक वृत्त, जिसमें खनिज (Mineral salts) लिखा हुआ है दीख पड़ता है। ये दूसरे शरीर निर्मायक उपादान हैं जो शरीर के अस्थि, दांत को बनाने में उपयुक्त होते हैं और रक्त को शुद्ध रखते हैं। यह वृत्त उजले रंग में इस लिए रखा गया है क्योंकि जितने

खनिज हैं वे पार्थिव हैं और उनके लवण प्रायः उज्ज्वल रंग के होते हैं यथा लवण (Commonsalt) यह अनेक खाद्यों में होते हैं परन्तु वानस्पतिक आहार में ये प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। इस श्वेत वृत्त के चारों ओर पतला पीले रंग का चिह्न है जहां स्नेह (Fat) शब्द अङ्कित है और उसके ऊपर नीचे क्रमशः प्राणिज और वानस्पतिक लिखा हुआ है। इस का अर्थ यह है कि खाद्य में स्नेह का अंश उक्त प्राणिज तथा वानस्पतिक इन दो द्वारों से आता है जो शरीर में ईंधन का कार्य करते हैं अर्थात् ये स्नेह जलकर शरीर के अन्दर शक्ति उत्पन्न करते हैं। प्राणिज स्नेहों में घृत, नवनीत, मछली का तैल प्रभृति और वानस्पतिक में तिल, सर्षप, नारिकेल, बादाम अलसी आदि हैं। पीले चिन्ह के चारों ओर भूरे रंग का चौड़ा चिह्न कार्बोहाइड्रेट का है जिसमें स्टार्च (श्वेतसार) और शर्करा (Sugar) नामक दो प्रधान भेद अङ्कित हैं। ये भी शरीर के आहारेंधन हैं जो वसा की तरह जल कर शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं और शारीरिक ऊष्मा को अक्षुण्ण रखते हैं। इनका रंग भूरा इस लिए है चूंकि पृथ्वी का रंग भूरा होता है और कार्बोहाईड्रेट विशिष्ट पदार्थ जमीन के अन्दर से ही अधिक उत्पन्न होता है यथा चावल, यव, गेहूँ, मकई, कन्द आलू, प्रभृति। इस भूरे रंग के चारों ओर सबसे चौड़ी परिधि पाण्डु और नीले रंग की हैं जिन में जल लिखा हुआ है। यह सबसे बड़ा है क्योंकि शरीर में इसका सब से अधिक अंश है और इसका रंग पाण्डु नीला इस लिए है चूंकि जल में आकाश का नीला रंग प्रतिबिम्बित होता है।

इस आहार तारा के अन्त में या यों कहें कि इसके चहुँओर पाँच बड़ी २ किरणों की झलक दिखाई गई है और उनमें दो पीले, दो भूरे और एक हरे रंग की हैं। ये पाँचों विटामिन ए, बी, सी, डी और ई के प्रतिनिधि हैं। इन के रंग भिन्न २ रखने का अर्थ यह है कि पाठक को स्मरण हो कि ये विटामिन प्रायः उस रंग के पदार्थ में पाये जाते हैं। जैसे-विटामिन ए और डी इसलिए पीले रंग में रखे गए है क्योंकि वे पीले रंग के पदार्थों में यथा दूध, घी, मक्खन, अण्डा, आलू, टमाटर प्रभृति में होते हैं। बी और ई का रंग भूरा है क्योंकि ये कर्बोहाइड्रेट वाले पदार्थों में जिनका रंग भूरा है अधिक होते हैं यथा यव, गेहूं प्रभृति। विटामिन सी अधिकतर हरी सब्जियों तथा फलों में होते हैं अतः इसका रंग हरा रख गया है।

इसके अतिरिक्त आप उक्त तारे में देखेंगें कि ये पाँचों विटामिन परस्पर सम्बद्ध हैं। यह इस बात को बतलाता है कि ये शरीर निर्माण तथा पुष्टि में उसी प्रकार एक साथ सहायता करते हैं जिस प्रकार उक्त पांच प्रोटीनादि तत्व करते हैं। अब आप को मालूम होना चाहिए कि यह आहारतारा पांच विटामिन किरणोंसे युक्त उन्हीं उपादानोंसे निष्पन्न होते हैं जिन से हमारा शरीर निष्पन्न हुआ है। इसमें किसी एक की कमी से, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, आहार तारा अपूर्ण ही रहेगा। आहारतारागत निर्दिष्ट कद उनके उनके शरीरस्थित अंश का द्योतन करता है। यदि आप इस आहार तारा को सम्यक् रूपेण समझ कर अपनी आहार व्यवस्था करें तो आप निश्चय ही स्वस्थ एवं सानन्द जीवन पूर्ण व्यतीत करेंगें।

—:o:—

तृतीय अध्याय

आहार मात्रा

"मात्राशी स्यादाहारमात्रापुनरग्निबलापेक्षिणी"

(चरक)

आहार मात्रा का कोई ऐकान्तिक नियम नहीं बन सकता। कारण यह है कि मात्रा की कोई स्थिति नहीं होती[1]। आहार की मात्रा देश काल, प्रकृति, बल और भिन्न २ व्यक्तियों के भिन्न अभ्यास पर तथा आहार द्रव्य की प्रकृति पर निर्भर करती है। प्राचीन विज्ञानानुसार आहार की मात्रा व्यक्ति विशेष के अग्नि बल के अनुकूल होती है और उसकी पहचान यह है कि 'भुक्त पदार्थ बिना कोई विकार उत्पन्न किए हुए ठीक समय में पच जाय और अगली भूख को न मारे, उसे उचित मात्रा कहते हैं[2]। अर्वाचीन

---

१. "स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः" चरक

२. यावद्ध्यस्याशनमशितमनुपहत्य प्रकृतिं यथाकालं जरां गच्छति तावदस्य मात्राप्रमाणं वेदितव्यं भवति। च० सू० ५.

विज्ञान उसे और स्पष्ट कर कहता है कि शरीर के अन्दर निम्न मात्रा में शरीर धातु निर्माण के लिए प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फायट, साल्ट, और जल आदि भोज्यांशों की आवश्यकता होती है अतः उसे उपयुक्त मात्रा में देना परमावश्यक है। विचारना यह है कि उक्त भोज्यांश कितनी मात्रा में प्रति दिन प्रत्येक पुरुष को लेना चाहिए। शरीर के जो अन्दर भोज्यांश जाता है उसका दो तरह से उपयोग होता है। प्रथम उपयोग धातु निर्माण और दूसरा शक्ति निर्माण है। धातु तथा शक्ति निर्माणार्थ इन भोज्यांशों का नाना प्रकार से परिपाक होता है और उस परिपाक से भोज्यांश में तरह-तरह के परिवर्त्तन यथा रसान्तर, रूपान्तर तथा द्रव्यान्तर आदि होते हैं। भोज्यांश के जिस अंश से शरीरोष्मा (Energy) तैयार होती है उनका एक प्रकार से सर्वथा नाश होजाता है, और जो अन्श शेष परिवर्त्तित रूप में रहते हैं वे भी मल रूप होकर शरीर से बाहर हो जाते हैं। अतः जिस परिमाण में शरीराग्नि ईंधन मांगती हो उसी परिमाण में देना चाहिए[1] जिस से किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न होने पावे।

---

1. "मात्रां खादेद्बुभुक्षितः" "मात्रामात्रमतिकालं वा हीनाधिक—मथापि" सुश्रुत

"बुभुक्षितोऽन्नमश्नीयात् मात्रावद्विदितागमः" सु० सू० ४६.
हीनमात्रमसन्तोषं करोति च बलक्षयम्। आलस्य गौरवाटोप सादांश्च कुरुतेऽधिकाः। मात्रावद्ध्यशनमशितमनुपहत्य प्रकृतिं बल वर्णसुखायुषा योजयत्युपभोक्तारमवश्यमिति"। (सू० सू० ५.)

यह मात्रा भोक्ता के अग्निबलापेक्षिणी होती है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि मात्रा निर्णय में केवल भोक्ता के अग्नि और बल का विचार मात्र ही आवश्यक है। द्रव्य (आहार द्रव्य) किस प्रकार का है (गुरु या लघु) यह भी मात्रा विचार के लिये परमावश्यक है। क्योंकि भोजन करने के विधान में यह स्पष्ट कहा गया है कि लघु द्रव्यों का आहार तृप्ति पर्यन्त करना चाहिये और गुरु भोजन के लिये अर्ध तथा पवन तृप्ति का ही उपदेश है। कारण—लघु द्रव्य वाय्वग्नि गुण विशिष्ट होने के कारण अग्नि को दीप्त करने वाले होते हैं परन्तु गुरु द्रव्य पृथ्वी और जल गुण विशिष्ट होने से अग्नि को मन्द करने वाले होते हैं। अति तृप्त होना सर्वदा मना है।[1]

औसत मात्रा—

उपरोक्त आहार मात्रा को औसत रूप में निकालने के लिए आज के वैज्ञानिकों ने भोज्यांशों का नाप (Calorie Value) निकाला है। परीक्षण तथा अनुसंधान से पता लगता है कि

---

1. सैषा भवत्यग्नि बलापेक्षिणी मात्रा। न च नापेक्षते द्रव्यम्। द्रव्यापेक्षया च त्रिभागसौहित्यमर्धसौहित्यं वा गुरूणामुपदिश्यते। लघूनामपि च नातिसौहित्यमग्नेर्युक्त्यर्थम्॥ (च०सू०५.) "मात्रा लघु स्यादाहारः कश्चिद्द्रव्यः लघुः स्मृतः। मात्रा गुरुस्तथैव स्याद् द्रव्यतश्च तथा गुरुः॥ पुराणा शालयो मुद्गाः शशातित्तिरलावकाः। एवं प्रकारं यच्चान्यत् तद्द्रव्यं लघु सम्मतम्॥ ग्राम्या नूपौदकं मांसं दधि पिष्ट तिलाद्युतं एवं प्रकारं यच्चान्यत् तद्द्रव्यं

औसत कद का पुरुष जो २४ घंटे शय्या पर पड़ा रहता हो उसे लगभग १७०० कलारी ताप की अवश्यकता, शारीरिक ताप, हृद्गति तथा प्रश्वास को कायम रखने के लिए, रहती है। परन्तु परिश्रम करने वाले मनुष्य को अधिक कलारी ताप की आवश्यकता पड़ती है जो उस के कार्य्यानुसार ३४०० से ४००० तक का होता है। किस भोज्यांश में कितना कलारी ताप है यह आने वाली सारिणी (Chart) से पाठकों को पता चल जायगा और इसी के आधार पर यह भी पता चल जायगा कि हमको किस भोज्यांश की कितनी आवश्यता है। इस के लिए कोई स्पष्ट मात्रा नहीं निर्धारित की जा सकती है। स्थूल रूप से हमको इस बात का ज्ञान हो गया है कि हमारे शरीर मे मुख्यतः प्रोटीन, चर्बी, कार्बोहाइड्रेट, लवण जल और विटामिन्स पाई जाती है। जब हम परिश्रम करते हैं तो ये ही चीजें जल कर हमें शक्ति प्रदान करती है। यदि हमारे शरीर के उक्त तत्व यों ही जल कर क्षीण होते चले जायँ और हम उसकी

गुर्व्वितं स्मृतम् ॥ तत्र यो मात्रया भुंक्ते द्रव्यं गुर्वपि मानवः। आहारः तस्य पश्यन्ति लघुमेव चिकित्सकाः ॥ मात्रयादीन्यपि योऽत्यश्च मश्नाति सुलघून्यपि। आहारं स तथा रूपो व्यक्त सम्पद्यते गुरुः ॥ द्रव्यस्य लघुनो युक्त्या सौहित्यं योधिगच्छति एकान्त पथ्यं त विद्यादाहारं कुशलो लघुं ॥ यो युक्त्यापि हि सौहित्यं द्रव्यस्यालघुनो भजेत् । तथाविधमिहाहारं गुरुमेव मबीम्यहम् ॥ तस्मातत्रिभागसौहित्यमर्धसौहित्यमेव वा। आहारं लघुमन्विच्छेद् गुरुणा सेवितं सदा ॥ लघुनाम समासाद्य द्रव्यं योऽश्नाति सेवते। तल्लघ्वपि अति संयुक्तं कोष्ठे संपद्यते गुरु ॥ (भेल-सू० २१.)

पूर्त्ति न करें तो अन्त में हमारी मृत्यु हो जायगी।[1] अतः आवश्यक है कि हम अपने शरीर के जितने तत्त्व रोज परिश्रमादि से नष्ट करते हैं उनकी पूर्त्ति भोजन द्वारा करें।

मानव शरीर में प्रोटीन आदि की मात्रा—

मनुष्य के शरीर में १८ फी सदी प्रोटीन का भाग होता है। इसका खास काम नस, मांस पेशी, और स्नायु आदि का निर्माण करना है। स्नेह वस्तु (fat) का अंश मानव शरीर में लगभग १५ प्रतिशत होता है। भोजन में शरीर की आवश्यकता से जब इसकी मात्रा अधिक होती है तब वह शरीर में एकत्र हो जाती है और आगे जब आवश्यकता पड़ती है तब जल कर शक्ति (Energy) प्रदान करती है। चर्बी और शर्करा शरीर में जल कर शरीर को कार्य्य करने की शक्ति प्रदान करते हैं। भोजन में इनकी कमी होने से शरीर के अन्य तत्त्व (पोषक) शक्ति उत्पन्न करने के लिए स्वयं जलने लगते हैं जिसका परिणाम होता है कि शनैः २ शरीर दुर्बल होने लगता है। लवणों से शरीर को कोई शक्ति नहीं मिलती है। इनका कार्य्य हड्डियों को पुष्ट करना है। साथ ही भोजन के अन्य तत्वों को पचाने में इन से सहायता मिलती है। शरीर में इनका अंश प्रतिशत ५ या ६ रहता है। भोजन में इनकी कमी होने से हड्डियों की पुष्टि में कमी हो जाती है और आहार ठीक प्रकार से परिपाक नहीं होता, जिससे नाना प्रकार की व्याधियों के होने की सम्भावना होती है। अतः स्वास्थ्य रक्षा के लिए भोजन में इनका उपयुक्त मात्रा में रहना परमावश्यक है। जल का अंश हमारे शरीर में ६४ प्रतिशत होता है। शरीर की सारी रासायनिक

क्रियायें जल की उपस्थिति में ही होती हैं इससे इसका उचित अंश में होना बहुत जरूरी है। पानी से दूसरा लाभ हमारे शरीर को यह होता है कि यह हमारे शरीर के ताप क्रम को सदा समावस्था में रखने में सहायता करता है। जब अधिक गर्मी पड़ती है तब शरीर से पानी पसीने के रूप में निकल कर वाष्प बन, उड़ कर शरीर की अधिक गर्मी खींच लेता है। इसी कारण शीत काल की अपेक्षा उष्ण काल में हमें जल की अधिक आवश्यकता पड़ती है। यदि मनुष्य फलों की उचित मात्रा अपने भोजन में रखे तो अलग से पानी पीने की जरूरत बहुत कम पड़ती है। फलों में इतना अधिक जल होता है कि शरीर की पानी की आवश्यकता प्रायः उससे पूरी हो जाती है। हेलो बर्टन साहब के मतानुसार शरीर में जल प्रति शत ६४-६५, प्रोटीन १६-१८ फायट १४-१५ लवण ५-६ और कार्बोहाइडेट—१ प्रतिशत होता है। बनावट के अनुसार शरीर में अस्थि पञ्जर (Skeleton) १६ मांस-४२, चर्बी-१८ कला (Vesceva) ९ त्वचा ८, मस्तिष्क २, रक्त—५, प्रतिशत तौल में होता है। जिसमें मांस पेशी में में ७५ फी सदी जल, २१ प्र०श० प्रोटीन, और ४ प्र०श० अन्य तत्व होते हैं।

उपरोक्त ५ वस्तुओं के अतिरिक्त हमारे शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हमें एक और पदार्थ की आवश्यकता पड़ती है, वह है जीवन सत्व (Vitamin)। यह एक रासायनिक वस्तु है जिसका पूरा रासायनिक हाल अभी तक वैज्ञानिक लोगों को नहीं मालूम हो सका है। इनके अनेक भेद हैं और ये प्रायः हर एक

प्राकृतिक भोजन में किसी न किसी अंश में पाये जाते हैं। फलों तथा सब्जियों में इनकी अधिक मात्रा रहती है। यद्यपि इनकी मात्रा प्रत्येक पदार्थ में इतनी कम होती है कि उसे पृथक् करना प्रायः सम्भव नहीं फिर भी बड़े आश्चर्य की बात है कि इन जीवन सत्वों (विटामिनों)की इतनी न्यून मात्रा का ही हमारे स्वास्थ्य पर पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक वस्तुओं में रहनेवाली विटामिनों की मात्रा ही हम लोगों के लिए पर्याप्त है। भोजन में जीवन सत्वों (विटामिनों) की कमी होने पर तरह २ की बीमारियां हो जाती हैं। विटामिनों के आविष्कार के पहिले मनुष्य में कई तरह की ऐसी बीमारियां फैली थीं, जिनका कारण अर्वाचीन चिकित्सकों को नहीं मालूम हो सका था। बाद में मालूम हुआ कि खास प्रकार की बीमारियां खास २ विटामिनों की कमी के कारण हो जाती हैं। इस प्रकार इन विटामिनों का खास कार्य्य शरीर की सभी क्रियाओं को ठीक प्रकार से संचालित करना तथा बीमारियों से बचाना है।

इससे आगे जीवन सत्वों का वर्गीकरण देखये!

जीवन सत्वों का वर्गीकरण

जीवन सत्व		अभाव के कारण होने वाले प्रमुख रोग	रोगों का प्रमुख लक्षण	रासायनिक रूप	क्रिया का रूप	प्रमुख उत्पत्ति स्थान
१	(ए) (A)	शुष्क नेत्र शोथ	त्वचा जाड्यत्व	१. कैरोटीन (C_{20} H_{28}) 2 २. सत्व 'ए' (C_{20} H_{28}) O. H.	विकाश को उत्तेजना देता है। भूख और पाचन बढ़ाता है। सूखा व मोटापन दूर करता है। त्वचा के जन्तुजन्य विकारों को रोकता है। फुफ्फुस सम्बन्धी बिमारियों को रोकता है। प्रजोत्पादन, दूध की निर्मिति और बच्चों के विकास में सहायता पहुँचाता है।	मक्खन, अंडे, यकृत का तेल, प्राणिज चर्बी, गाजर, हरी सब्ज़ी, मटर, टमाटर आदि।

जीवन सत्व		अभाव के कारण होने वाले प्रमुख रोग	रोगों का प्रमुख लक्षण	रासायनिक रूप	क्रिया का रूप	प्रमुख उत्पत्ति स्थान
मेदो द्राव्य	(डी) (D)	सूखा (अन्धकार जन्य रोग)	अस्थियों में खटक्षारों का कम होना	कैल सिफेरोल ($C_{28}H_{44}O$) नीलातीत-करणोत्पन्न सत्व	रक्त में खट स्फूर लवणों की वृद्धि करता है। दांत और हड्डियां मज़बूत बनाता है। रक्त वृद्धि और आत्र विपर्य्य का प्रतिकार करता है।	अण्डे की पीली जर्दी, मक्खन, दूध, पौधे, काडलीवर आयल।
	(ई) (E)	बन्ध्यात्व	गर्भ पुनर्शोषण	....	स्त्रियों में गर्भशोधन करता है और पुरुषों का बीजक्षय रोकता है। स्नायुओं को कार्य क्षम करता है।	मक्का और गेहूँ के अंकुर, सैलाद, मांस, अण्डे, पीली ज़र्दी, दूध।

जीवनसत्व		अभाव के कारण होने वाले प्रमुख रोग	रोगों का प्रमुख लक्षण	रासायनिक रूप	क्रिया का रूप	प्रमुख उत्पत्ति स्थान
२ जल ग्राह्य	(बी) (B)	बेरी बेरी ...... भात खोत्रा लोगों का रोग	(पक्षाघात) गात्रसाद Paralysis	$(C_{12}\ H_{16}\ N_4)\ O_5$	दुग्धाम्ल पर क्रिया होती है। विकाश, भूख, पाचन, विशेषकर कार्बोदों का पाचन करते हुए नाडी मण्डलों का शक्ति बढ़ाता है। प्रजोत्पादन और दुग्धोत्पत्ति के लिये यह आवश्यक है।	गेहूं के अकुर, हर किस्म क गल्ले का आटा, किपत्र, अण्डे की जर्दी, यकृत, हृदय, वृक्क, दूध, पैलाव आदि।

जीवन सत्व		अभाव के कारण होने वाले प्रमुख रोग	रोगों का प्रमुख लक्षण	रासायनिक रूप	क्रिया का रूप	प्रमुख उत्पत्ति स्थान
जल द्राव्य	बी६)	पेलाग्रा (मक्का खाने वाले का रोग)	त्वचाक्षोभ		अन्त्र त्वचा और अवयवों के कार्यों का तथा समवृद्धि के लिये आवश्यक है। यह मोतियाबिन्द नहीं होने देता।	चर्बी रहित मांस, यकृत, किण्व।
	(सी) (C)	रक्त पित्त (जहाजी रोग)	रक्तश्राव	($C_6H_8O_6$)	जारण प्रतिबन्धक	ताजे फल, सब्जी, सैलाद, निम्बू इत्यादि।

प्रत्येक मनुष्य को भोजन में उक्त तत्वों की कितनी आवश्यकता पड़ती है, यह उसके कार्य पर निर्भर करता है। जो लोग बौद्धिक कार्य्य करते हैं उन्हें शारीरिक परिश्रम करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा प्रोटीन की अधिक आवश्यकता पड़ती है। साधारणतः एक मध्यम स्वास्थ्य वाले पुरुष के लिए, भोजन में २० प्र.श. प्रोटीन, २० प्र. श. स्नेह वस्तु (Fat और ६० फी० सदी शर्करा जन्य पदार्थ का (Carbo-hydrate) होना पर्याप्त है। लवण और जल इनके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार होना चाहिए। शारीरिक परिश्रम करने वाले को स्नेह वस्तु तथा शर्करा वाले पदार्थों की अधिक आवश्यकता पड़ती है। उक्त मात्राओं में भी देश, काल, वय और प्रकृति-भिन्नता से भेद पड़ता है। देश की जल वायु के अनुकूल उक्त पदार्थों की जातियों में भी भेद पड़ता है। यथा शीतप्रधान देश के लिए प्राणिज प्रोटीन तथा स्नेह अधिक उपयुक्त होता है। और उष्ण प्रधान देश के लिए वानस्पतिक प्रोटीन तथा शर्कराजन्य पदार्थ उपयोगी होता है। घृत दोनों प्रकार के देशों के लिए अपवाद रूपेण श्रेयस्कार होता है। इसी से प्राचीन आचार्य्यों ने घृत को सर्वोत्तम स्नेह माना है।[1] सम्प्रति भारत वर्ष में देहातों की जैसी दशा है उसे देखते हुए तो, उनके लिए किसी भी सस्ते से सस्ते भोजन का, जो स्वास्थ्य की दृष्टि से भी ठीक हो, निर्देश करना बहुत मुश्किल है। उनके लिए स्वास्थ्यवर्धक भोजन का प्रबन्ध तभी सम्भव है जब उनकी आर्थिक दशा भी सुधरे। देहातियों के भोजन के चुनाव में उन लोगों की प्राकृतिक

१. "सर्वस्नेहेषु प्रवरं घृतम्"—चरक

दशा का विशेष ध्यान रखना परमावश्यक है; साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि हम उसी भोज्य वस्तु का निर्देश करें, जिसे वे पैदा करते हों, या उनके यहां आसानी से मिल जाती हो। इस दृष्टि से विचार करने पर हर एक जगह के लोगों के लिए एक ही प्रकार की भोजन व्यवस्था उपयुक्त नहीं हो सकती। स्थान विशेष में पैदा होने वाली विभिन्न वस्तुओं के अनुसार उनके भोजन में भी विभिन्नता होगी और वह ही उनके अनुकूल भी होगा।[1] जो जहां का रहने वाला है वहीं का अन्न जल उसके लिए विशेषोपयोगी होगा। प्रकृति भी, जो जहां जन्म लेता है उसकी पुष्टि के लिए वहीं चीजें पैदा करती है। प्रकृति का अध्ययन जितना गम्भीर होता जा रहा है हम उतने उसके निकट जाने की चेष्टा करते हैं। यही कारण है कि आज के वैज्ञानिक हमें पुनः पुराने पाठों की ओर ले जा रहे हैं अर्थात्-अधिक से अधिक प्राकृतिक भोजन पर रहने का हमें उपदेश करने लगे हैं।

प्राकृतिक नियमों तथा मात्रा की अवहेलना से रोगों का प्रादुर्भाव

आजकल हम जो नाना प्रकार की व्याधियों को दृष्टिगोचर करते हैं, वे सब मनुष्यों द्वारा प्राकृतिक नियमों की अवहेलना का परिणाम है। हम लोगों की अधिक हानि भोजन सम्बन्धी आर्ष नियमों को तोड़ने से हुई है। आजकल हम लोगों का भोजन बहुत अस्वाभाविक हो गया है। तरह २ के मसालों को डाल कर

१. "यस्य देशस्य यो जातस्तज्जं तस्यौषधं हितम्।" चरक

अनेक तरीकों से बनाकर हम स्वादिष्ट तो अवश्य बना लेते हैं परन्तु साथ ही उस वस्तु के वास्तविक गुण को नष्ट कर अपने स्वास्थ्य को भी नष्ट कर लेते हैं। यदि मनुष्य अपने आहार-विहार में प्राकृतिक नियमों का ध्यान रखे तो कम से कम खर्च में स्वास्थ्य-कर भोजन कर सकता है। प्रकृति ने हमारा भोजन जिस रूप में पैदा किया है उसे यदि हम उसी रूप में व्यवहार करें तो अवश्य ही हमारा स्वास्थ्य अधिक अच्छा रहेगा। हम उसे सुपाच्य बना सकते हैं, पर सुपाच्य बनाने का अर्थ यह नहीं कि हम उसे इस अवस्था में पहुँचा दें कि उसका अपना कुछ न रह जाय अर्थात् उसका पोषक तत्व ही नष्ट हो जाय और स्वाद-मात्र रह जाय। प्रकृति जीवमात्र का रक्षक तथा पोषक है। हर एक स्थान के जल-वायु के अनुसार ही उसने विभिन्न जगहों में तरह तरह के खाद्य पदार्थ पैदा किए हैं, जो वहां के निवासियों के लिए विशेष उपयुक्त है। प्राचीन समय में रेल तथा यातायात का प्रबन्ध इतना नहीं था, फिर भी इतिहास बतलाता है कि उस समय के लोगों का स्वास्थ्य आज की अपेक्षा बहुत अच्छा था। इसका कारण इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि यातायात के साधनाभाव से, वे प्राकृतिक नियम पर अर्थात् तज्जन्य पदार्थों पर ही आश्रित रहते थे। भोजन क्या, हम तो कहते हैं कि यदि मनुष्य हर मामले में प्राकृतिक नियमों का पालन करे तो उसकी सारी सांसारिक व्याधियां दूर हो जावें। जो जितना अपने को प्रकृति के सन्निकट रखता है वह उतना ही सुखी रहता है। आजकल लोगों ने भोजन को स्वाद की वस्तु बना रखा है। वास्तव में भोजन का उद्देश्य

केवल शरीर की रक्षा है। स्वाद तो एक ऐसी चीज़ है, जो अभ्यास पर निर्भर करती है।

यदि मनुष्य गेहूं, चना आदि अन्नों को जल में भिगो कर कच्चा ही खाने की आदत डाले तो अग्नि पर सिद्ध किए अन्न की अपेक्षा वह कहीं अधिक लाभदायक सिद्ध होगा। कच्चे अन्न में विटामिन अधिक रहता है। घी, तेल में भूनने की अपेक्षा उबला हुआ हुआ भोजन अधिक गुणद होता है भूनने से अधिक उष्णता के कारण वस्तु का गुण-तत्व नष्ट हो जाता है। विशेष भुना हुआ पदार्थ देर से पचता है। प्रत्येक द्रव्य में पचन कार्य्य में सहायक एक विशिष्ट गुण होता है जिसे एनजाइम (Enzyme) कहते हैं। यह गुण अधिक गर्मी के संयोग से नष्ट हो जाता है। भारत वर्ष के देहातों में अधिकतर यव, गेहूँ, धान, मकई, बाजरा, कोद्रव, श्यामाक, चना, मूंग, अरहर, उड़द, खेसाड़ी, मसूर मडुआ, (रागी) मटर प्रभृति अन्न पैदा होते हैं। इन अन्नों में यव, गेहूँ चावल (धान) मूंग, अरहर, चना उड़द मसूर आदि की गणना सुअन्न में है और शेष की गणना कदन्न में होती है। देहात की गरीब जनता को प्रायः कदन्न पर भी जीवन निर्वाह करना पड़ता है। सुअन्न का दर्शन सौभाग्य से कभी त्यौहार-उत्सव के समय होता है। इन कदन्नों में प्रोटीन की मात्रा बहुत न्यून होती है और प्रोटीन भी अधम जाति की होती है। अतः इसकी पूर्ति के लिए उत्तम जाति के प्रोटीनों का सम्मिश्रण आवश्यक है। दूध में उत्तम जाति की प्रोटीन होती है। अतः जहां दूध सुलभ हो वहाँ यदि उक्त कदन्नों के साथ दुग्ध मिलालें तो उक्त आवश्यकता की पूर्त्ति हो जाती है।

दुग्ध के अभाव में अन्य दुग्ध विकार छाछ का प्रयोग भी बहुत कुछ उक्त कमी की पूर्त्ति कर देता है। गेहूँ और यव में उत्तम जाति के प्रोटीन होते हैं। मूंग, चना, अरहर, मसूर आदि द्विदल में भी प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में रहती है। स्नेह वस्तु की पूर्त्ति वानस्पतिक तथा प्राणिज दोनों प्रकार के स्नेहों से करते हैं। वानस्पतिक स्नेह में तिल, सर्षप, नारिकेल, जैतून, मूंगफली, महुआ कुसुम्भ आदि का प्रयोग देशकाल के अनुसार करते हैं। प्राणिज स्नेह में घृत, मक्खन और चर्बी का व्यवहार होता है। चर्बी का व्यवहार खाने में भारत वर्ष में बहुत कम होता है। घृत में गाय भैंस, और भेड़ का अधिक प्रयोग होता है। साधारणतः खाने में गाय और भैंस का ही घी व्यवहार करते हैं। परन्तु यह अधिक मूल्यवान होने के कारण सर्व सुलभ नहीं है। भोजन द्रव्यों में लवणों की न्यून मात्रा होने से आवश्यकतानुसार बाहर से भी लवण लेना पड़ता है। विटामिन के लिए सब्जियों तथा फलों की व्यवस्था उचित मात्रा में भोजन में करना परमावश्यक है। सब्जियों में पालक, कुलफा, चौलाई, बथुआ, सलाद टमाटर, गाजर आदि देहातों में भी प्रचुर प्रमाण में मिल जाते हैं, अतः इनका रोज उपयोग करना चाहिए। साथ ही शाकों को जहां तक हो उबाल कर ही खाना श्रेयस्कर है।

अवस्था तथा आहार द्रव्य के अनुसार मात्रा की व्यवस्था

आहार मात्रा अवस्थानुसार भिन्न २ हुआ करती है। अतः सब के लिए एक ही मात्रा का निर्देश उचित नहीं होगा। आर्य

ग्रन्थों में अवकाश के अनुसार शरीर के उस अवयव को, जिसमें भुक्ताहार एकत्रित होता है तीन भागों में विभक्त कर दिया है और प्रत्येक विभाग को आहार के स्वरूपानुसार पृथक् २ भरने को कहा है। हमारा आहार तीन प्रकार का होता है प्रथम-मूर्त्ताहार (Solid-food) दूसरा द्रवाहार (Liquid-food) और तीसरा वायवीय (Gaesous food)। अतः कुक्षि के तीन अवकाश हम बना लें और एक २ अवकाश एक २ के लिए रख छोड़ें। इस प्रकार आहार के उपयोग से किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं होगा।[1] मानव जीवन की चार अवस्थाएं होती हैं। (१) बाल्यावस्था (२) कौमारावस्था (३) यौवनावस्था और (४) वृद्धावस्था। बाल्यावस्था तीन तरह की होती है।[2] यथा क्षीराद क्षीराम्नाद और अन्नाद। जन्म काल से बालक दन्तोद्भेद तक क्षीराशी रहता है। यह अवस्था प्रायः २ वर्ष तक रहती है। ऐसी अवस्था में बालक के लिये, माता, बकरी तथा गाय का दूध उपकारी होता है बालक के लिये माता का दुग्ध सर्वश्रेष्ठ है। माता के के दूध के अभाव में बकरी या गाय का दूध देना चाहिए।[3] दुग्धाशी बालक को साधारणतः २४ घण्टे के अन्दर ५ से ७ बार तक दूध पिलाना चाहिए। अवस्थानुसार ३ से ४ घन्टे का अन्तर पड़ना चाहिए

---

१. "त्रिविधं कुक्षौ स्थापयेदवकाशांशमाहारस्याहारमुपयुञ्जानः; तद्यथा एकमवकाशांशं मूर्तानामाहारविकाराणामेकं द्रवाणामेकं पुनर्वातपित्तश्लेष्मणाम्, एतावतीं ह्याहारमात्रामुपयुञ्जानो नामात्राहारजातं किञ्चिदशुभं प्राप्नोति ॥" (च० वि० २)

२. "त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्तिनः। (अ० हृ० २)

३. स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत्" ॥

बच्चों के लिए अवस्थानुसार कलारीताप की आवश्यकता—

प्रथम सप्ताह	२०० क० ता०
" मास	३५० "
२ य "	४०० "
३ य "	४५० "
५ म "	६०० "
८ म "	७०० "
१२ य "	८०० "
बच्चा-४ से ५ वर्ष	१००० "
५—७ "	१३०० "
८—९ "	१६०० "
१०-११ "	१८०० "
१२-१३ "	२१०० "
युवा स्त्री—(१४ वर्ष से ऊपर)	२१०० "
" पुरुष "	२६०० "

परिश्रम करने वाले मनुष्य को निम्न क० ता० उनके मूल या आधार कलारीताप से अधिक लगेंगे।

हल्का कार्य ७५ क० ता० तक प्रति घण्टा
साधारण कार्य-७५ से १५० "
कठोर कार्य-१५० से ३०० "

गर्भवती स्त्री को--४०० क० ता०
परिचारिका स्त्री को ३० ० "

साधारणतः बालक को अवस्थानुसार २ से ८ औंस (१ से ४ छटांक) तक एक बार में दूध देना चाहिए। बालकों के दांत निकलने के बाद क्रमशः अन्न देना प्रारम्भ करना चाहिए। शनैः २ अन्न की मात्रा बढ़ती जायगी और दूध की मात्रा वय की अपेक्षा कम होती जायगी। बालकों के दांत निकलने के बाद माता का दूध एक दम बन्द कर देना चाहिए।[१]

बालकों के भोजन की मात्रा उनके वय के अनुसार बढ़ती जाती है। एक साधारण स्वस्थ मनुष्य के लिए मामूली ढंग से निम्न लिखित आहार उचित समझा जा सकता है। निम्न आहार-मात्रा में देश काल के अनुकूल कमी बेशी होना स्वाभाविक है। देश के जल वायु के अनुकूल इनकी खाद्य-सामग्री में भी अन्तर हो सकता है।

प्रातःकाल का भोजन—

गेंहू, यव, बाजरा, या अन्यान्न का आटा	)॥ सेर,
मूंग, चना, अरहर, मसूर, उड़द की दाल	१ छटांक
सर्षप, तिल, या नारियल का तेल—	१ "
गौ या भैंस का—घृत या मक्खन—	१ "

यह मात्रा पञ्जाब के लोगों के लिए विशेष उपयुक्त है। संयुक्त प्रान्त के निवासियों की भोजन व्यवस्था में आटा की मात्रा कुछ न्यून हो जायगी और उसकी पूर्त्ति चावल से होगी। बिहार की भोजन व्यवस्था आटा चावल मिला हुआ अर्थात् एक शाम

१. "अथैनं जातदशनं क्रमेणापनयेत्स्तनात्।"—अ० १०

आटा और दूसरे शाम चावल=पर विशेष चावल का उपयोग होगा। बंगाल तथा दक्षिण भारत की भोजन-व्यवस्था में चावल की प्रधानता रहेगी। मध्य भारत की भोजन व्यवस्था भी मिली-जुली अर्थात् उत्तर और दक्षिण भारत की मिली व्यवस्था होगी। दक्षिण भारत मे आटे का व्यवहार बहुत कम होता है। इनके अतिरक्त हरे शाक तथा ऋत्वनुकूल फलों का उपभोग भी उचित मात्रा में करना चाहिए। ताजे फल आधे सेर तक का उपयोग करना चाहिए। नमक तथा जल आवश्यकतानुसार।

सायकाल का भोजन—

आटा १ पाव

दाल—आधी छटांक

स्नेहवस्तु—आधी छटांक

शाक और फल—आधा सेर

उपरोक्त भोजन के अतिरिक्त ईख की फसल में भोजन के साथ थोड़ा गुड़ भी ले लेना अधिक लाभकारी है। देहातों में मवेशियों को खिलाने के लिए महुँआ के फूल का संग्रह करते हैं। यदि उक्त आटे के साथ इसका सम्मिश्रण करले तो उक्त आहार विशेष पुष्टि कर और लाभदायक हो जाय। महुआ में बहुत ताकत बढ़ाने वाले पदार्थ होते हैं। यह बृंहण होता है। अर्वाचीन मतानुसार इसमें शर्करा, सेल्युलोज, विटामिन आदि उपयोगी तत्व

पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। यह शीतल, मृदुकारक, पुष्टिकर और उत्तेजक होता है।[1]

साधारणतः यह भोजन देहात में रहने वालों के लिए उचित तथा विशेष स्वास्थ्य प्रद रहेगा। ताजे फलों और सब्जियों के रहने से हमारा स्वास्थ्य कभी भी अच्छा नहीं रह सकता। उक्त भोजन व्यवस्था में यह ध्यान रखना चाहिए कि आटे का चोकर कभी पृथक् न करें। वृद्धावस्था में ये मात्राएँ अग्नि बल के अनुसार न्यून हो जायगी।

1 "मधूकपुष्पं मधुरं शीतलं गुरुबृंहणं, बलं शुक्रकरं प्रोक्तं वातपित्त-विनाशनम् (रा० नि०)

A poor and good diet for a child of 10-12 years.

Poor diet	Good diet
Rice-15 ozs.	Rice—7 ozs.
Milk-1 oz. or less.	Wheat or millet—4 ozs.
Pulses-1 oz.	Milk—8 ozs.
Non leafy vegitables-2 ozs.	Pulses—2 ozs
Green leafy " 0·5 ozs.	Non leafy vigetables—4 ozs.
Fat and oils 0·4 ozs	Green " vigetables—2 ozs.
	Fat & oils—1 5 ozs
	Fruits—2 ozs.

(Govt. Health Bulletin No. 30)

निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा कि हमें अपने आहार को किस प्रकार उन्नत और उचित बनाना चाहिए।

(१) मिल का छटा चावल — ...	१५ औंस	या	७॥ छटाँक
दूध	१ ,,	$\frac{1}{2}$	,,
दाल (अरहर)	१ ,,	$\frac{1}{2}$	,,
बैंगन	१ ,,	$\frac{1}{2}$	,,
भिण्डी	$\frac{1}{2}$,,	$1\frac{1}{2}$	तोला
चौलाई की डंडी ...	$\frac{1}{4}$,,	$\frac{1}{2}$	तोला
तैल (तिल)	$\frac{1}{2}$,,	$1\frac{1}{2}$	तोला

यह अनुचित या अपर्याप्त भोजन का चार्ट है। इससे युवा मनुष्य की आवश्यकता से न्यून कलारी ताप प्राप्त होगा। अर्थात्—१७५०

चावल	१० औंस
मकुआ	५ ,,
दूध	८ ,,
दाल	३ ,,
बे पत्ती के शाक	६ ,,
हरी पत्ती के शाक	४ ,,
स्नेह	२ ,,
फल	२ ,,

यह उचित अर्थात् मनुष्य के आवश्यकतानुसार भोजन का चार्ट है। इससे २६०० क० ता० मिलेगा।

प्रोटीन	३८ ग्राम	प्रोटीन	७३ ग्राम
वसा	१६ "	वसा	७४ "
कार्बोहाइड्रेट	३५७ "	कार्बोहाइड्रेट	४०८ "
कलारी ताप	१७५० "	कलारी ताप	२५६०
कैलशियम	०.१६ ग्राम	कैलशियम	१.२ ग्राम
फौस्फौरस	०.६० "	फौस्फोरस	१.४७ "
लौह (Inm)	६.०० मी० ग्रा०	लौह	४४.० मि० ग्राम
विटामिन (A)	५०० यूनिट (International)	विटामिन(A)(International)	६००० यूनिट
" (B)	१६० "	" (B)	४००
" (C)	१५.० मि० ग्राम	" (C)	१७० मि० ग्राम

आर्ष ग्रन्थों में उपयुक्त मात्रा का लक्षण लिखते हुए कहा गया है। कि मनुष्य को देखना चाहिए कि भोजन करने के बाद उसकी कुक्षि पर किसी प्रकार का दबाव न पड़ता हो, और ऐसा न प्रतीत होता हो कि भुक्ताहार कलेजे पर किसी प्रकार की रुकावट पैदा करता हो। दोनों पार्श्वों में किसी प्रकार की तकलीफ न अनुभव हो और उदर पर बोझ न हो। इन्द्रियां प्रसन्न हो और भूख एवं प्यास की शान्ति हो। टहलने फिरने आदि में किसी प्रकार का कष्ट न अनुभव हो, सुख पूर्वक सर्व कार्य्य प्रकृत-रूप से हों तो समझिए कि उचित मात्रा में भोजन हुआ है *। साधारणतः मात्रा का उल्लेख कर दिया गया है, पर इसकी ठीक व्यवस्था तो देश काल प्रकृति और भोक्ता के बलाबल पर निर्भर करती हैं। अतः लघु से लघु वा गुरु से गुरु द्रव्यों का सेवन उपयुक्त मात्रा में ही करना चाहिए—अर्थात् जो किसी प्रकार का विकार न उत्पन्न करें और पच जाय।†

---

* "कुक्षेरप्रपीडनमाहारेण, हृदयस्थानावराधः, पार्श्वयोरविपाटनमनतिगौरवमुदरस्य, प्रीणनमिन्द्रियाणां, क्षुत्पिपासोपरमः, स्थानासनशयन गमनोच्छ्वासप्रश्वासहासकथासु च सुखानुवृत्तिः, सायं प्रातश्च सुखेन परिणमनम्।" इति मात्रावतो लक्षणमाहारस्य भवति।" (च०वि०३)

† "तत्र शालिषष्टीकमुद्गलावकपिञ्जलैणशशशरभशंवरादीन्याहारद्रव्याणि प्रकृतिलघून्यपि मात्रापेक्षीणि भवन्ति। तथा पिष्टेक्षुक्षीरविकृतमाषानुपौदकपिशितादीन्याहारद्रव्याणि प्रकृति गुरूण्यपि मात्रामपेक्षन्ते॥" च०सू०।

चतुर्थ अध्याय

॥ आहार विधिः ॥

आहार क्या है, क्यों किया जाता है और किस मात्रा में करना चाहिए इत्यादि बातों के जानने के बाद यह जानना आवश्यक है कि आहार कैसे किया जाय। क्यों कि 'इष्ट वर्ण, गंध और स्पर्श से युक्त विधिपूर्वक किया हुआ आहार (अन्नपान) प्राणियों का प्राण कहा गया है। हम प्रत्यक्षरूपेण देखते भी हैं कि इस आहार रूपी ईन्धन से ही हमारी अन्तराग्नि की स्थिति है। यह बलको बढ़ाता है और शरीर के धातुओं को पुष्ट करता है। विधि पूर्वक सेवन करने से इन्द्रियां प्रसन्न रहती हैं और इसके विपरीत सेवन से अहित होता है।'[1] इन सूत्र रूपेण कथित वाक्यों

---

1. "इष्ट वर्ण गन्ध विधिविहितं अन्न पानं प्राणिनां प्राणसंज्ञकानां प्राणमाचक्षते कुशलाः, प्रत्यक्ष फल दर्शनात् तदिन्धना ह्यन्तरग्नेः स्थितिस्त सत्वमूर्जयति तच्छरीरधातुव्यूहबलवर्णेन्द्रियप्रसादकरं यथोक्तमुपसेव्यमानं विपरीतमहिताय सम्पद्यते" ॥ (च० सू० २७)

में अनेक रहस्य छिपे हुए हैं। अतः पाठक को इनका विश्लेषण करना चाहिए और तब देखना चाहिए कि वह किस प्रकार अर्वाचीन विज्ञान सम्मत है। इष्ट का अर्थ है-मन के अनुकूल और हितका तात्पर्य यह है[1] कि केवल प्रिय होने से ही कोई वस्तु इष्ट नहीं हो सकती। इष्ट होने पर भी उनका विधिवत् सेवन अनिवार्य है। आहार विधि का अज्ञान हमें नित्य नाना तरह की व्याधियों का शिकार बना रहा है। ※ कौन सा आहार हमें कब और किस प्रकार करना चाहिए यह जानना परम आवश्यक है। उपयुक्त समय का अज्ञान नाना तरह की विरक्तियों का कारण होता है। "भगवान् सूर्य अपनी गति विशेष से संवत्सरात्मक काल का निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त्त, अहोरात्र, पक्ष मास, ऋतु, अयन, वर्ष

---

1. "इष्टमभिमतं हितञ्च" (चक्रदत्तोम)

※ "The only way to build a heathy body is to understand why we eat, what to eat, when to eat & how to eat: and once this simple fact is grasped that it is what we Put in to our mouths that we dicide either for good or evil what is to take place inside our bodies." (Harry Benzamin)

और युग में प्रविभाग करते हैं"।[1] निमेष से युगान्त तक में प्रकृति की भिन्न २ अवस्थाएं रहती हैं और उसका प्रभाव मानव शरीर यन्त्र पर भी उसी के अनुकूल पड़ता रहता है। ऐसी परिस्थिति में कौन सा आहार किस काल में उपयुक्त होगा, यह जानना परमावश्यक है। भिन्न २ द्रव्यों के संयोग से द्रव्यों में रूपान्तर रसान्तर, तथा द्रव्यान्तर हुआ करते हैं; अतः कब किस किस का संयोग करना चाहिए, इत्यादि का ज्ञान आवश्यक है। साथ ही भोजन का निर्माण कहाँ, किस प्रकार और कैसे व्यक्तियों द्वारा होना चाहिए इसका भी ज्ञान आवश्यक है।

महानस

विश्वास योग्य मनुष्यों से युक्त (रसोइया, नौकर, वैद्य इत्यादि) विस्तीर्ण, शुद्ध रसोई घर बनाना चाहिए। विश्वासयोग्य सूपकारों द्वारा उत्तम संस्कार करके बनाया हुआ इष्ट रस गंध स्पर्शादि गुण युक्त भोजन का अन्न शुद्ध स्थान में उत्तम प्रकार से ढंक कर वैद्य को रखना चाहिए। फिर विषनाशक औषधियों का उपयोग करके, पंखे से विषहर उदक का प्रोक्षण करके और सिद्ध मंत्रों के अभिमंत्रण से विष नष्ट करके सिद्ध किया हुआ अन्न सेवन करना चाहिए। रसोई घर रसोइया, वैद्य तथा परिचारक

---

1. "तस्य संवत्सरात्मनो भगवानादित्यो गति विशेषेण निमेष–काष्ठ–कला मुहूर्ताहोरात्रपक्षमासर्त्वयनसंवत्सरयुगप्रविभागं करोति" (सुसू६)

कैसे होने चाहिएं, इसका वर्णन सुश्रुत कल्प स्थान प्रथम अध्याय में देख लें।[1]

आहारोपकल्पना – [2]

घी कृष्ण लोह के पात्र में देना चाहिए, पेया चाँदी के पात्र में देना चाहिए। फल तथा सर्व प्रकार के भक्ष्य पदार्थ पत्तों पर देना चाहिए, और शुद्ध और प्रदिग्ध पदार्थ सोने के पात्र में देना चाहिए। द्रव पदार्थ तथा रस चांदी के पात्र में देना चाहिए; कट्वर और खड पत्थर के पात्र में देना चाहिए।

---

१. "आप्तानेकसमाकीर्णं शुचि कार्यं महानसम्। तत्राप्तैर्गुणसंपन्नमन्नं भक्ष्यं सुसंस्कृतम्॥ शुचौ देशे सुसंगुप्तं समुपस्थापयेद्भिषक्। विषघ्नैरगदैः स्पृष्टं प्रोक्षितं व्यजनोदकैः॥ सिद्धैर्मन्त्रैर्हतविषं सिद्धमन्नं निवेदयेत्॥" (सु० सू० ४६)

'प्रशस्त दिग्देशकृत शुचि भाण्डं महच्छुचि। सजालकं गवाक्षाढ्य-माप्तवर्गनिषेवितम् विकक्षविसृतं हृष्टं सवितानं कृतार्चनम्। परीक्षितस्त्रीपुरुषं भवेच्चापि महानसम्। कुलीनं धार्मिकं स्निग्धं सुभृतं सततोत्थितम्। अलुब्धमशठं भक्तं कृतज्ञं प्रियदर्शनम्। क्रोधपारुष्यमात्सर्यमदालस्यविवर्जितम्। जितेन्द्रियं क्षमावन्तम् शुचिं शीलदयान्वितम्॥ मेधाविनमसंश्रान्तमनुरक्तं हितैषिणम्। पटुं प्रगल्भं निपुणं दक्षं मायाविवर्जितम्। पूर्वोक्तैश्च गुणैर्युक्तं नित्यं सन्निहितागदम्। महानसे प्रयुञ्जीत वैद्यं तद्विद्यपूजितम्॥ (सु० कल्प० १०)

२. "घृतं कार्ष्णायसे देयं पेया देया तु राजते। फलानि सर्वभक्ष्यांश्च प्रदद्याद्वै दलेषु च॥

खूब उबाल कर ठंडा किया दूध तांबे के पात्र में देना चाहिए। पानी, पानक और मद्य मिट्टी के पात्र मे देना चाहिए अथवा काँच स्फटिक के शीतल और पवित्र पात्र में देना चाहिए। रागषाडव और सट्टक वैदूर्य के पात्र में देना चाहिए। बुद्धिमान रसोइया निर्मल, चौड़े और मनोहर पात्र में सामने भात तथा सुसंस्कृत लेह्य पदार्थ (रायता, चटनी इत्यादि) स्थापन करें। फल, सब प्रकार के भक्ष्य पदार्थ (लड्डु मोदकादि) तथा अन्य सूखे पदार्थ भोजन करने वाले की दाहिनी ओर रखे। पतले पदार्थ, पानी पानक, दूध खड यूष तथा अन्य पीने के पदार्थ बाईं तरफ रखें। सब गुड़ के पदार्थ रागषाडव और सट्टक, इन्हें सामने-फल और द्रव पदार्थ के बीच में रखें[1]।

परिशुष्क प्रदिग्धानि सौवर्णेषु प्रकल्पयेत् ।
प्रद्रवाणि रसांश्चैव राजतेषूपहारयेत ॥
कट्वराणि खडांश्चैव सर्वान् शैलेषु दापयेत् ।
दद्यात्ताम्रमये पात्रे सुशीतं सुशृतं पयः ॥
पानीयं, पानकं मद्यं मृण्मयेषु प्रदापयेत् ।
काचस्फाटिकपात्रेषु शीतलेषु शुभेषु च । दद्यात् वैदूर्यं चित्रेषु राग षाडव सट्टकान् ॥ (सु० सू० ४६)

1. पुरस्ताद्विमले पात्रे सुविस्तीर्णे मनोरमे । सूदः सूपौदनं दद्यात् प्रदेहांश्च सुसंस्कृतान् । फलानि सर्वभक्ष्यांश्च परिशुष्काणि यानि च । तानि दक्षिण पार्श्वे तु भुञ्जानस्योपकल्पयेत् प्रद्रवाणि रसांश्चैव पानीयं पानकं पयः । खडान् यूषांश्च पेयांश्च सव्ये पार्श्वे प्रदापयेत ॥ सर्वान् गुडविकारांश्च राग षाडव सट्टकान् । पुरस्तात् स्थापयेत् प्राज्ञो द्वयोरपि च मध्यतः ॥

भोजन का स्थान—

भोजन की उपकल्पना करके भोजन करने वाले को एकान्त रमणीय, निःशंक, पवित्र, स्वच्छ, सुगन्धि पुष्पों से रचित समतल स्थान में भोजन करावें[1]।

भोजन का स्वरूप—

रूचि की दृष्टि से इष्ट सस्कारों से बनाया हुआ, पथ्यकर और मनोनुकूल रसों से युक्त हृद्य, पवित्र, न बहुत गरम, ताजा भोजन विशेष रूप से हितकर होता है[2]।

भोजन क्रम—

भोजन में पहले मधुर रस युक्त पदार्थ सेवन करें, मध्य में अम्ल और लवण रस और बाद मे शेष रसों का सेवन करें[3]। पहले दाडिमादि फल सेवन करे, उसके पीछे पेय पदार्थ सेवन करें। तदनन्तर विविध भोज्य पदार्थ और भक्ष्य पदार्थ सेवन करें। किसी २ का मत है कि पहले गाढ़ा या कड़ा पदार्थ सेवन करना चाहिए।

---

१. "भोक्तार' विजने रम्ये निःसम्बाधे शुभे शुचौ। सुगन्ध पुष्परचिते समे देशेऽथ भोजयेत्" ॥

(सु० सू० ४६.)

२. विशिष्टमिष्ट संस्कारैः पथ्यैरिष्टैः रसादिभिः।
मनोज्ञं शुचि नात्युष्णं प्रत्यग्रमशनं हितम् ॥"

३. पूर्वंमधुरमश्नीयान्मध्येऽम्ललवणौ रसौ।
पश्चाच्छेषान् रसान् वैद्यो भोजनेष्ववधारयेत् ॥ (सु० सू० ४६.)

फलों[1] में आंवला मनुष्यों के लिये सर्वदा हित, बाधा न करने वाला और सब दोष नाशक है; इस लिए इसे भोजन के पहले, पीछे तथा बीच में सेवन करना उचित है। मृणाल, विष, शालूक, कन्द और इक्षु आदि इनका उपयोग वैद्य को हमेशा भोजन के पूर्व करना चाहिये। भोजन के बाद नहीं करना चहिए। बुभुक्षित मनुष्य को सुखपूर्वक किञ्चित् ऊंचे आसन पर बैठकर शरीर सम रख कर, भोजन में चित्त लगा कर भोजन के योग्य समय पर, सात्म्य, लघु, स्निग्ध, द्रवभूयिष्ठ उष्ण अन्न, बहुत जल्दी न बहुत विलम्ब करके योग्य मात्रा में सेवन करना चाहिए।

भूख के समय किया हुआ भोजन तृप्ति करता है; सात्म्य अन्न शरीर में किसी प्रकार की बाधा नहीं करता है; हलका अन्न शीघ्र पच जाता है। स्निग्ध और उष्ण अन्न बलदायक है तथा

आदौ फलानि भुञ्जीत दाडिमादीनि बुद्धिमान्।
ततः पेयांस्ततो भोज्यान् भक्ष्यांश्चित्रांस्ततः परम्॥
घनं पूर्वं समश्नीयात् केचिदाहुर्विपर्ययम्॥

(सु० सू० ४६)

1. "A very rich source of Vitamin is the fruit Amalaka, which ripens in indian forest during the month December to April. One small Amla fruit contains nearly as much vitamins astwo oranges"

Government Health Bulletin No. 30.

जठराग्नि को दीप्त करता है। न शीघ्र न विलम्ब से खाया हुआ भोजन निर्दोष और ठीक पचता है; द्रवभूयिष्ट भोजन सुख से पचता है और मात्रा के अनुसार किया हुआ भोजन धातुओं (वातादि) में साम्यता करता है। जिन ऋतुओं में रात्रि बड़ी होती है उन ऋतुओं में (हेमन्त शिशिर) तत्काल बल प्रवृत्त दोषों के प्रतिकार के अनुसार भोजन (स्निग्ध और उष्ण) पूर्वाह्न काल करना चाहिए। जिन ऋतुओं में दिन बड़े होते हैं, उन ऋतुओं में (ग्रीष्म और प्रावृद्) उस काल के अनुसार (द्रव और लघु) अपराह्न काल में भोजन करना चाहिए। जिन ऋतुओं में दिन और रात समान होते हैं उन ऋतुओं में (शरद् और बसन्त) दिन रात्रि के समान भाग करके उस समय (मध्याह्न) भोजन करना चाहिए।२ ऋतु के अनुसार दोपहर का भोजन सेवन करने का

---

१. "आदावन्ते च मध्ये च भोजनस्य तु शस्यते।
निरत्ययं दोषहरम् फलेष्वामलकं नृणाम् ॥
मृणाल बिष शालूक कन्देषु प्रभृतीनि च।
पूर्वं भोज्यानि भिषजा न तु भूक्ते कदाचन ॥
सुखमुच्चैः समासीनः समदेहोऽन्न तत्परः।
काले सात्म्यं लघुस्निग्धम् क्षिप्रमुष्णम् द्रवोत्तरम् ॥"
बुभुक्षितोऽन्नमश्नीयान्मात्रावद् विदितागमः। (सु० सू० ४६.)

२. "अतीवायत यामास्तु क्षपा येष्वृतुषु स्मृताः।
तेषु तत्प्रत्यनीकाढ्यं भुञ्जीत प्रातरेव तु ॥
येषुचापि भवेयुश्च दिवसा भृशमायताः ॥

योग्य काल बतलाया गया है रात्रि का भोजन दोपहर के भोजन के सवा प्रहर के बाद रात्रि के पहले प्रहर में करना चाहिए।

निषिद्ध भोजन—अशुचि, मलिन, विषादि से दुष्ट, भुक्तोत्सृष्ट (जूठा) पत्थर, घास, मिट्टी के टुकड़े इनसे युक्त, मनः प्रतिघाती अर्थात् जिसे जी न चाहता हो, व्युषित् (बासी) स्वाद-हीन और पूति (दुर्गन्ध युक्त या सड़ा हुआ) भोजन कभी नहीं करना चाहिए। बहुत समय से बना कर रखा हुआ, या अत्युष्ण (जिसकी भाप शांत नहीं हुई हो) और जला हुआ अन्न भी उसी प्रकार रुचिकर नहीं होता।[१]

[२]भोजन करते समय प्रथम साधारण रुचिकर पदार्थ सेवन करे, उसके पश्चात् अधिक रुचिकर पदार्थ, इस प्रकार उत्तरोत्तर

तेषु तत्कालविहितमपराह्णे प्रशस्यते॥
रजन्यो दिवसाश्चैव येषुचापि समा स्मृताः।
कृत्वा सममहोरात्रं तेषु भुञ्जीत भोजनम्॥"

(सु० सू० ४६.)

१. "अचोक्षं दुष्टमुत्सृष्टं पाषाणतृणलोष्टवत्।
द्विष्टं व्युषितमस्वादु पूति चान्नं विवर्जयेत्॥
चिर सिद्धं स्थिरं शीतंमन्नमुष्णीकृतं पुनः।
अशान्तमुपदग्धं च तथा स्वादु न लक्ष्यते॥"

२. 'यद्यत् स्वादुतरं तत्तद्विदध्यादुत्तरोत्तरम्।
प्रक्षालयेदद्भिरास्यं भुञ्जानस्य मुहुर्मुहुः॥"

रुचिकर पदार्थ का सेवन करे और अन्त में सब से अधिक रुचिकर पदार्थ खावें। भोजन करने में सदा ध्यान रखे कि एक पदार्थ खाने के बाद और दूसरे पदार्थ खाने के पूर्व भोक्ता मुंह को जल के कुल्ले से साफ करले। कुल्ला करने से मुंह, जीभ, दाँत साफ रहने के कारण भोज्य पदार्थ अधिक रुचिकर प्रतीत होता है। पहले स्वादु पदार्थ से अतितृप्त होने के कारण उसकी रसना दूसरे का स्वाद ठीक नहीं ले सकती, इसलिए भोजन के बीच २ में जल से मुंह साफ करना चाहिए।

भोजन में जल का सेवन—

भोजन करके तथा भोजन के बीच में जल का सेवन युक्ति पूर्वक करना चाहिये[१]। फिर भोजन के अन्त में दाँतों के बीच फंसे हुए अन्न के कणों को कूर्च या तृण आदि से धीरे २ बड़ी सावधानी से मसूढ़ों को बचाते हुए निकाले। यह न निकला हुआ अन्नकण दुर्गन्ध पैदा करता है। भोजन करने के पीछे तुरन्त पानी पीना ठीक नहीं। इससे पाचक रस के पतला होने से अन्न ठीक नहीं पचता। एक, दो, तीन घण्टे के बाद पानी पीना ठीक है। लेकिन एक समय अधिक पानी पीना ठीक नहीं, थोड़ा २ करके पानी का सेवन अनेक वार स्वास्थ्य की दृष्टि से हितकर है।[२]

१. "अशितश्चोदक युक्त्या भुञ्जानश्चान्तरा पिबेत्।"

(सु० सू० ४६.)

२. "भोजनान्ते विषं वारि; जीर्णेवारि बलप्रदम्।"

"अत्यम्बु पानान्न विपच्यतेऽन्नं निरम्बु पानाञ्च स एव दोषः।
तस्मान्नरो वह्नि विवर्धनार्थं मुहुर्मुहुर्वारि पिबेद्भूरि॥" (भावप्रकाश)

भोजन के बाद दाँत आदि की सफ़ाई

भोजन के समय दाँतों के बीच में जो अन्न के कण फँस जाते हैं, उनको निकालना बहुत जरूरी है। यह कार्य्य बड़ी सावधानी से कूंची या ब्रश या तृण शलाका से करना चाहिए ? ऐसा न करने से समय पाकर वे वहां ही सड़ने लगते हैं और मुख में दुर्गन्ध आने लगती है। दांतों की सफाई न करने से धीरे धीरे दांतों पर पीले रंग का मैल जम जाता है और मुख में लबाब सा जमा रहता है। दांतों की जड़ खराब होकर उन पर शर्करा (Tarter) जम जाती है और मसूड़ों में पूयजनक जीवाणु अपना डेरा जमा लेते हैं। परिणाम यह होता है। कि दन्तवेष्ठ (Pyorrhoea Alveolaris) नामक रोग उत्पन्न हो जाता है। इस से मुख में इतनी दुर्गन्ध उत्पन्न होती है कि ऐसे मनुष्य के सन्मुख बैठना मुश्किल हो जाता है, दांत जल्दी निकम्मे हो जाते हैं और स्वास्थ्य की हानि होती है; क्योंकि पचन क्रिया का मुख्य काम दांतो से ही हुआ करता है। यह रोग प्रथम बहुत साधारण मालूम पड़ता है। परन्तु परिणाम में भयंकर होता है, क्योंकि भोजन के समय थूक के साथ पूय रूप विष मिल कर उदर में प्रविष्ट होकर पचन क्रिया को नष्ट करके पाचन संस्थान में अग्निमान्द्यादि अनेक रोग उत्पन्न करने लगता है। पाचन संस्थान के विकृत हो जाने से दूसरे संस्थान के भी रोगों के होने की सर्वथा सम्भावना रहती है। इसी लिए आर्ष ग्रन्थों में दो बार दातुन करने का अथवा भोजन के बाद अच्छी तरह मुख धोने का विधान है।[1] भोजन के

१. "प्रातर्भुक्त्वा च मृद्वग्रं कषाय कटु तिक्तकम्। भक्षयेद्दन्तपवनं दन्तमांसान्य बाधयन् (वाग्भट)

पश्चात् मुंह की सफाई के बारे में लापरवाही करने से आज कल दन्तवेष्ट रोग बहुत फैल रहा है, इस लिए इस बात की भूल हरगिज नहीं करनी चाहिये।

भोजन काल में दोषों की अवस्था

[1]अन्न के पचन होने पर वायु वर्धित होती है, पचन काल में पित्त बढ़ा रहता है, और भोजन करते ही कफ बढ़ता है। इस लिये भोजन से वर्धित हुए कफ को बुद्धिमान् मनुष्य सुपारी कंकोल लौंग, जातिफलादि कषाय, कटु, तिक्त और हृद्य पदार्थों के सेवन से अथवा ताम्बूल पत्र के साथ अन्य सुगन्धि कटु तिक्त कषाय और मुंख को साफ करने वाले पदार्थ सेवन करके शांत करें। भोजन के पश्चात् जब तक अन्न का भारीपन (क्लम) रहे तब तक सुख पूर्वक आराम करना चाहिए उसके बाद सौ कदम टहलने के बाद बाईं करवट लेट जाना चाहिए। भोजन करके मनुष्य को भोजन के पश्चात् चित्तप्रसादक शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श का सेवन करना चाहिए। भोजन के पश्चात् सोना (देर तक) एक स्थिति से बैठना, अधिक द्रव पीना, अग्नि या धूप में काम करना, पानी में तैरना, प्रवास करना, (रथ घोड़ा आदि) वाहनों पर चढ़ना इत्यादि निषिद्ध है ?

१. "जीर्णेऽन्ने वर्धते वायुर्विदग्धे पित्तमेव तु। युक्तमात्रे कफश्चापि" (सु० सू० ४६)

"भुक्त्वा राजवदासीत यावदन्नक्लमो गतः। ततः पादशतं गत्वा वाम पार्श्वेन संविशेत्। शब्दरूपरसान् गंधान् स्पर्शांश्चं मनसः प्रियम्। भुक्तवानुपसेवेत" (सु० सू० ४६)

भोजन के बाद विश्राम

भोजन करने के पश्चात शारीरिक और मानसिक विश्राम बहुत आवश्यक है। अंगरेजी में भी एक कहावत है कि "Sita while after dinner"। इसका कारण यह है कि आमाशय में अन्न का प्रवेश होते ही पचन सस्थान की ओर रक्त का आकर्षण विशेष रूप से आप से आप होने लगता है और यह होना भी पाचन क्रिया की दृष्टि से आवश्यक है; क्योंक रक्त की सहायता से पचन सस्थान के विविध पाचक रस पर्याप्त मात्रा में बनने लगते हैं और अन्न का ठीक २ परिपाक होता है। जब पचन सस्थान की ओर रक्त का आकर्षण आरम्भ होता है उस समय त्वचा मस्तिष्क आदि में रक्त की कमी हो जाती है जिससे क्लम, (सुस्ती) तन्द्रा, (ऊंघाई), शीत इत्यादि लक्षण होते हैं। रक्तपरिभ्रमण का यह परिवर्तन शारीरिक और मानसिक शान्ति की स्थिति में सुचारु रूप से होता है। यदि भोजन के पश्चात् दौड़ना, व्यायाम करना, तैरना, इत्यादि शारीरिक कर्म किए जायें तो रक्त परिश्रम के स्थान मांस पेशियों आदि में जाकर पाचक सस्थान की ओर कम जायेगा और पचन क्रिया में बाधा उत्पन्न होगी। मानसिक परिश्रम का भी यही परिणाम होता है। काम क्रोध तथा चित्त वृत्ति बिगाड़ने वाले इन्द्रियार्थ सेवन करने से शरीर की प्रणाली विहीन या अन्तः स्रावी (Ductless or endocrines) ग्रन्थियों में विकृत उत्तेजना उत्पन्न होकर उनसे विषैले रस रक्त में मिलते हैं जो

पाचक रसों को विकृत कर डालते हैं। इन सब कार्यों से पचन संस्थान में उथल-पुथल मच जाती है, खाया हुआ अन्न नहीं पचता, जिससे अजीर्ण, वमन, अतिसार आदि नाना प्रकार के उपद्रव पैदा होते हैं। आज कल भारतवर्ष में स्कूल कालेज तथा औफिस सब दोपहर के होते हैं। इसलिये विद्यार्थी तथा औफिस के बन्धुओं को भोजन करके तुरन्त स्कूल एवं औफिस जाना पड़ता है। जहां भोजन के पश्चात् विश्राम की आवश्यकता पड़ती है वहां इनको घण्टों तक शारीरिक और मानसिक परिश्रम करना पड़ता है परिणाम यह होता है कि ये बिचारे निर्दोष ही नाना व्याधियों के शिकार बन अकाल में काल-कवलित हो जाते हैं। इनको औफिस में समय पर पहुँचने के लिए दौड़ते हुए देख आयुर्वेद के निम्न श्लोकों की याद आती है—

"भुक्त्वोपविशतस्तन्द्रा, शयानस्यतु पुष्टता।
आयुश्चंक्रमशीलस्य, मृत्युर्धावति धावतः"॥
(योग रत्नाकर)

"भोजन के बाद जो दौड़ता है उसके पीछे मृत्यु भी दौड़ती हुई पीछा करती है" यह बिल्कुल सत्य है। कारण यह है कि पेट और हृदय बहुत नजदीक होते हैं। पेट भरने से उसका

---

१. शयनं चासनं चापि नेच्छेद्वापि द्रवोत्तरम्।
नाग्न्यातपौ नप्लवनं न यानं नापि वाहनं॥
(सु० सू० ४६)

कुछ दबाव हृदय पर होता है जिससे हृदय के संकोच या विकास में कुछ कठिनाई होती है। ऐसी अवस्था में यदि दौड़ने का काम किया जाय तो हृदय के संकोच-विकास के काम में बाधा उत्पन्न होकर हृदय विकृत हो जाता है और हृदय विकृत होने से मृत्यु होने की सम्भावना बढ़ती है। ऐसे मनुष्य सदा दिल की धड़कन (Palpitation) से बीमार रहते हैं। भोजन के पश्चात् कम से कम एक मुहूर्त्त (४८ मिनट) विश्राम अवश्य करना चाहिये।[1]

"भुक्त्वा राजवदासीत यावदन्न क्लमो गतः।
ततः पाद शतं गत्वा वाम पार्श्वेन संविशेत्॥
शब्दान् रूपान् रसान् गन्धान् स्पर्शांश्च मनसः प्रियान्।
भुक्तवानुपसेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठति॥"
(सु० सू० ४६)

भोजन के पूर्व और पश्चात् शारीरिक या मानसिक श्रम का पाचन क्रिया पर प्रभाव प्रत्येक को स्वानुभव से विदित है। कैम्पबेल और पेम्बे ने तो यहां तक कहा है कि जिन २ मानसिक या शारीरिक आयासों को हम बहुत क्षुद्र समझते हैं, उनसे भी आमाशय से भोजन निकलने में विलम्ब हो सकता है, तथा भोजन के अनन्तर इष्ट मित्रों की गोष्ठी में जो लाघव और स्फूर्ति मिलती है, उससे बड़ा लाभ होता है।

(षड्रस मधुर प्राय भोजन)

भोजन करने में इस बात का ध्यान रहे कि एक रसात्मक भोजन में कदापि आसक्ति न हो, और शाक, कुधान्य तथा अम्ल

१. "व्यायामं च व्यवायं च धावनं पान (यान) मेव च।
युद्धं गीतं च पाठं च हूर्त्तं भुक्त्वांस्त्यजेत॥" (अत्रेय संहिता)

रस वाला पदार्थ जिसमें अधिक हो ऐसा भोजन न करे। किसी भी एक रस के अधिक सेवन से विकार उत्पन्न होता है। प्रातः काल का भोजन या पहले का भोजन यदि उचित रूप से न पचा हो और जठराग्नि शुद्ध नहीं हुई हो तो दूसरी बार (संध्या काल) भोजन न करें। क्योंकि पूर्वकाल का किया हुआ भोजन अधपचा होने के कारण दूसरी बार भोजन करने से जठराग्नि नष्ट हो जाती है। जो हलके द्रव्यों से बनने पर भी मात्रा की दृष्टि से गुरु हो और जो गरिष्ठ द्रव्यों से ही बना हो ऐसा भोजन नहीं करना चाहिए। मिष्टान्न तथा अन्य गरिष्ट पदार्थ अल्प मात्रा में सेवन करें और भोजनोत्तर पर्याप्त जल पीवे जिससे वे सुखपूर्वक पच जाय। पेय (दूध आदि पीने का पदार्थ), लेह्य (मधु, अवलेह आदि चाटने के पदार्थ) भोज्य (भात आदि) खाने के पदार्थ उत्तरोत्तर गरिष्ट होते हैं। गुरु पदार्थों का सेवन आधी तृप्ति तक करना चाहिए और हलके पदार्थ का सेवन पूर्ण तृप्ति तक करना चाहिए।[1] जिसमें तरल पदार्थ की अधिकता हो ऐसा पदार्थ तथा तरल पदार्थ अधिक मात्रा में सेवन करना ठीक नहीं है। परन्तु पतले पदार्थों की अधिकतायुक्त शुष्क पदार्थ ठीक ठीक पचता है। आर्द्रता के अभाव से वह पिण्ड के रूप में बनकर विदाह को प्राप्त होता है। "जिसके अन्नवह स्रोतों में अथवा पित्त के स्थान में विदाही पित्त स्थित है, उसका सेवन किया हुआ अन्न चाहे वह

---

१. "गुरुणामर्धं सौहित्यं लघूनां तृप्तिरिष्यते।" (सु० सू० ४६.)

विदाहजनक हो या अविदाही हो, विदाह को ही प्राप्त होता है।" (सु० सू० ४६).

आज कल तरह तरह के भोजन सम्बन्धी विचार फैले हुए हैं। सभी विचार अपने २ दृष्टिकोण से सत्य और सुन्दर हैं। पाठकों को उन विचारों के अध्ययन काल में अपने को लेखक की परिस्थिति में रखना होगा. तभी वे उनकी विचार सरणी को उचित रूप में समझ सकेंगे।

भोक्ता को सदा ध्यान रखना चाहिये कि वे भोजन जीने के लिए करते हैं। कभी भी लोभवश या मोहवश अनुचित आहार न करना चाहिये। उपस्थित भोजन को ठीक २ जांच कर जो शरीरोपयोगी हो उन्हें उचित काल में सेवन करना चाहिए।[1]

भोजन का समय—

प्रहृष्टे विण्मूत्रे हृदि सुविमले दोषे स्वपथगे।
विशुद्धे चोद्गारे क्षुदुपगमने वातेऽनुसरति॥
तथाऽग्नावुद्रिक्ते विशदकरणे देहे च सुलघौ।
प्रभुञ्जीताहारं विधिनियमितः कालः सहि मतः॥"

(अ० हृ० ८-५५)

---

१. न रागान्नाप्यविज्ञानादाहारमुपयोजयेत्।
परीक्ष्य हितमश्नीयाद्देहो ह्याहारसम्भवः॥

(च० सू० २८)

पंचम अध्याय

आहार में वायु-ताप और जल का स्थान

आहार की व्यवस्था बताते हुए यह कहा गया है कि आहार त्रिविध होता है, जिसमें प्रथम आहार प्रत्यक्षतः हम प्रकृति से पाते हैं यथा (१) वायु (२) जल और (३) ताप। इस अध्याय में इन तीनों आहारों पर विचार किया जायेगा।

वायु (Air)

यह वह आहार है जिसके बिना मनुष्य एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। यही कारण है कि शास्त्रों में इसका माहात्म्य इतना गाया गया है कि उसे यहां उल्लेख करना सम्भव नहीं। सुश्रुत[1] ने इसे स्वयम्भू, भगवान्, विभु, आत्माओं की

---

1. स्वयंभूरेष भगवान्वायुरित्यभिशब्दितः।
स्वातन्त्र्यान्नित्यभावाच्च सर्वगत्वात्तथैव च॥
सर्वेषामेव सर्वात्मा सर्वलोकनमस्कृतः॥" (सुश्रुत)

आत्मा आदि शब्दों से उल्लेख किया है। चरक[१] ने विश्वकर्मा, विश्व रूप, सर्वज्ञ, सब कर्मों का मूल विधाता, विभु, विष्णु आदि शब्दों से पुकारा है। इसे कोई देखता नहीं है परन्तु इसके कर्मों का सभी अनुभव करते हैं अतः इसे "अव्यक्तो व्यक्तकर्मा च " ऐसा कहा गया है। प्राणियों[२] की उत्पत्ति स्थिति और विनाश का यह कारण माना गया है। उपनिषदों में कहा है कि प्रकृति के निश्चल विकार आकाशमय जगत् में रजोबहुल वायु द्वारा ही क्रियाकलाप का श्री गणेश हुआ। जिस प्रकार प्रकृति में रजो गुण क्रिया को उत्पन्न कराने वाला है उसी प्रकार प्रकृति के विकार अग्निषोमीय जगत् में वायु क्रिया को उत्पन्न करने वाला है।

हम जब श्वांस लेते हैं तो वायु द्वारा फेफड़े को भरते हैं। इस वायु में ऑक्सिजन नामक गैस होती है। हम इसे देखते नहीं परन्तु यह हमारे भोजन का प्रधान अंश है। इसी गैस के द्वारा हमारी जीवन अग्नि जलती रहती है। हमारा फेफड़ा आवश्यकतानुसार वायु को ले लेता है और उसे रक्तप्रवाह में प्रवाहित होने के लिये देता रहता है। रक्त प्रवाह तथा धातुओं के अन्दर औक्सिजन आहारेन्ध धन, (जो अमाशय तथा आंतों द्वारा प्रेषित रहती है) से मिलता है और उसे जला कर शरीर के लिये ऊष्मा और शक्ति का निर्माण करता है। अग्नि से धूम की

१. 'स हि विश्वकर्मा विश्वरूपः सर्वगः सर्वतंत्राणां विधाता-भावानाम विभु: विष्णु क्रान्ता लोकानाम् ।" (चरक)

२. "स्थिति उत्पत्ति विनाशेषु भूतानामेष कारणम् ।" (चरक)

तरह इस जीवनाग्नि से भी जब यह जलती है, गैस निकलता है। यह गैस जहरीली होती है; अतः यदि इसे शरीर से बाहर न किया जाय तो शरीर रुग्ण हो जाय। इसलिए रक्त अपनी प्रवाह गति में इसे एकत्र करता है और उसे पुनः फेफड़े में लाता है जहां से वह निश्वास द्वारा बाहर होता है। यह गैस बाह्य वायु द्वारा प्रवाहित हो वनस्पितियों के पास जाता है और उसका आहार बनता है। यदि हम लोग किसी बन्द कमरे में जिसकी खिड़कियां बन्द हों और बाह्य वायु का बिल्कुल प्रवेश न हो, या अपने मुख को वस्त्राच्छादित कर सोवें तो परिणाम यह होगा कि हमको बहुत कम औक्सिजन प्रत्येक उच्छ्वास में मिलेगा और अधिक जहरीला गैस निश्वास से निकलेगा जिससे हमारा स्वास्थ्य बिगड़ जायेगा। कारण, हमारे फेफड़ों को बहुत कम औक्सिजन मिलेगा, जिससे हमारे शरीर में आवश्यक ऊष्मा तथा शक्ति, औक्सिजनाभाव से न निर्माण हो सकेगी, और दुष्ट तथा विषाक्त गैस उसके स्थान पर हम उच्छ्वास द्वारा भीतर करेंगे। अतः स्वच्छ तथा खुली वायु में सदा शयन करना चाहिये। यदि हम ऐसा नहीं करते तो हमें सदा नाना तरह के फेफड़े तथा अन्य रोगों का शिकार होना पड़ता है। स्वच्छ वायु का अभाव सदा फुफ्फुस के रोगों का कारण होता है। मनुष्य को सदा दीर्घ श्वास मुंह बन्द कर नासा द्वारा लेना चाहिए।

ताप (Sunlight)

प्राणियों का आहार वनस्पति है अतः प्राणियों (Animal life) का जीवन वनस्पतियों (Vegetables) पर निर्भर करता

है। वनस्पतियां सूर्य की रश्मियों के बिना जी नहीं सकतीं। अतः वनस्पतियों का जीवन (Plant life) सूर्य की रश्मियों (Sunlight) पर निर्भर करता है। मानव तथा पशुओं के लिये वनस्पति का होना परमावश्यक है ये वनस्पतियां मानवाहारोपयोगी प्रोटीन, वसा, (Fat) कार्बोहाइड्रेट और विटामिनों को अपने अन्दर उत्पन्न करती हैं। उक्त पदार्थ वनस्पतियों के हरे पत्ते, जल, वायु और सूर्य रश्मियों से प्राप्त करते हैं और इनकी जड़ें जमीन से शरीरोपयोगी खनिजों को प्राप्त करती हैं। मानव तथा पशुओं से विसृत विषाक्त वायु को ये वनस्पतियां अपने अंदर ले लेती हैं और उन्हें प्राणियों के योग्य आहार में परिवर्तित कर देती हैं। पशु उन वनस्पतियों को भक्षण कर हमारे लिये दुग्ध आदि का निर्माण करते हैं, जिन्हें मनुष्य खाते हैं। वनस्पतियां सूर्य की रश्मियां की बदौलत ही इस कार्य में समर्थ होती हैं। सूर्य रश्मियां इनकी शक्ति (Energy) का जड़िया हैं जिससे वे कार्य करती हैं, और वनस्पतियों में उक्त शक्तियों को एकत्र (store) करने की शक्ति है जिसे वे कार्बोहाइड्रेट में करती हैं, जो मानवोपयोगी होता है[1]। इस प्रकार सूर्य

Sunlight is the source of this energy whereby they do their work; and Plants have the power of storing of this energy in the carbohy drates they make, so that it is available for man and for plant eating animals. The sun

वनस्पतियों द्वारा हमें आवश्यकतानुसार प्रोटीन, फैट, कार्बोहाइड्रेट, खनिज, तथा विटामिनों को प्रदान करता है जो हमारे शरीर की स्थिति, वृद्धि तथा पुष्टि के लिये आवश्यक है। सूर्य हमारा सबसे बड़ा जीवनदाता है; यह हमें स्वच्छ करने वाला भी है क्योंकि नाना तरह के विघ्नकारक जीवाणुओं को नष्ट करने की शक्ति इसकी किरणों में है।

सूर्य किरणों द्वारा हमारे शरीर के अन्दर कई तरह के विटामिन बनते रहते हैं। जिनमें विटामिन डी (Vitamin D) अस्थिनिर्माण के लिये परमावश्यक है। यही कारण है कि वे बालक (भारतवर्ष के) जो प्रायः धूप में फिरते रहते हैं अस्थि विकार के उतने शिकार नहीं बनते जितने कि न्यून धूप वाले देश के बालक। यदि भारतवर्ष में भी लड़कों को घर में बन्द रखा जाय और सूर्य की रश्मियों का दर्शन उन्हें न कराया जाय तो उनकी भी अस्थियां बहुत कमजोर पड़ जायं और वे आस्थिशोष नामक रोग (Ricket) के शिकार बन जायं। यह अनुभव सिद्ध है कि जिस देश में पर्दे का रिवाज अत्यधिक है और जहां लड़कियों को घर से बाहर नहीं होने देते वहां की लड़कियां प्रायः रोग की शिकार बनी रहती हैं यथा काश्मीर

---

is the great life-giver; it is also the great cleanser, destroying many kinds of disease-producing microbes when they are exposed with rays."

प्रदेशों में। इससे बचने का उपाय यह है कि उन पदार्थों का अधिक सेवन करें जिसमें विटामिन 'डी' अधिक हो। परन्तु इन पदार्थों का मिलना उतना सुलभ नहीं अतः प्रति दिन सूर्य-रश्मि स्नान करना सर्व श्रेष्ठ है।

सूर्य किरणें दो प्रकार की होती हैं। एक जिसे हम देख सकते हैं, दूसरी जिसे हमें नहीं देखना चाहिए। दूसरी हमें विटामिन 'डी' प्रदान नहीं करती परन्तु हमारे फुफ्फुस, नाड़ी, तथा रक्त को पुष्टि प्रदान करती है जिससे शारीरिक शक्तियां बढ़ती हैं। अधिक सूर्य किरणों का सेवन भी अपकार करता है। भारतवर्ष में प्रकृति ने ऐसा इन्तजाम कर रखा है कि वहां के बालक धूप में दौड़ते हैं जिससे उनके चमड़े प्रायः श्यामवर्ण के होते हैं। इन सब बातों से हम शिक्षाग्रहण करते हैं कि हमें कितना सूर्य का ताप लेना चाहिए और किस तरह लेना चाहिए। वेदों में भी सूर्य किरणों में रोग तथा जीवाणुओं की नाशकत्व शक्ति है इसका उल्लेख मिलता है। अथर्व वेद[1] प्रथम काण्ड सूक्त २२ में कहा है कि "हे रोगी तेरी हृदयोत्तेजना (धड़कन) हृदयशूल तथा दाह आदि हृदय रोग और हलीमक-पाण्डु कामला रोग सूर्य के द्वारा शरीर से बाहर निकल जावें। अतएव तुम्हे नारंगी रंग वाले उदय कालिक सूर्य के, उस उदय कालिक रंग

---

१. "अनुसूर्यमुदयतां हृद्योतो हरिमा च ते।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि॥"

से भरपूर करते हैं। रोहित वर्ण मय नारंगी रंग वाला बनाते हैं।"
इस प्रकार के अनेक मन्त्र यत्र तत्र मिलते हैं जिनमें सूर्य रश्मियों में जीवन शक्ति प्रदान करने की कामना तथा रोगों को नाश करने की शक्ति का वर्णन है।

जल (Water)

यह जान कर आपको अवश्य उत्सुकता पैदा होगी कि आपके शरीर निर्माण में सब से बड़ा भाग जल का है। रक्त के १० भाग में ६ भाग जल के और मांस में ३ हिस्सा जल और एक हिस्से में अन्य पदार्थ हैं। जल ही द्वारा हमारे शरीर के सभी पोषक तत्व शरीर के भिन्न २ स्थानों में पहुँचते हैं और वहां से मलभाग को बाहर निकालने के लिए लाते हैं। हमारा शरीर मिट्टी के घड़े के समान सूक्ष्म छिद्रों से व्याप्त है, जिनके द्वारा शरीर के जलीयांश मल स्वेद रूप में निकलते रहते हैं। भारतवर्ष[1] का बच्चा भी जानता है कि किस प्रकार शीतल जल रखा जाता है। गर्मी के दिनों में मिट्टी के घड़े में जल को रखते

Being porous it is always losing water, which appears on the surface of the skin, as sweat, where it evaporates keeping the body cool. Children in India know how water can be kept cool in an earthen Pot by the evaporation of the moisture which Soaks through its porous wall."

हैं जिससे उसके अन्दर का जल शीतल रहता है। इसी प्रकार हमारे शरीर से भी जल का सदा वाष्पीभवन होता रहता है, जो चमड़े की ऊपरी तह पर स्वेद रूप में दिखाई पड़ता है, जिसके कारण हमारा शरीर शीतल रहता है। हम अन्य अवयवों द्वारा भी जलीयांश मल को बाहर निकालते हैं यथा फेफड़ा, वृक्क, अत्र प्रभृति द्वारा जल शरीर के दूषणों को बाहर बहा कर स्वच्छ रखता है। चूंकि शरीर में सबसे अधिक भाग जल का है और हम प्रतिक्षण इसका ह्रास करते रहते हैं इसके ह्रास पूर्त्ति की भी आवश्यकता होती है। यह आवश्यकता हमें प्यास द्वारा प्रतीत होती है। बहुत लोग पानी पीने में कंजूसी करते हैं, परिणाम यह होता है कि उनके शरीर की स्वच्छता उचित रूप से नहीं होती और वे सदा रक्तादि रोगों के शिकार बने रहते हैं। उनका शरीर सदा उष्ण और अन्तः शरीर अस्वच्छ रहता है। अतः हमें प्रतिदिन सर्व प्रथम प्रातःकाल तथा भोजनों के मध्य में कम से कम १ ग्लास जल पीना परम आवश्यक है। प्रातःकाल पिया हुआ जल (उषः पान) आंतों की सफाई में सहायक होता है। हमें बाह्य शरीर की सफाई के लिये भी जल की आवश्यकता पड़ती है। रुग्णावस्था में भी हम जल के बिना नहीं रह सकते।

हमारे पीने का जल पवित्र तथा स्वच्छ होना चाहिए। जल के दोष से हमें नाना प्रकार की बीमारियां हो सकती हैं। अतः जल को सदा स्वच्छ और सुरक्षित रखना चाहिये। जलपात्र को स्वच्छ तथा पिधान से ढंके रखना चाहिए। भोजनों में उपयुक्त

फलों के जल के अतिरिक्त भी हमें प्रतिदिन २ से ३ पाइन्ट अर्थात् १ सेर से २ सेर तक जल पीना चाहिये। जल की इन सारी उपयोगिताओं को देख कर ही जल का इतना माहात्म्य गाया गया है। वेदों में जल का वर्णन निम्नप्रकार मिलता है। "जलों में अमृत है, जीवन देने वाली शक्ति है। जलों में भेषज है। रोग दूर करने का इलाज है तथा उत्पादक परमेश्वर ने बतलाया है कि जलों में समस्त भेषज है एवं दीर्घ काल इस संसार में सूर्य को देखने के लिए अर्थात् जीवित रहने के लिए जल मेरे शरीर में भेषजता-इलाज को भरपूर करता है[1]।" आयुर्वेद के निघण्टुओं में भी जल को अमृत[2] कहा है। इस जल को हम नाना भांति उपयोग में लाते हैं, यथा पान-स्पर्श, मार्जन, टकोर, मर्दन, धारापान, बाष्प, अभिसिञ्चन, आश्च्येम्तन प्रभृति।

"अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्।" (अथर्व १-४-४)

"अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।" (अथर्व १-६-२)

"आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम। ज्योक् च सूर्यं दृशे॥"

(अथर्व १-६-३)

२. "अमृतमुदकानाम्॥"

मनु ने सृष्टि क्रम में सर्व प्रथम बीज रूप 'अप्' की सृष्टि का निर्देश किया है। इस अप् की चार अवस्थाएं होती हैं जो निम्न प्रकार हैं:—

१. अम्भ

सूर्य मण्डल से भी ऊपर आकाश के ऊपरी भाग में अवस्थित अप् की 'अम्भ' संज्ञा होती है। इस परमेष्ठि मण्डल में स्थित सोम रूप 'अम्भ' को ही अमृत कहते हैं। यह ज्योतिंमय सृष्टिकर्त्ता परमात्मा का निवास स्थान कहा गया है। यह अम्भ जल की प्राथमिक सूक्ष्मतम अवस्था है। आधुनिक वैज्ञानिकों का हाइड्रोजन (Hydrogen) यह सिद्ध हो सकता है। हाइड्रोजन अग्नि सम्पर्क से जलता है और सोम भी सूर्य रश्मि के सम्पर्क से ज्वलनशील होता है और प्रकाश जनक भी है।

२. मरीचि

सूर्य की किरणों से प्रभावित सूर्य मण्डल और पृथ्वी के बीच अन्तरिक्ष में अवस्थित 'अप्' को मरीचि' कहते हैं। मरीचि माली के मरीचि माला से प्रभावित तत्किरणजात अप् का नाम 'मरीचि' है। यह आग्नेय सोम होने से पवमान कहा जाता है। सूर्यमण्डल, ग्रह, तारा, आदि सृष्टि यहीं से हुई है। सम्भवतः इसी का अंश विशेष औक्सिजन है। यही सोम और पवन दोनों वनस्पति, औषध, और उष्णता के पोषक हैं। यह जगत् अग्नि सोमात्मक इसी से कहा जाता है।

३. मर

पृथ्वी स्थित अप् की 'मर' संज्ञा होती है। हाइड्रोजन और औक्सिजन (२+१) के योग से स्थूल जल 'मर' की प्राप्ति होती है। अग्नि सम्बन्ध से ही इसमें द्रवत्व होता है। इसी की घनी भूत अवस्था पृथ्वी है।

४. आप

भूमि के नीचे अवस्थित अप् को 'आप' कहते हैं। इस प्रकार परमात्मा की इच्छा से सर्व प्रथम बीजरूप अप् की सृष्टि हुई।

(जल के गुण दोष परिशिष्ट में देखिये)

—:०:—

षष्ठ अध्याय

(आहार को पचाने में सहायक अन्तः-स्रावी ग्रन्थियाँ)—

चुल्लिका तथा उपचुल्लिका ग्रन्थियाँ (Thyroid and Parathyroid glands). टेंटुए के दोनों ओर अण्डाकार दो चुल्लिका ग्रन्थियाँ स्थित हैं और ये स्वर नाल से संयुक्त रहती हैं। ये ५-६ मीटर लम्बी होती हैं। प्रत्येक चुल्लिका ग्रन्थि के साथ ६-७ मी० मी० लम्बी दो-दो उपचुल्लिका ग्रन्थियां होती हैं। इन दोनों ग्रन्थियों से अन्तःश्राव होता रहता है।

यदि प्रौढ़ पशु में उपचुल्लिका ग्रन्थियाँ रहने दी जांय और चुल्लिका ग्रन्थियाँ अलग कर दी जाँय तो पशु मरेगा नहीं पर उसके पाचन संस्थान में एक विशेष परिवर्तन हो जायगा। भोजन का पाचन ४० प्र० श० के लगभग हो जायगा। वह प्रौढ़ पशु शनैः २ क्षीणकाय हो जायगा। यदि पशु बच्चा है तो चुल्लिका ग्रन्थियां

निकाल देने पर उसकी वृद्धि रुक जाती है और उसकी हड्डियाँ ठीक ठीक नहीं बनने पातीं। पशु का कद छोटा रह जाता है और दुर्बल प्रतीत होता है। यदि चुल्लिका ग्रन्थि शरीर के किसी स्थान में पुनः लगा दी जाँय या शिरावस्ति (Injection) द्वारा इस ग्रन्थि का रस रुधिर में पहुँचाया जाय, तो क्षीण पशु की वृद्धि पुनः होने लगती है। यदि पशुओं को चुल्लिका ग्रन्थि का रस खिलाया जाय या शिरा वस्ति द्वारा रक्त में पहुँचाया जाय तो उनकी पाचन शक्ति बढ़ने लगती है। भोजन का ओषदीकरण (Oxidation) बहुत बढ़ जाता है। नत्रजनीय (Nitrogenous)पदार्थ बहुत अधिक विभाजित होने लगता है। शरीर का तौल कम हो जाता है। हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। एक विशेष प्रकार की उत्तेजना पैदा हुई प्रतीत होती है।

बौमेन ने १८९६ में चुल्लिका ग्रन्थि से एक कलाई पदार्थ प्राप्त किया जिस का नाम 'आयडो थाहरीन' (Iodo thyrion) रक्खा। सन् १९१४ में कैंडेल ने इस ग्रन्थि के रस से एक रवादार पदार्थ प्राप्त किया जिसे 'थाइरोक्सिन' (Thyroxin)नाम दिया। सन् १९२६ हेरिङ्गटन ने इस पदार्थ की रासायनिक जाँच की और रासायनिक विधिसे इस पदार्थ को तैयार भी किया। यह पदार्थ परीक्षा करने से पता चला कि हमारे नित्य के उपयोग के बहुत पदार्थों में यह तत्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान है यथा-दूध, अंडा, प्याज, गाजर प्रभृति में। जांच पड़ताल से यह पता चला कि चुल्लिका ग्रन्थि में आयोडीन, पेप्टोलीन, (Amino-acid) रहता

है यह थाइरोक्सिन चुल्लिका ग्रन्थिका शुद्ध हारमोन है। इसकी १ मि० ग्राम मात्रा प्रौढ़ शिशु को दी जाय तो उसकी पाचन क्रिया २ प्र०श० बढ़ जायेगी। मनुष्य में सूई द्वारा पहुँचाने पर शनैः २ कुछ दिनों में परिवर्तन के चिह्न प्रकट होते हैं। यह तो बहुत दिनों से सर्व-विदित है कि चुल्लिका ग्रन्थियों में निलीन (Iodine) होता है और इसीलिये 'आयोडाइड' औषधियों में दी जाती है, जिसके खिलाने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

सैडंस्टोम ने १८८० ई० में उपचुल्लिका ग्रन्थिओं पर विशेष खोज आरम्भ को, और इस बात का पता लगाया कि शारीरिक स्वास्थ्य पर इस ग्रन्थि का क्या प्रभाव पड़ता है। लोगों की एक-मत यह सम्मति है कि उपचुल्लिका ग्रन्थिओं के निकाल देने पर शरीर में विषाक्त पदार्थों का संचय बढ़ जाता है। मांस पेशियों की संचरण शक्ति क्षीण होती है। कुछ लोगों की ऐसी धारणा है कि ऐसी अवस्था में खट्टिका लवण (Calcium Salt) देने से तत्काल लाभ होता है। कुत्तों की उपचुल्लिका ग्रन्थियां निकाल ली जांय तो उनमें से बहुत २-३ दिन में ही मर जायँगे और उन्हें धनुस्तम्भ (Titanus) रोग हो जायगा, जिसमें मांसपेशियां अपना कार्य्य करना बन्द कर देती हैं। इन ग्रन्थियों के निकालने पर रक्त में खट्टिका को मात्रा कम हो जाती है।

१६२५ में कौलिस और उसके सहयोगियों ने इस ग्रन्थि से हारमोन शुद्ध रूप में पृथक् किया जिसके ठीक ठीक रासायनिक संगठन का अभी तक पता नहीं। यदि ऐसे व्यक्ति में जिसकी उपचुल्लिका ग्रन्थियाँ निकाल ली गई हों, यह पदार्थ शिरा वस्ति

द्वारा रक्त में पहुँचाया जाय तो उसका टीटनस रोग दूर हो जाता है और रक्त में खटिका की कमी भी शनैः २ दूर होने लगती है। रुधिर में प्रतिशत प्र० श० म० में ११ मि० ग्राम से बढ़ कर २०-२३ मिलीग्राम तक हो जाती है, जो जीवन के लिए हानिकर है। इसलिये ऐसी अवस्था में मृत्यु हो जाती है।

(Thymus gland)—

बच्चों के वक्षोस्थि (sternum) के पीछे थाइमस ग्रन्थियां होती हैं। यह प्रौढ़ अवस्था में लुप्त हो जाती है। इसका शिशु की वृद्धि से सम्बन्ध प्रतीत होता है। कुछ लोगों की धारणा थी कि शिशुजन्म तक इस ग्रन्थि की चरम सीमा है और बाद को इस का ह्रास होना प्रारम्भ होता है। कुछ लोगों का कहना है कि यौवन के आगमन के अनुसार यह लुप्त होने लगती है। इस ग्रन्थि को बच्चे के शरीर से निकाल लेने पर उनकी हड्डियों का विकास उचित रूप से नहीं होता। कुछ का कहना है कि बच्चों में इसके अभाव से बालशोष भी हो सकता है। थायमस ग्रन्थि की वास्तविक उपयोगिता क्या है, इसका ठीक २ पता अभी तक नहीं लग सका है। संभव है यह अन्तःस्रावी ग्रन्थि न भी हो।

Adrenalin gland

उपवृक्क ग्रन्थियों को एड्रेनेलिन या सुप्रारानेल (Supra renal) ग्रन्थि कहते हैं। सन् १८८६ में ब्राउन स्कायर ने यह पता लगाया कि इन उपवृक्क ग्रन्थियों को निकाल लेने से पशु शीघ्र ही मरने लगते हैं। यह बात सभी पशुओं में देखी गई है। मृत्यु से पूर्व पशु तेज हीन हो जाता है, मांसल पेशियां क्षीण हो जाती हैं

और धमनियों की शक्ति क्षीण होने लगती है, और Adisson's disease) के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं। इन सब बातों से उपवृक्क ग्रन्थियों के महत्व स्पष्ट हो जाते हैं। औलीमर (Olimer) और सैफर (Sapher) ने इस ग्रन्थि के मध्यस्थ भाग (Medula) का रस पशुओं के रक्त प्रवाह में सूचिका द्वारा पहुँचाया, और ऐसा करने पर उसने विचित्र प्रभाव देखा; हृदय की धड़कन बहुत कम हो गई और रक्त चाप की मात्रा बढ़ गई। उपवृक्क ग्रन्थियों में जो भाग वल्क (Cortex) कहलाता है उसके रस से वैसा प्रभाव नहीं होता जैसा ग्रन्थिके मध्यस्थ भाग के रस से। इन दोनों का प्रभाव वस्तुतः अलग २ हैं। वल्क वाले का अलग और मध्यस्थ भाग वाले का अलग। इस लिए वल्क को अन्तवृक्क और मध्यस्थ को उपवृक्क भाग कहते हैं।

मध्यस्थभाग—(Medula) उपवृक्क के मध्यस्थभाग में एक रासायनिक पदार्थ रहता है। जिस से हृदय की धड़कन कम होती है और रक्त चाप बढ़ जाता है। वह पदार्थ अति शुद्ध रूप में ही नहीं, कृत्रिम विधियों से भी संश्लेषित किया जाता है। सब से पहले एबेल ने इसके सम्बन्ध में खोज की और बाद को टेकामिन और एलड्रिच ने इस पदार्थ के शुद्ध रवे को प्राप्त किया। बाद को स्टोलज और डेकिन ने इस पदार्थ का रासायनिक रूप निश्चित किया।

यह रासायनिक पदार्थ कई 'नामों से प्रसिद्ध है। कोई इसे 'एपीनोक्रिन' कहते हैं और कोई 'एड्रेनेलिन' या एड्रेनिन कहते हैं। यह पदार्थ उपवृक्क ग्रन्थि के मध्यस्थभाग

में ही पाया जाता है न कि वल्क में। जैसा कहा जा चुका है एपिनेफ्रिन के घोल का हृदय की धड़कन और रक्तचाप पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव क्यों और कैसे पड़ता है इस की मीमांसा शरीरविज्ञान के ग्रन्थों ने बहुत की है परन्तु इस विषय को स्थानभाव तथा विषयान्तर होने के कारण यहीं छोड़ देते हैं। शरीर में शर्करामयक पदार्थों के पाचन में भी एप्रीनेफ्रिन का प्रभाव पड़ता है। सूई द्वारा प्रवेश कराने पर मूत्र में शर्करा आने लगती है और यह प्रभाव कई दिनों तक रहता है। रुधिर में भी शर्करा की मात्रा इसके कारण बढ़ जाती है। कैनेन नामक अन्वेषक ने यह दिखाया है कि आवेश और भावावेश की अवस्था में उपवृक्क ग्रन्थि एपिनेफ्रिन अधिक निकालने लगती है। एपिनेफ्रिन को अधिक मात्रा में देने का प्रभाव विषैला होता है। प्रति शरीर, शरीर के तौल के हिसाब से इसकी १ मी॰ ग्राम मात्रा देने से शरीर चेतना हीन होने लगती है, हृदय बैठने लगता है और रुधिर की धमनियां फूट जाती हैं।

वल्कभाग (Cortex)

बहुत से लोगों का विचार है। कि जीवन के लिए मेड्यूला की अपेक्षा कोर्टेक्स अधिक आवश्यक है। मेड्यूला निकालने से मृत्यु नहीं होती है पर कौर्टेक्स निकालने पर और मेड्यूला रहने देने पर भी मृत्यु हो जाती है। वल्क (Cortex) में एपिनेफ्रिन नहीं होता। इस में कौनसा क्रियाशील रासायनिक पदार्थ होता है यह कहना कठिन है। सम्भवतः इस में कोलेस्ट्रीन (Colast-erin) के कई यौगिक होते हैं और एक अम्ल (Hexa

menicacid) भी होता है। कौर्टेक्स के अन्तःस्राव का सम्बन्ध बिज-ग्रन्थियों से भी है। अण्डकोष निकालने पर उसका प्रभाव उप ग्रन्थियों की चेष्टाओं पर भी पड़ता है। कोर्टेक्स में कौन सा हारमान है यह बात निश्चितरूप से नहीं कही जा सकती।

Pitutary gland

यह ग्रन्थि मस्तिष्क में होती है। इसके दो भाग बताए गये हैं। एक तो पुरोपिण्ड (Anterior lobe) जिसकी गठन स्पष्टतः ग्रन्थिमय होती है, और दूसरा छोटा पश्चिम पिण्ड (Posterior lobe) जिस में कोष्ठ और सूत्र होते हैं। दोनों पिण्डों का विकास पृथक् २ स्रोतों से होता है। सन् १८६५-६६ में ओलिवर सैफर, जाइ-मोनोविक्ज आदि शरीर वेत्ताओं ने यह बात प्रदर्शित की कि इस ग्रन्थि का सम्बन्ध रक्तचाप से है। १८६८ में हौवेल ने यह दिखाया कि ग्रन्थि के पश्चिम पिण्ड के रस से ही यह प्रभाव होता है न कि पुरोपिण्ड से।

Posteriorl lobe

पश्चिम पिंड का रस जब रक्त प्रवाह में सूई द्वारा पहुँचाया जाता है तो ये बातें प्रकट होती हैं— (१) रक्तचाप बढ़ जाता है, और हृदय की धड़कन कम हो जाती है। यह प्रभाव उतना नहीं होता जितना एपिनेफ्रिनसे, पर रहता अधिक देर तक है। (२) आरम्भ में तो मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है पर बाद को मूत्र बहुत कम हो जाता है। इस प्रभाव के कारण पश्चिम पिण्ड के रस का प्रयोग बहूमूत्र में या मधुमेह में भी करते हैं। ऐसा करने से प्यास भी कम लगती है। (३) इस रस का प्रयोग करने पर गर्भाशय संकोच

भी होने लगता है। प्रसव के समय गर्भाशय संकोच को उत्तेजित करने के लिए पश्चिम पिंड का रस प्रयोग करते हैं। (४) दूध पिलाने वाले पशुओं में इसका रस प्रयोग करने पर दूध अधिक निकलने लगता है, क्योंकि दूध निकालने वाली पेशियां अधिक सचेष्ट हो जाती है। कैम्प आदि वैज्ञानिकों के मत से पश्चिम पिंडके रस में दो हारमोन विद्यमान हैं। एक का सम्बन्ध रक्तचाप से और दूसरे का सम्बन्ध गर्भाशय सकोच से है। कैम्प ने पश्चिम पिंड से दो पृथक २ पदार्थ तैयार किए। ये पदार्थ ऑक्सीटोसीन (oxitocin) या पिटोसीन (Pitocin) और वस्पेप्रोसीन नाम से कहे जाते हैं। पहले का सम्बन्ध गर्भाशय से और दूसरे का सम्बन्ध रक्तचाप से है। इन हारमोनों के रासायनिक संगठन का अभी निश्चय नहीं हुआ है।

Anterior lobe.

पुरोपिंड इस पिंड के रस को शरीर में प्रविष्ट कराने से तत्क्षण कोई लाभ नहीं होता। लोगों का विचार है कि शरीर की वृद्धि-गति पर इस रस का विशेष प्रभाव पड़ता है। कभी २ तो इस रस से शरीर की वृद्धि सामान्य मात्रा से अधिक भी हो जाती है। इस रस का प्रभाव लैंगिक रसों का विरोधी है। जब तक शरीर की वृद्धि होती रहती है, तब तक लैंगिक चिह्नों का प्रतिरोध होता रहता है। इस पुरोपिंड के रस में कौन से रासायनिक पदार्थ विद्यमान हैं, यह कहना कठिन है। रौबर्टसन ने टैथेलियम नामक स्फूरक और नोष्अजम का यौगिक पृथक् किया। सन् १६२६ में क्लौस ने

एक रवेदार पदार्थ भी इस से पाया। यदि शरीर में से श्लैष्मिक ग्रंथियां निकाल ली जावें तो कुछ का कहना है कि शीघ्र ही मृत्यु हो जायगी; पर कुछ का मत इस से विरुद्ध है। तापक्रम का घटना बेचैनी और अतिसार आदि लक्षण मृत्यु के पूर्व होते हैं, यह क्रशिंग ने अपने विस्तृत अन्वेषण से पता लगाया है।

Pinial Gland

इस ग्रन्थि का भी स्थान मस्तिष्क है। कौमार्य्य अवस्था तक यह ग्रन्थि बढ़ती है पर बाद में क्षीण होने लगती है। इसमें सूत्र या धागे से रह जाते हैं। मस्तिष्क रेणुका के उत्पन्न होने का इससे सम्बन्ध है। इस ग्रन्थि के रस को सूई द्वारा शरीर में पहुँ-चाने से रक्त चाप कम हो जाता है। यह ग्रन्थि बच्चों की वृद्धि को सयमित रखती है और उनमें लैङ्गिक लक्षणों की उत्पत्ति को रोकती है। यदि पशु में से यह ग्रन्थि निकाल ली जाय तो उसमें लैंगिक लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

Reproductve Organs

प्रजननेन्द्रियों से भी अन्तःस्राव हुआ करता है। इसका प्रमाण यह है कि अण्डकोष के छेदन करने पर बहुत से लैंगिक लक्षण परिवर्त्तित हो जाते हैं। नपुंसकता के लक्षण व्यक्त होने लगते हैं। चिड़ियों में पुरुषत्व और स्तन प्राणियों में स्त्रीत्व की ओर झुकाव बढ़ने लगता है। यदि प्रजनन ग्रन्थि को शरीर के किसी और अवयव में या भाग में लगा दिया जाय और फिर अण्डकोष को छेदन किया जाय तो ये लक्षण नहीं दीख पड़ते।

इससे यह स्पष्ट है कि प्रजनन ग्रन्थियों का अन्तःस्राव रुधिर में हुआ करता है जिससे गौण लैंगिक लक्षण व्यक्त होते हैं जैसे मूछों का निकलना तथा स्तनों का विकाश आदि।

Prostrate Glands

शुक्र ग्रन्थियों से वीर्य का निकलना बहिःस्राव है, जिससे हमें यहां कोई मतलब नहीं। शुक्रवाहिनी प्रणाली की दीवारों पर स्थित कोष्ठों में से अन्तःस्राव भी होता है, ऐसी धारणा पहले लोगों की थी, पर अब लोगों की धारणा यह है कि ग्रन्थि के मध्य में कोष्ठ होते हैं, उनसे अन्तःस्राव होता है। इस धारणा की पुष्टि इस बात से होती है कि, यदि शुक्र ग्रन्थियों को अपने स्थान से निकाल कर और कहीं लगा दिया जाय, अथवा इन्हें रौंजन किरणों के (Ultra-Voilet ray) सामने रखा जाय, तो यद्यपि शुक्रवाहिनी प्रणाली क्षीण हो जाती है फिर भी ऐसे पुरुष में पुरुष के लैङ्गिक चिह्न वैसे ही निकलते हैं और कामुक लक्षण पूर्ववत् विद्यमान रहते हैं। जिन लोगों की शुक्रग्रन्थि अण्डकोष में से निकाल कर उदर में कर दी जाती है, उनमें भी पुरुषों के सभी गौण लक्षण पूर्ववत् विकसित होते रहते हैं।

स्टाइनाक ने डिंब ग्रन्थियों पर कुछ मनोरञ्जक प्रयोग किए। उसका कहना है कि इन ग्रन्थियों के अन्तःस्राव गौण लैंगिक लक्षणों के प्रकट होने पर अपना प्रभाव डालते हैं। उसने नर चूहों का और नर शूकरों का अण्डकोष वेधन किया, और उसमें उन्हीं जातियों की डिंब ग्रन्थि का चस्मा बांधा। उसने देखा

कि उस पशु में नारीत्व के लक्षण प्रकट होने लगे; जैसे बाल नारी जाति के थे वैसे बाल निकलने लगे और स्तन उदित होने लगे। यह पशु पूर्णतः नारी हो गया, यहां तक कि नर पशु इसकी ओर मोहित होने लगे। यह प्रयोग मुर्गों पर भी सफलतापूर्वक किया गया। वृद्ध मनुष्य में से पुरानी शुक्रग्रन्थियां निकाल कर युवक पशु की (बन्दर की) शुक्रग्रन्थियां स्थापित कर युवा बनाने का प्रयास भी इसी सिद्धान्त पर किया जा रहा है। अभिप्राय यह है कि इन ग्रन्थियों के अन्तःस्राव का स्वास्थ्य पर बहुत लाभकर प्रभाव होता है।

Ovarian Gland

डिंब ग्रंथियों के अन्तः स्राव का प्रभाव नारी के आवर्त जीवन पर बहुत पड़ा करता है; यह बात तो स्वयं सिद्ध है। डिंब, योनि, गर्भाशय, और दुग्ध ग्रंथियों में ऋतु परिवर्तन इन्हीं के आधार पर होता है। यदि डिंब ग्रंथियां निकाल दी जांय तो ये आवर्त्त परिवर्त्तन बन्द हो जाय। इन ग्रंथियों में से रस स्राव रुधिर में जाकर मिलता और वहां से शरीर के भिन्न २ अंगो में पहुँचता है। ऋतुकाल निश्चित होने का कारण भी यही है क्योंकि डिंब ग्रंथियों से अन्तःस्राव निश्चित अवधि पर ही निकलता है। इन अन्तःस्रावों के कई हारमोन निकाले गए हैं और इन्हें बहुत से नाम दिये गए हैं; जैसे-ओयस्ट्रीन, फैसिकुलिन, मेनकोरमेन, प्रोगाइनोन इत्यादि इनके रासायनिक स्वरूप का गत १० वर्षों में बहुत अध्ययन किया जा चुका है।

Pancreatic glands

क्लोम ग्रंथि-के वाह्यस्राव की उपयोगिता का तो लोगों को बहुत दिन से पता था, पर सन् १८८६ में वान मेरिंग और मिन कोस्की ने यह भी प्रदर्शन किया कि इस ग्रन्थि से एक अति उपयोगी अन्तः स्राव निकालता है। इन वैज्ञानिकों ने यह दिखाया कि यह ग्रन्थि समस्त रूप से निकाल देने पर भी प्राणी जीवित रह सकता है, पर इस से मूत्र में शर्करा की मात्रा आने लगती है। इसके बाद अन्य अन्वेषकों ने क्लोम ग्रन्थि की उपयोगिता पर बहुत से मनोरञ्जक प्रयोग किए। लोगों ने यह दिखाया कि चाहे पशु को शर्करामय पदार्थ देना क्यों न बन्द कर दे, क्लोम ग्रन्थि निकाल देने पर उसके मूत्र में शर्करा बराबर आती रहेगी। और मधुमेह के लक्षण प्रकट होंगे। मूत्र अधिक आने लगेगा और उस में मूत्रिया (Urea) की मात्रा बढ़ने लगेगी। प्राणी को भूख और प्यास अधिक लगने लगेंगे (साधारण मात्रा से)। मूत्र में सिरकोन (Actone) भी पाया जायेगा, यद्यपि उतना नहीं जितना मधुमेह में। मनुष्य की शक्ति का ह्रास होने लगेगा।

वौन मेरिंग और मीनकोस्की ने दिखाया कि यदि कुत्ते में एक चौथाई ग्रन्थि (क्लोम) भी छोड़ दी जाय तो उनके मूत्र में शर्करा न आवेगी। यह ग्रन्थि मधुमेह को रोकने वाली है, और मधुमेह रोग बहुधा तभी होता है जब इस ग्रन्थि का व्यपार कम हो जाता है। यदि क्लोम ग्रन्थि निकाल ली जाय और पुनः मधुमेह की अवस्था में इस ग्रन्थि का रस रुधिर में पहुँचाया जाय तो मधु-मेह-दूर होने लगेगा। यह ग्रन्थि शरीर में किसी और जगह

लगादी जाय तो भी मधुमेह–अंशतः या सर्वतः दूर हो जायगा। इन सब बातों से स्पष्ट है कि क्लोम प्रन्थि से रुधिर को कोई विशेष हारमोन प्राप्त होता है। ग्रन्थि के सम्पूर्ण अंगों का होना कोई आवश्यक नहीं। क्लोम में अण्डाकार छोटे २ द्वीप समूह छितरे रहते हैं, जिन्हें लैंगरहेस का द्वीप कहा जाता है। इन द्वीप समूहों से ही विशिष्ट हारमोन निकलता है। इस द्वीप के कोष्ठों से संस्रवित हारमोन का नाम १६१६ में सेफेर ने इनसुलीन दिया। हारमोन के सम्बन्ध में उत्कृष्ट कार्य्य वैरिंगवेष्ट, मेकालीयौड ने १६२१ में किया। बैल के क्लोम से इन्होंने हारमोन, शुद्ध इन्स्युन्लीन तैयार किया। इसका उपयोग मधुमेह के रोगियों पर बहुत किया और अधिक अंश में लाभकर ही पाया गया। ग्रन्थि रस को मद्यसार के साथ घोल कर निकाला करते हैं। एवेल ने १६२६ में इसे शुद्ध रवों के रूप में प्राप्त किया। शरीर में इसका घोलरस प्रविष्ट कराने से रक्त की शर्करा कम हो जाती है। Insulin की विद्यमानता में शर्करामय पदार्थों का ओषधी करण अधिक होता है और पाचन भले प्रकार होता है।

—:o:—

सप्तम अध्याय

आहार और शारीरोष्मा

हमारे शरीर की ऊष्मा हमारा जीवन है। हमारे शरीर में जितने धातु हैं उन सबों की अपनी २ अग्नि या ऊष्मा होती है[1] (Intercellilur Engymes) जिस से सदा धातुपाक (धातु परिवर्धन के लिए) होता रहता है। यदि यह ऊष्मा उचित रूप में न रहे तो हमें तरह २ के कष्ट हो सकते हैं। हमारा श्वास प्रश्वास बन्द हो सकता है, हमारी हृदयगति रुक सकती है और धातु निर्माण कार्य बन्द हो सकता है। मानव शरीरोष्मा, शरीरान्तर्गत उद्भूतोष्मा के आय व्यय का शेष या अन्तर है। अर्थात् मानव शरीर में भुक्तान्न के परिपचन से जो ऊष्मा तैयार होती है और परिश्रम द्वारा जितनी ऊष्मा व्यय होती है उसका शेषांश शरीर की ऊष्मा है। भुक्तान्न रस के परिणाम काल में रसादि धातुओं में

---

१. "दोषधातुमलादीनामूष्मा इत्यात्रेय शासनम्" । वाग्भट—
"यथा स्वेनोष्मणा पाक शारीरा यान्ति धातवः।" (च० चि० ८)

ऊष्मा तैयार होती है और परिश्रम करने से त्वचा की स्वेदवाहिनियों द्वारा उसका व्यय होता है। ज्वर, शरीर में अधिक ऊष्मा निर्माण होने के कारण नहीं होता, वरन् शरीर की ऊष्मा नियामक क्रिया में बाधा उत्पन्न होने से उसकी रुकावट का परिणाम मात्र होता है। साधारणतः शरीर की आन्तरिक ऊष्मा जो अधिक रहती है रक्त द्वारा बाह्य तह तक लायी जाती है और वहां (त्वचा में) ज्योतिकर या प्रकाश (Radiation) प्रवाहकत्व (Conduction) और दोष निश्चय (Convection) द्वारा बाहर होता है।

आयुर्वेद में प्रायः पित्त और अग्नि का अभेद रूप से उल्लेख होता है। यद्यपि सुश्रुत में यह प्रश्न उठाया गया है कि "पित्त से अग्नि कोई पृथक है अथवा पित्त शारीरिक अग्नि है।"[1] इस विषय में यह कहा जा सकता है कि पित्त से भिन्न अग्नि वास्तव में कोई नहीं होती अतः यहां यह विचारना है कि पित्त द्वारा यह कार्य किस प्रकार सम्पन्न होता है। हमारा भोजन प्रधानतःप्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, और वसामय होता है। इन में कार्बोहाइड्रेट और वसा का, ऊष्मोत्पादन में विशेष भाग रहता है। कार्बोहाइड्रेट का चरम परिणाम द्राक्षौज (Glucose) होता है जो रस रक्त से मिल कर शरीरके अनेक अवयवों में प्रवाहित होता हुआ यकृत् और मांस में आता है। रक्त अपने अन्दर रक्तकण को भी अपने साथ ढोता

१. "तत्र जिज्ञास्यं किं पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्निः आहोस्वित् पित्तमेवाग्निरिति अत्रोच्यते—न खलु पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्निरुपलभ्यते"
(सु० सू० २१)

रहता है जो लौटती बार फुफ्फुस से प्राणवायु (Oxyzen) लाता है । यह औक्सिजन भी प्रत्येक अवयवों और धातुओं के निकट पहुंचता है। अवयवों तथा धातुओं में (यकृत् और मांस में) द्राक्षौज का भस्मीकरण रक्तगत औक्सिजन द्वारा अधिक होता है । यह देखा गया है कि एक अणु द्राक्षौज के औक्सिजन के ६ अणुओं से (भस्मीकरण मे) कार्बन डाइक्साईड ६ अणुओं से, और जल के ६ अणुओं से मिलता है। जिसका फार्मूला इस प्रकार है।

$$C_6 H_{12} O_6 + 6O_2 = 6CO_2 + 6H_2O$$

यह पता लगा है कि एक ग्राम द्राक्षौज १.०६७ग्राम औक्सि-जन का भक्षण करता है और उससे १.४६७ कार्बन डायक्साइड, ०.७०० जल और ४.१ कलारी ताप तैयार होता है। इसी प्रकार १ ग्राम वसा २.८७५ ग्राम औक्सीजन का भक्षण करता है और उससे २.८०५ कार्बन डाइक्साइड, १.०७१ जल और ९.३ कलारी ताप तैयार होता है। एक ग्राम प्रोटीन, १.३८२ ग्राम औक्सी-जन का भक्षण करता है और उससे १.५२२ कार्बन डाइक्साइड ०.३७५ ग्राम जल और ४.१ कलारी ताप तैयार होता है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जो शक्ति या ताप शरीर में उत्पन्न होता है उसे कलारी ताप कहते हैं। दूसरी तरह से इस कलारी को इस प्रकार समझ सकते हैं कि जब हम लोग कोई काम करते हैं तो हमें ये चिन्ता होती है कि हमें इस करने की शक्ति को बनाए रखने के लिये आहारेंधन की आवश्यकता है।

हम यह कह सकते हैं कि हमारा आहार इतना होना चाहिये जिससे प्रतिदिन हमें इतना ताप मिल सके। और साथ ही हम देख चुके हैं कि कितना ताप उत्पन्न करने की शक्ति हमारे उक्त-भुक्ताहार में है। इसी प्रकार अपने आहारों से उत्पन्न होने वाले ताप के अनुमान से हम यह भी अनुमान कर सकते हैं कि कितना ताप हमारे शरीर के अन्दर लय हुआ है। यह ताप ही कलारी ताप है।।

Calories—When we are working out, how much food people require to make them healthy, we may say, that their Diet must yield so many Calories per day. A Calorie is a certain amount of heat or energy, and we have found out just how much heat or energy, in the form of Caloric, all the food we eat can supply. In the same way we can work out how many Calories are produced when a quantity of coal or wood is burnt, which is another example how the burning of a substance and the way our bodies make use of food are really the same thing.

(Health Bulletin No: 30)

साधारणतः एक मनुष्य को उसके शरीरभार से २५ गुणा कलारीताप की आवश्यकता २४ घण्टे में पड़ती है।

(१) शरीरभार × २५ = आवश्यक कलारीताप २४ घण्टे में

(२) १ ग्राम प्रोटीन से—४·१ कलारीताप मिलता है।

१ " वसा " ६·३ " "

१ " कार्बोहाइड्रेट से ४·१ " "

(३) आवश्यक कलारीताप ÷ १२ = वसा का परिमाण (ग्राम में)

" " ÷ ३० = श्वेतसार " "

" " ÷ ३३ = प्रोटीन " "

निम्न सारिणी से पता चलेगा कि शरीर में नित्य कितना और किस तरह उक्त ऊष्मा (कलारीताप) उत्पन्न होती है और किस प्रकार व्यय होती है ? शारीरिक ऊष्मा को साम्यावस्था में बनाए रखने के लिए जितना खर्च हो उतना पूरा करना परमावश्यक है।

आय	प्रतिदिन
प्रोटीन आहार गति निश्चय में—(१२० ग्रे०)	=१२०×४=४८०
वसा ” (१० ग्रे०)	=१००×९·४=९४०
कार्बोहाइड्रेट... ... ... (३३३ ग्रे०)	=३३३×४·१६=१३८५
कुलयोग—	२८०५

व्यय	प्रतिदिन	
भुक्त जल को उष्ण करने में ...	२·६ कि० मी०×२५=६५	
श्वास में वायु ”	१६ किलो०×२५×०·२४=९६	
फुफ्फुस में वाष्पीकरण में ”	६३० ग्रे० ५८८——	३६६
शारीरिक परिश्रम प्रभृति में—		२२७८
योग—		२८०५

आयुर्वेदीय दृष्टिकोण

सोष्मत्व

पहले यह प्रतिपादित हो चुका है कि पञ्चमहा भूतों की भी अपनी २ अग्नि होती है देह धातु पाञ्चभौतिक है अतः प्रत्येक धातु में अग्निभूत का होना अनिवार्य है। यद्यपि सजीव और निर्जीव दोनों ही शरीर पाञ्चभौतिक हैं तथापि दोनों में मौलिक मतभेद है। दोनों के पाञ्चभौतिक होने पर भी सजीव शरीर का भूतांश सक्रिय और निर्जीव का निष्क्रिय है। कहने का तात्पर्य यह है कि सजीव शरीर के भूतांश की क्रियात्मिका शक्ति विकसित है और निर्जीव की अविकशित है। अर्थात् सजीव शरीर में पाचन शक्ति (Power of Digestion) सात्म्यीकरण (assimilation) और मलनिःसरण शक्ति विकसित एवं व्यक्त है। अतः सजीव शरीर के भौतिक अंशों में भी पाक शक्ति है। विशेषकर पाक तथा सात्म्यीकरण शक्ति अग्निभूत की होती है और यही अग्निक्रिया जीवन का चिह्न है। आयुर्वेद का सम्बन्ध सजीव शरीर से ही है अतः यह वर्णन कि "दोष धातु मल मूलं हि शरीरम्" सर्वथा युक्तियुक्त है। यही वर्णन हमें यह स्पष्ट कर देता है कि पञ्च महाभूत सजीव और निर्जीव दोनों प्रकार के शरीर के लिये मूल भूतः उपादान है और दोष धातु मलोपादान भूत शरीर केवल सजीव शरीर का वर्णन है।

उक्त वर्णन यह भी स्पष्ट कर देता है कि शरीर के, जिनमें अग्निभूत अधिक अंश में है यथा पित्त और रक्त, अग्निक्रिया उनमें

विशेष स्पष्ट है। उक्त तीनों समुदायों मे दोष समुदाय मे पाचन शक्ति की विशेषता और निःसारण शक्ति की अत्यल्पता है। धातुओं (सप्तधातुओं) मे सात्म्यी करण शक्ति (Power of assimilation) विशेष है और मल चूंकि स्वयं निःसृत होता रहता है अत्यल्प पाचन तथा सात्म्योकरण शक्ति वाला है। दोष धातु और मलों की अपनी २ अग्नि होती है इसका समर्थन वृद्धवाग्भट ने भी किया है। (देखिये अ० स० शा० ६ १ इन्दु टीका)दोषोष्मा का वर्णन चरक चिकित्सा अध्याय ३ मे भी ज्वर की सम्प्राप्ति मे आया है[1] इन सब बातों से पता चलता है कि अग्नि के सम्बन्ध मे पहले भी मतभेद रहा है। और यही कारण है कि आयुर्वेदीय ग्रन्थों मे अनेक तरह की अग्नि की कल्पना का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है। यथा—कायाग्नि देहाग्नि, धात्वग्नि, अन्तराग्नि जठराग्नि, भूताग्नि, इत्यादि। परन्तु हम यदि देहधातु के प्रत्येक पहलू से विचार करें (पाक, राग दाह) तो अग्नि का अनेक नाम जनित यह भ्रम दूर हो जाय और सारा प्रश्न हल हो जाय। शरीर मे यह पाक क्रिया चक्र (Cycle of vital activities) अहर्निश

१ 'अन्ये पुनराचक्षते दोष धातु मल सन्निपात जनितोऽन्तरोष्मा यथा निर्दिष्टाधिष्ठ न कर्माग्निरिति—' इन्दुटीका—अन्ये पुनराचार्यं, पित्तमग्नि-रिति नेच्छन्ति, दोषादि सयोग जनितोऽन्त शरीरोष्मा प्रहण्याधिष्ठान पाक रागादि कर्माग्नि।"

चलता रहता है[२]। हम जो भोजन करते हैं उसका शरीर के भिन्न २ स्थलों में आगत स्रात्रों के अग्नि द्वारा (Enzymes) पाक होता रहता है और शरीर की कमी की पूर्ति होती रहती है।

---

१. "कालवदनवस्थितधातुपाकं" (च०सू० २८)

अष्टमोऽध्याय

अनुपान (Adjuncts to the food)

प्रधान भोजन के साथ मनुष्य कुछ द्रव्यों का सेवन करता है जिससे भोज्य द्रव्य स्वादिष्ट और सुपच बन जाता है। ये द्रव्य नाना प्रकार के होते हैं और उनका संयोग आवश्यकतानुसार देश दोष ऋतुकाल और भोक्ता की प्रकृति के अनुकूल हुआ करता है। ऐसे द्रव्यों को अनुपान कहते हैं। अनुपान[1] का कार्य भोज्य द्रव्यों के गुणदांश को बढ़ाना और अपकारकांश को निकालना है। अनुपान के अन्तर्गत सुरा आसवादि भी आ जाते हैं, जिनका उपयुक्त मात्रा में सेवन इन्द्रियों में स्फूर्ति लाने

---

1. 'अन्नादनु पश्चात् पीयते इत्यनुपानम्" ।

"किंवा अन्नमनु लघुरी कृत्य पीयते' इत्यनुपानम्" ॥

'यदाहारगुणैः पानं विपरीतं तदिष्यते ।

अन्नानुपान धातूनां दृष्टं यन्न विरोधि च" ॥ (चरक)

वाला होता है। अन्य अनुपान जिन्हें हम मसाले (Codiment) के रूप में व्यवहार करते हैं प्रायः दीपन पाचन हुआ करते हैं। जल वायु के अनुकूल कहीं २ कुछ मादक वस्तुओं का व्यवहार भी आवश्यक होता है यथा चाय, काफी, या अन्य कोई पेय पदार्थ। ये प्रायः उत्तेजक होते हैं।

यद्यपि उपरोक्त वर्णन के अनुसार अनुपानों का प्रयोग उपयोगी है तथापि आजकल कुछ उग्र एकपक्षीय विचार वाले इनका बिलकुल निषेध करने के लिये कमर कसे हुए हैं। मेरे विचार से यह उक्त व्यवस्था के वर्त्तमान कालीन दुरुपयोग की प्रतिक्रिया मात्र है। इसका अर्थ यह नहीं कि हम प्राकृतिक भोजनपोदेश के विरोधी हैं। हम जानते है कि जहां तक हो सके हमारा जीवन कृत्रिमता से पृथक् रहे; परन्तु जिस परिस्थिति में हम हैं हमारा आहार भी उसी के अनुकूल होना चाहिए। चाय, कॉफी, प्रभृति विषैले होते हैं अतः इनका अधिक व्यवहार शरीर के अन्दर अति उत्तेजना पैदा करता है जिससे पाचनशक्ति बिगड़ जाती है[२]। चाय और कॉफी में थोड़ा अन्तर होता है। कॉफी में मादक पदार्थ (Aromatics) अधिक होता है और चाय में एक तिक्त पदार्थ होता है जिसे टॅनिन (Tanin) कहते

१. "अनुपानं तर्पयति, प्रीणयति, उज्जयति पर्याप्तिमभिनिर्वर्तयति, भुक्त-मवसादयति, अन्नसंघातं भिनत्ति, मार्दवमापादयति क्लेदयति जरयति, सुखपरिणामितामाशुव्यवायितां चाहारस्योपजनयति"

(च० सू० २७)

हैं। इस पदार्थ के अनिष्ट से बचने के लिए इसे अधिक देर तक उबालना (Infuse) नहीं चाहिये। चीन के लोग उक्त जाति के एक और पदार्थ का सेवन करते हैं जिसे 'ककुआ' कहते हैं। इसमें 'थेब्रोमाइन' नामक पदार्थ होता है जो उनके आहार का एक अंश होता है। इसमें लगभग ५० प्रतिशत वसा और १५ प्र०श० प्रोटीन भी रहती है। कृत्रिम ककुआ में वसा का अंश घटा कर ३० प्र० श० और प्रोटीन बढ़ा कर २० प्र० श० कर दिया जाता है।

सर्वोत्तम अनुमान

विशेषकर भारतवर्ष के लिये सब्जियां हैं जिनमें पौष्टिक पदार्थों का बहुत्व रहता है। इनमें पांशुज लवण (Potasium Salt) पर्याप्त मात्रा में रहता है। सब्जियों में क्या २ पौष्टिक अंश कितना २ रहता है, पुस्तक में दी हुई सारिणी से इसका पता लग जायगा। इसलिये भोजन के साथ सब्जियों का रहना परमावश्यक है। सब्जियों की भांति भोजन में फलों का समावेश

Coffee:—contains- 1 to 3 P. C. Proteids, 11 to 14 P.C. Sugar, 10 P.C. Legamin, Ghulose dextrin 15 P.C.

Coffee—Tanic acid 1-2 P,C. Fat etc. 3 to 5 P.C.

Tea—Contains a Volatile oil, tanic and gallic acid querecin, thienits cheap alkaloids.

भी परमावश्यक है। फलों में प्राय जल का अग अधिक रहता है। इनमे ऐन्द्रयक अम्ल और लवण Organic acid & salts) होते हैं जो शरीर मे ओषदीकरण द्वारा कार्बनेट (Carbonate) तैयार करते है। इसलिय फल शरीर म सब्जियों की तरह क्षारगुण को बढाते हैं जो स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है। विशेषकर फल तथा सब्जियों से शरीर का परमोपयोगी पदार्थ विटामिन (Vitamin) प्राप्त होता है। इनसे एक और तत्व प्राप्त होता है जिसे सेल्युलोज (Cellose) कहते हैं जो अन्तडियों को बढाता है। [1]

---

1 Fruits like vegetables contain cheafly water They contain also organic acid e g citric anb their salts, which become oxidised to carbonate in the body Fruts therefore with the exceptions of pruns and cranberies Promotes an alkalinty of the body like vegetable diet generally Fruits and Vegetables are also important sources of vitamin and virtue of their cellulose add appreciably to the bulks of the intestinal movements" (Halliburton)

प्रायः अनुपान भोजन[1] करने के पश्चात् ही सेवन किया जाता है परन्तु आवश्यकतानुसार भोजन के पूर्व या मध्य में भी सेवन कर सकते हैं। अनुपान से प्रधान भोजन में किये हुए अधिक, गुरु, और विष्टम्भी पदार्थ सुखपूर्वक पच जाते हैं।[2] जैसे अम्ल से उद्वेजित मनुष्य मधुर पदार्थ सेवन की इच्छा करता है और मधुर से अतितृप्त मनुष्य अम्ल की अभिलाषा प्रकट करता है। अर्थात उनके लिये जो उचित होता है वही पथ्यकर अनुपान होता है।[3] इसी प्रकार ठंडा पानी, गरम पानी, आसव, मद्य, यूष, फलाम्ल, धान्याम्ल, दूध, मांसरस, इनमें से जो अनुपान जिसके लिये हितकर हो वह उसे उचित परिमाण में लेना चाहिये। बुद्धिमान मनुष्यों को चाहिये कि वह व्याधि और काल का विचार

---

१. 'अन्नादनु पश्चात् पीयते' इत्यनुपानम्।
किंवा अन्नमनु लक्ष्मीकृत्य पीयते इत्यनुपानम्॥

२. 'दोषवद्गुरुत्वा भुक्तमतिमात्रमथापिवा। यथोक्तेनानुपानेन सुखमन्नं प्रजीर्यति॥'' (सु० सू० ४६)

३. 'अम्लेन केचिद्विहता मनुष्या, माधुर्ययोगे प्रणयीभवन्ति।
तथाऽन्नयोगे मधुरेण तृप्तास्तेषां यथेष्ठ प्रवदन्ति पथ्यम्॥''(सु०सू० ४६)
''शीतोष्ण तोयासव मद्ययूष फलाम्ल धान्याम्ल पयोरसानाम्।
यस्यानुपानं तुहितं भवेद्यत्तस्मै प्रदेयं त्विहमात्रयातत्॥
व्याधिंचकाल च विभाज्यधीरैर्द्रव्याणि भोज्यानि च तानि तानि।
सर्वानुपानेषु वरम् वदन्ति, मेध्यं यदम्भः शुचिभाजनस्थम्॥''
(सु० सू० ४६)

कर (उपर्युक्त) विविध भोज्य द्रव्यों का सेवन करें। सब अनुपानों में शुद्धपात्र में इकट्ठा किया हुआ अन्तरिक्ष जल श्रेष्ठ है[१]।

यह देखा गया है कि जन्म से ही मनुष्यों के लिए तरल रूप सर्व प्रकार के रस पथ्यकर होते हैं। (सु. सू. ४६)

भिलावे[२] के तेल और तुवरक के तेल के अतिरिक्त सर्व-प्रकार के स्नेह पदार्थों पर गरम जल का अनुपान प्रशस्त होता

---

१ "लोकस्य जन्म प्रभृति प्रशस्त तोयात्मकाः सर्वरसाश्चदृष्टाः।"

(सु० सू० ४६)

२ "उष्णोदकानुपानं तु स्नेहानामथ शस्यते।
ऋते भल्लातक स्नेहात् स्नेहात्तौवरकास्तथा॥
अनुपानं वदन्त्येके तैले यूषाम्ल काञ्जिकम्।
शीतोदकंमाक्षिकस्य पिष्टान्नस्य च सर्वशः॥
दधिपायसमद्यार्त्तिविषजुष्टे तथैव च।
केचित् पिष्टमयस्याहुरनुपानं सुखोदकम्॥
पयो मांसरसोवापि शालिमूद्गादिभोजिनाम्।
युद्धाध्वातपसंताप विष मद्य रुजासु च॥
माषादेरनुपानं तु धान्याम्लं दधिमस्तु वा।
मद्यं मद्योत्थितानां तु सर्वमांषेषु पूजितम्॥
अमद्यपानानांमुदकं फलाम्लं वा प्रशस्यते।
क्षीरं घर्माध्वभाष्यस्त्रीक्लान्तानामृतोपम्॥
सुरा कृशानां स्थूलानामनुपानं मधूदकम्।
निरामयानां चित्रं तु भुक्त मध्ये प्रकोर्त्तितम्॥

है। कई ऐसा कहते हैं कि तेल के लिये यूष और अम्लकांजिक का अनुपान चाहिए। शहद और मिष्टान्न के लये हमेशा ठंडा पानी चाहिए। दधि, क्षीर, मदात्यय और विषजुष्ट पर भी वैसा ही ठंडा पानी का अनुपान चाहिए। मिष्ट पदार्थों पर मन्दोष्ण पानी का अनुपान कोई २ बतलाते हैं। चावल मूंग आदि खाने वालों के लिए तथा युद्ध और प्रवास से थकी हुई अवस्था में, धूप, अग्निसताप, विष और मद्य इनसे पीड़ित अवस्था में दूध अथवा मांस रस का अनुपान देना चाहिए। माषादि पदार्थों पर धान्याम्ल या दधि का पानी अनुपान है। मदिरा पीने वालों को सब प्रकार व मासों पर मद्य ही अनुपान है। जो शराबी नहीं है उनके लिए पानी या फलाम्ल उचित अनुपान है। धूप, प्रवास भाषण, स्त्रीसेवन इनसे थके हुए मनुष्यों को दूध का अनुपान अमृत के समान है। पतले मनुष्यों के लिए सुरा और मोटे मनुष्यों के लिए मधु और पानी मिला कर पीना अनुपान है। स्वस्थ मनुष्यों को भोजन के मध्य में नाना प्रकार के अनुपान द्रव्यों का पीना उचित है। वायु प्रकृति या रोग वाले मनुष्यों के लिए स्निग्ध और गरम अनुपान पथ्यकर है; और पित्त प्रकृति और रोग वाले मनुष्यों के लिए

स्निग्धोष्णं मारुते पथ्यं कफे रूक्षोष्णमिष्यते।
अनुपानं हितं चापि पित्ते मधुरशीतलम्॥
हितं शोणितपित्तेभ्यः क्षीरमिक्षुरसस्तथा।
अर्कशेलु शिरीषाणामासवास्तु विषर्त्तिषु॥"

(सु० सू० ४६)

मधुर और शीतल अनुपान हितकर है। कफ प्रकृत्ति या रोग वालों के लिए रूक्ष और उष्ण अनुपान पथ्यकर है। रक्तपित्त के रोगियों के लिए दूध और गन्ने का रस हितकर अनुपान है। और विष की पीड़ा में अर्क लिसोढ़ा और शिरीष इनके आसव हितकर हैं।

वर्गों के पृथक् २ अनुपान

शूक धान्य (शस्य जाति) पर बेरों की खटाई, और वैदलों पर धान्याम्ल, जंगल और मरुस्थली के पशुओं के मांस पर पिप्पल्यासव, विष्करों के लिए कोलबदरासव, प्रतुदों के लिए क्षीर वृक्षासव, गुहाशयों के लिए खर्जूरनारिकेलासव प्रसहों के लिए अश्वगन्धासव, पर्ण मृगों (मांस)के लिए (सहिजन) कृष्णगन्धासव, बिलेशयों के लिये(मृद्वीकादि)फलसारासव,एक खुर के प्राणी के मांस पर फलासव, अनेक खुर वालों के मांस पर खदिरासव, कूलचरों के मांस पर शृंगाटक और कसेरू इनके आसव, कोश में रहने वाले और पादिनों के मांस पर भी वही, अनुपान है। पानी में तैरने वालों के मांस पर इक्षुरसासव, नदी की मछलियों के लिए कमल नाल का आसव, समुद्र की मछलियों के लिये मातुलुंग का आसव अनुपान है। खट्टे फलों के लिए उत्पन्न कन्दों का आसव, कषाय फलों के लिए अनार और बेंत का आसव, मधुर फलों के लिये त्रिकुट युक्त खण्डासव, ताल आदि फलों के लिये धान्याम्ल, कटु फलों के लिये दूर्वा नरसल और बेंत का आसव अनुपान है। पिप्पली आदि के लिए गोखरू और वसुक का आसव, कूष्मांडादि के लिये दारुहरिद्रा और करीर का आसव, चुच्चू

आदि शाकों के लिये लोधासव अनुपान है। जीवन्ती आदि शाकों के लिये त्रिफलासव, तथा कुसुंब आदि के लिए भी वही अनुपान है। मण्डूक पर्णी आदि शाकों के लिए वृहत् पञ्चमूल का आसव, नारिकेल आदि फलों के लिए अम्लफलों के आसव तथा सैंधवादि लवणों के लिये सुरासव और काञ्जिक अनुपान है। पानी सब पदार्थों के लिये अनुपान है। सब अनुपानों में माहेन्द्र (आश्विन कातिक का अन्तरिक्ष जल) जल श्रेष्ठ अनुपान है। अथवा जिसको जो जल सात्म्य हो, वही उसके लिये हितकर समझना चाहिए। वायु और कफ में उष्ण जल और पित्त तथा रक्तविकार में शीतजल हित कर होता है। इस प्रकार योग्य विचार कर प्रयुक्त किया अनुपान सदैव रुचिकारक, शरीर पुष्टिकर, वृष्य, दोषों का भेदन करने वाला, तृप्तिकारक, शरीरमार्दवकर, श्रम और क्लमनाशक, सुखकर, अग्निदीपक, दोषनाशक, तृषाशमन के लिये श्रेष्ठ, बलकारक और वीर्यकारक होता है। (सु० सू० ४६)

जिसको श्वास हो, खांसी हो, उर्ध्वजत्रु विकार हो, उरःक्षत हो, लालास्राव हो, स्वर बिगड़ गया हो उसको अनुपान सेवन नहीं करना चाहिए। अनुपान सेवन करने के पश्चात् प्रवास, उच्चस्वर से बोलना, पढ़ना, गाना और सोना, ये काम नहीं करने चाहिएं। ऐसा करने से अनुपान आमाशय को दूषित करके वमन आदिअनेक रोगों को उत्पन्न करता है।

नवम अध्याय

आहार गति निश्चय

सेवन किए हुए खाद्य द्रव्यों में (चतुर्विध) विविध पाचकाग्नियों की सहायता से जो कुछ परिवर्त्तन होता है उसके निर्णय को आहारगति निश्चय या अंगरेज़ी में Food metabolism) कहते हैं। इस परिवर्त्तन में शरीर के अन्दर दो प्रकार की क्रियाएं होती रहती हैं। एक प्रकार की क्रिया द्वारा सेवन किए हुए खाद्य द्रव्यों से रस रक्तादि शरीर के विविध धातु बनते हैं; उनकी वृद्धि होती है; क्षति की पूर्ति होती है, तथा उनकी रक्षा होती है। संक्षेप में पहली क्रिया से शरीर में रचनात्मक कार्य्य (संश्लेषण) होता रहता है। इस क्रिया को अंगरेज़ी में (Anabolism) एनाबोलिज्म कहते हैं। दूसरी क्रिया से पहली क्रिया के विरुद्ध कार्य्य होता है इससे शरीर के धातुओं में विघटन उत्पन्न होकर उससे कार्बन डाइक्साइड, जल, अमोनिया, यूरिया इत्यादि अनेक शरीर के अनुपयोगी द्रव्य (अतएव त्याज्य) मल रूप या किट् रूप बनते हैं, जो

मूत्र, स्वेद और प्रश्वास से तथा शरीर के अन्य छिद्रों से बाहर निकलते हैं। सक्षेप में इस क्रिया से शरीर में विनाशात्मक कार्य्य होता रहता है। इसको अंगरेज़ी में "केटाबोलिज्म" (Kata bolism) कहते हैं। शरीर के स्वास्थ्य के लिए दोनों क्रियाओं का सुचारू रूप से चलते रहना बहुत आवश्यक है। आयु के अनुसार इन क्रियाओं में न्यूनाधिकता होती रहती है। बाल्यावस्था में विनाशात्मक कार्य्य की अपेक्षा रचनात्मक कार्य्य अधिक होता रहता है जिससे शरीर की वृद्धि होती है। युवाकाल में दोनों कार्य्य बहुधा समान गति से होते हैं अतः शरीर न घटता है न बढ़ता है। वृद्ध और रुग्णावस्था में रचनात्मक की अपेक्षा विनाशात्मक कार्य्य अधिक होता है जिससे शरीर दिन प्रतिदिन क्षीण और दुर्बल होता चला जाता है। इस प्रकार आहार गति निश्चय समान है = धातुगुण वर्धन + मलीभवन।

Meta bolism = Anabolism + Katabolism

भारतीय कल्पना के अनुसार शरीर की बनावट बहुत कुछ सूक्ष्म होने पर भी आयुर्वेद में स्थूल रूप से पञ्चभूतात्मक ही माना गया है[1]। शरीर की उत्पत्ति स्थिति और वृद्धि आहार[2] से होती है इसलिये आहार का योग्य सङ्गठन वही हो सकता है जो कि हमारे शरीर का है। अर्थात् हमारे आहार का संगठन भी पञ्चभूतात्मक होना चाहिये इस पञ्चभूतात्मक आहार से शरीर के

१. "भूतेभ्यो हि परं यस्मान्नास्ति चिन्ता, चिकित्सते" सु० शा० १.

२. "देहोह्याहार संभवः" चरक

धातु कैसे बनते हैं और इनके बनने के समय कौन २ से परिवर्त्तन होते हैं उनका अति संक्षिप्त विवरण सहिता ग्रन्थों में एक श्लोक में हैं।[1] (देखिये सुश्रुत सूत्र ४६-५२४ और चरक चि० १५—) इस विषय का कुछ विस्तारपूर्वक वर्णन चरक चि० १५, अष्टांग-संग्रह–शा० ६ और अष्टांग शा० ३ में मिलता है। इसके अतिरिक्त चरक में सूत्र स्थान के २८वें अध्याय के प्रारम्भ मे आहार गति तथा अन्न परिपाक क्रिया का वर्णन है। इस वर्णन का आशय यह है कि शरीरस्थ पाचकाग्नि की सहायता से पञ्चभूतात्मक (षड्रसात्मक) आहार पञ्चतत्वात्मक धातुओं में परिवर्त्तित होता है। यह पाचकाग्नि कर्मभिन्नता और स्थानभिन्नता के अनुसार निम्न तेरह प्रकारों में विभक्त होती है। यथा—(१) जठराग्नि, पञ्चभूताग्नि और सप्तधात्वग्नि। परन्तु आत्रेय के मतानुसार ३ दोषाग्नि, सप्त-धात्वग्नि और ३ मलाग्नि हैं। सेवन किया हुआ आहार प्रथम मुख में लाला और चर्वण की सहायता से महीन और स्निग्ध

1. "पञ्चभूतात्मके देहे ह्याहारः पाञ्चभौतिकः।
विपक्वः पञ्चधा सम्यग्गुणान् स्वानभिवर्धयेत्।"(सु० सू० ४६-५२४०)
"अन्नमादानकर्मा तु प्राणः कोष्ठं प्रकर्षति।
तद्द्रवैर्भिन्नसंघातं स्नेहेन मृदुतां गतम्॥
समानेनावधूतोऽग्निरुदर्यः पवनेन तु।
काले भुक्तं समं सम्यक् पचत्यायुर्विवृद्धये॥
एवं रसमलायान्नमाशयस्थमधः स्थितः।
पचत्यग्निर्यथा स्थाल्यामोदनायाम्बुतण्डुलम्॥

होकर प्राणवायु की सहायता से आमाशय में पहुंचता है। वहां आमाशयिक गतियों से और द्रव से महीन (भिन्न संघात) होता है तथा साथ २ उस पर जाठराग्नि का कार्य प्रारम्भ होता है। जाठराग्नि से अर्ध परिपचित हुआ आहार जब ग्रहणी में से होता हुआ छोटी आंतों में पहुंचता है तब उस पर भौतिकाग्नि का कार्य प्रारम्भ होता है। ये अग्नियां आहारस्थ अपने अपने अवभवों का पचन करती हैं। जैसे पार्थिवाग्नि अपने आहार के पार्थिवांशको जलाग्नि आप्यांश को इत्यादि। इस प्रकार पांचों अग्नियाँ

अन्नस्य भुक्तमात्रस्य षड्रसस्य प्रपाकतः।
मधुराद्यात् कफो भावात् फेनभूत उदीर्यते॥
परन्तु पच्यमानस्य विदग्धस्याम्लभावतः।
आशयाच्च्यवमानस्य पित्तमच्छमुदीर्यते॥
पक्वाशयं तु प्राप्तस्य शोष्यमाणस्य वह्निना।
परिपिण्डितपक्वस्य वायुः स्यात् कटुभावतः॥
अन्नमिष्टं ह्युपकृतं इष्टैर्गन्धादिभिः पृथक्।
देहे प्रीणाति गन्धादीन् घ्राणादीनिन्द्रियाणि च॥
भौमाप्याग्निवायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभसाः।
पञ्चाहारगुणान् स्वान् स्वान् पार्थिवादीन् पचन्ति हि॥
यथा स्वं स्वं च पुष्यन्ति देहद्रव्यगुणाः पृथक्।
पार्थिवाः पार्थिवानेव शेषाः शेषांश्च कृत्स्नशः॥
सप्तभिर्देहधातारो द्विविधाश्च पुनः पुनः।
यथास्वंवमग्निभिः पाकं यान्ति किट्ट प्रसादवत्॥" (चरक)

द्वारा आहार के पाचों अवयवों का पाचन होता है। भौतिकाग्नियों के कार्य के समाप्त होने पर आन्त्रस्थित आहार का परिपाक होने का कार्य भी समाप्त होकर आहार सार और किट्ट दो भागों मे विभक्त होता है।[१] किट्ट का जलाश मूत्र और घनाश विष्ठा होती है जो शिश्न और गुदा द्वारा बाहर निकलती है।[२] आहार का सार भाग आत से शोषित होकर रसायिनियों और शिराओं द्वारा हृदय मे प्रविष्ट होकर वहा से धमनियों द्वारा हृदय के सकोच के कारण शरीर के समस्त धातुओं में पहुँचता है और वहाँ धात्वग्नि की सहायता से फिर परिपचित होकर धातुओं की वृद्धि और स्थिति करता है। ये धात्वग्निया कोई स्वतन्त्र अग्नि न होकर भौतिकाग्नि (कायाग्नि) की अश होती है।[३] धातुओं मे आहार रस का परिपचन होकर जो त्याज्य भाग बनता है उससे पित्त स्वेदादि मल बनते है। आयुर्वेदीय कल्पना के अनुसार आहार गति का यह सक्षिप्त वर्णन है जो आधुनिक शरीर कार्य विज्ञानगत (Physiology) आहारगति वर्णन से बहुत कुछ मिलता है। नवीन अन्वेषण के अनुसार भी शरीर पञ्चतत्वात्मक होता है, आहार भी पञ्चतत्वा-

---

१ 'एव च पक्वादाहाराद्विविधौषधगर्भादिव स्नेहादच्छ सारभूतो रसाख्य किट्टाख्यश्च मलोऽभिनिवर्त्तते।" (अष्टांग संग्रह)

२ "तत्राच्छं किट्टमन्नस्य मूत्र विद्याद्घनं शकृत्" (अष्टांगहृदय)

३. "स्वस्थानस्थस्य कायाग्नेर शा धातुषु सश्रिता। तषां सादातिदीप्तिभ्यां धातुवृद्धिक्षयोद्भव।" (अष्टांगहृदय) "त एव पक्वोष्माण पार्थिवादय स्थानान्तरप्राप्ता धातूष्माण इतिव्यदेशमासादयन्ति।" (अरुणदत्त)

त्मक होता है; आहार पचन के लिये उसके भिन्न २ पाचक द्रव्य (Engymes) होते हैं; इन पाचक द्रव्यों का कार्य होने पर आहार के सार और किट्ट भाग बनते हैं। सार का शोषण आंतों से होकर प्रथम हृदय में पहुँच कर वहां से धमनियों द्वारा शरीर के समस्त धातुओं में फैलता है और धात्वग्नियों द्वारा (Inter Cllular Engymes) परिपाचित होकर धातुओं की वृद्धि करता है। धातुओं से सार का पचन होने के पश्चात् पित्त स्वेदादि मल उत्पन्न होते हैं। आयुर्वेद और पाश्चात्य की आहारगति की कल्पना में इस प्रकार स्थूल रूप से बहुत कुछ समता होने पर भी विस्तारवर्णन में बहुत अन्तर होता है। इसलिये पाश्चात्य कल्पना के अनुसार आहार परिपाक और आहार गति विवरण नीचे विस्तारपूर्वक किया जाता है जिससे दोनों के दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाय। उक्त समन्वय को स्पष्ट करने के लिये दोनों का तुलनात्मक कोष्टक दिया जाता है।

नाम	आयुर्वेदीय सिद्धान्त	पाश्चात्य सिद्धान्त
१. शरीर रचना	पृथ्वी, अप् तेज वायु और आकाश (पञ्चमहाभूत)	खनिज (पृथ्वी) आप्, प्रोटीन, कार्बोहाईड्रेट और वसा (पञ्चतत्वात्मक)
२. आहार का सगठन	उपरोक्त पञ्चमहाभूत	उपरोक्त पञ्चतत्वात्मक
३. महास्रोत मे आहार का पाचन	जाठराग्नि (पित्त) और पञ्चभूताग्नि परन्तु आत्रेय के अनुसार दोषाग्नि (वात पित्त कफाग्नि)	लाला, पित्त, (आमाशय, अग्न्याशय) और आंत्ररस मे मिलने वाले इन्जाइम्स (Enzymes)
४. आहार रस का धातुओं से सात्म्यीकरण	धात्वग्नियों के द्वारा	सेलो के भीतर इन्जाइम्स (Enzymes) के द्वारा
५ सात्म्यीकरण का परिणाम	धातुओं की क्षति की पूर्ति और मल निष्कासन	क्षति का पूर्ति और मल निष्कासन

शरीर का संगठन

रसायन शास्त्र की दृष्टि से संसार के समस्त पदार्थ ९२ के करीब मूल तत्वों (Elements) से बने हैं। इन मूल तत्वों में से शरीर निर्माण में केवल २३ मूल तत्व पाये जाते हैं, जिन में ऑक्सिजन, कार्बन हाइड्रोजन नाइट्रोजन, फास्फोरस, चूना, गन्धक, क्लोरीन, स्नोडियम, लोहा, पोटासियम, मग्नेशियम और क्लोरिन विशेष परिमाण में होते हैं। यद्यपि इतने मूल तत्व शरीर में होते हैं तथापि सिवाय ऑक्सिजन के वे स्वतंत्र रूप में नहीं पाये जाते, यौगिक (Compound) रूप में मिलते हैं। वैद्यक शास्त्र में शरीर की बनावट की दृष्टि से ये यौगिक प्रधान मान जाते हैं। अतः उन्हें पाँच प्रधान श्रेणियों में विभक्त किया है:—१ प्रोटीन (मांसल पदार्थ), २ वसा (Fat) स्नेह वस्तु, ३ कार्बोहाइड्रेट (शर्कराजातीय पदार्थ), ४ खनिज या लवण (पार्थिव पदार्थ) और ५-जल। इन में जल ५७ प्र. श. होता है, और पार्थिवांश २० प्र. श. होता है और वसा-प्रोटीन आदि शेष पदार्थ २३ प्रतिशत होते हैं। जल प्रत्येक सेल का आवश्यक अवयव है। हमारे शरीर के सेल जलवासी हैं। । जल के बिना वे कुछ नहीं कर सकते। जल की भांति प्रोटीन भी प्रत्येक सेल का आवश्यक अवयव है।

आहार का संगठन

जिन पदार्थों से शरीर बना है अर्थात जो चीजें शरीर में पाई जाती है वही चीजें खाद्य के मुख्य उपादान होते हैं, इस लिये

आहार भी पञ्चतत्वात्मक है। यथा-१ प्रोटीन, २ वसा, ३ कार्बोहाइड्रेट, ४ लवण या खनिज और जल।

प्रोटीन—शारीरिक सेलों के ये अत्यावश्यक घटक होते हैं, अतएव शारीरीक ह्रास की पूर्त्ति और धातुओं को वृद्धिके लिए ये अत्यन्त आवश्यक हैं। प्रोटीनों का कार्य्य दूसरे प्रकार के खाद्य पदार्थों से कदापि नहीं हो सकता। यह कभी नहीं भूलना चाहिए। प्रोटीनें अण्डा मछली, मांस, दूध, दाल इत्यादि चीजों में पाई जाती हैं।

वसा

वसा ग्लिसरीन और वसाम्ल (Fatty acid) का यौगिक है। इस से शरीर में उष्णता और शक्ति उत्पन्न होती है। अधिक राशि में सेवन करने पर मेद शरीर में सञ्चित होकर संचित शक्ति (Reserve Energy) का कार्य्य करता है। कार्बोहाइड्रेट की अपेक्षा वसा से ढाई गुणा शक्ति अधिक उत्पन्न होती है। घी मक्खन, स्थावर वा जंगम तेल, बादाम, पिस्ता, अखरोट, इत्यादि में वसा अधिक राशि में मिलती है।

कार्बोहाइड्रेट

इन से शरीर में उष्णता और शक्ति उत्पन्न होती है। अधिक मात्रा में सेवन करने पर इसका मेद में रूपान्तर होकर शरीर में सञ्चय होता है। शारीरिक श्रम करने वाले को इसकी अधिक आवश्यकता होती है। ये केवल वनस्पतियों से प्राप्त होते हैं। चावल, गेहूँ, अरारोट, साबूदाना, आलू, शकरकन्द, शकर,

गुड़, मीठे फल, शहद, इत्यादि में मुख्य द्रव्य कार्बोहाइड्रेट ही होता है।

खनिज द्रव्य

शरीर की हड्डियाँ खनिज द्रव्यों से ही बनती हैं। शरीरस्थ खनिज द्रव्यों का $\frac{4}{5}$ भाग केवल हड्डियों में ही होता है। हड्डियों के अतिरिक्त रक्त का रंजक (Haemoglobin), आमाशयिक रस, दाँत, केश, मस्तिष्क इत्यादि में खनिज होते हैं। खनिज पदार्थ दूध, अण्डा, हरी शाक सब्जी, अनाज इत्यादि में पाये जाते हैं। जल की सहायता से शरीर के भीतर सारे परिवर्त्तन होते हैं। खाद्य द्रव्यों का पचन और सात्म्यीकरण, मल मूत्रादि त्याज्य पदार्थों का उत्सर्ग, रक्त का परिभ्रमण जल की सहायता से होता है। मनुष्य को प्रतिदिन ३ सेर के लगभग पानी की आवश्यकता होती है। यह राशि मनुष्य के रहन-सहन, परिश्रम, देश, काल, आहार भेद से न्यूनाधिक होती है। ठंडे देश में तथा जाड़ों में उष्ण देश तथा गर्मियों की अपेक्षा कम पानी की आवश्यकता होती है। आलसी मनुष्य को परिश्रम करने वालों की अपेक्षा कम पानी की आवश्यकता पड़ती है। मांसाहारी को शाकाहारी की अपेक्षा अधिक जल की आवश्यकता होती है क्योंकि मांसाहार से शरीर में यूरिकाम्ल (Uric acid) अधिक बनता है जिसको शरीर से निकालने के लिये अधिक जल की आवश्यकता होती है, अन्यथा वातरक्तादि रोग उत्पन्न होने की विशेष सम्भावना रहती है। मनुष्य को प्रतिदिन जितना पानी आवश्यक होता है उस में से २०-३०%

खाद्य द्रव्यों के साथ सेवन किया जाता है, ८% के लगभग आहार परिवर्त्तन में शरीर के भीतर उत्पन्न होता है और शेष जल के रूप में सेवन किया जाता है। खाद्यद्रव्यगत तथा आहार-परिवर्त्तनगत जल के अतिरिक्त जब शरीर में अधिक जल की आवश्यकता होती है तब हमें तृषा मालूम होती है। इसलिये वास्तव में तृषा को भीतरी जल की कमी का निर्देशक समझना चाहिये। (तृषा मानव शरीरान्तगर्त जलीयांश की कमी का द्योतक तथा शरीर के पोषण के अभाव का सूचक (क्षुधा के समान ही) प्रसनिका या तालुक्लोम में उत्तेजना पैदा करने वाली एक स्वाभाविक व्यथा है।) इन पांचो प्रकारों से प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और वसा शरीर में शक्ति तथा धातु वृद्धि करते हैं परन्तु जल और खनिज शक्ति उत्पन्न नहीं करते।

प्राणद (Vitamins)

प्राणियों पर प्रयोग करने तथा मानव स्वास्थ्य का निरीक्षण करने से यह पता चला है कि यदि भोजन में केवल प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, मेद, खनिज और जल ये पांच ही चीजें रहें तो मनुष्य का स्वास्थ्य बिगड़ता है, रोग जन्तुओं के आक्रमण को झेलने की उनकी शक्ति नष्ट हो जाती है तथा विशेष प्रकार के रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। अतः उक्त पांचों चीजों के अतिरिक्त जिन चीजों के यथापरिमाण में रहने से स्वास्थ्य बना रहता है तथा जिनके न होने से या कम होने से स्वास्थ्य को किसी न किसी प्रकार की हानि पहुँचती है उनको प्राणद, जीवनीय द्रव्य या विटा-

मिन कहते हैं। जीवन के लिये भोजन में इनका रहना परमावश्यक है। उक्त पांच द्रव्यों की भांति इन जीवनीय द्रव्यों से शरीर में रासायनिक या भौतिक परिवर्त्तन नहीं होता, तथा इनका सचय भी अधिक नहीं होता। योगवाही (Catalyst) पदार्थ की तौर पर या मोटर में स्पार्क की तौर पर ये शरीर में कार्य करते हैं, ऐसी शास्त्रज्ञों की राय है। यद्यपि मछली का तेल, अण्डा, इत्यादि प्राणिज पदार्थों में ये मुख्य रूप से पाये जाते हैं तथापि इनकी उत्पत्ति केवल वनस्पतियों में ही होती है। इन सबका रासायनिक सगठन भी अभी तक निश्चित नहीं हुआ है। अभी तक ५-६ प्रकार के विटामिनों का पता लगा है तथापि भविष्य में और भी प्रकारों के मिलने की सभावना हो सकती है। विटामिन ए (Vita minA) यह मछली के तेल, अण्डे, मछली, जानवरों के यकृत हृदय आदि तथा दूध, दही, मक्खन, हरी सब्जियों में पाई जाती है। इससे बाल्यावस्था में शरीर की ठीक वृद्धि होती है तथा जीवाणु जन्य रोगों का मुकाबला करने की शक्ति शरीर में सदैव उपस्थित रहती है। इस की कमी या अभाव से श्वसन संस्थान, पाचन सस्थान, मूत्रवह सस्थान में जीवाणु जन्य रोग उत्पन्न होते है, शरीर की वृद्धि ठीक नहीं होती, शरीर कृश होता है, शुष्काक्षिपाक (Xeroptholmini), रतौंधी, इत्यादि नेत्र रोग होते हैं। विटामिन बी (Vitamin B.)—यह जीवनीय द्रव्य विशेषकर गेहूं और चावल के अकुर, चावल की भूसी, मटर, उड़द इत्यादि दालों, खमीर (Yeast) अण्डा, जानवरों के यकृत् हृदय आदि

अङ्ग, माल्टा मूंगफली इत्यादि में पाया जाता है। यह पांच भागों में विभक्त किया गया है। (B^1, B^2, B^3, B^4, B^5) इसमें B^1 नाड़ी संस्थान के पोषण के लिए आवश्यक होता है। इस की कमी से वात वलासक (Beri-Beri) नामक रोग उत्पन्न होता है। B^2 त्वचा के पोषण के लिये आवश्यक होता है। इसकी कमी से पेलाग्रा (Pellagra) नामक रोग होता है। अन्य प्रकार के कार्यों के सम्बन्ध में अभी तक मतभेद चल रहा है। विटामिन 'सी'—यह नारंगी, संतरे, नींबू इत्यादि जम्बीर वर्ग में तथा आमले में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। गोभी, प्याज, टमाटर, गाजर, आलू, शलजम, अंगूर, आम, दूध तथा अंकुरित अनाजों में भी पाया जाता है। केशिकाओं के तथा दांतों के पोषण के लिये इसकी आवश्यकता होती है। इसकी कमी या अभाव से स्कर्वी (Scurvy) नामक रक्तपित्त वर्ग का रोग होता है। इसके अतिरिक्त शरीर की वृद्धि ठीक नहीं होती। दाँत खराब हो जाते हैं। शरीर में रक्तस्राव हुआ करता है तथा शरीर की प्राणशक्ति घट जाती है। विटामिन 'डी'—यह जीवनीय द्रव्य मछली का तेल, दूध, अण्डा, मक्खन, इत्यादि द्रव्यों में पाया जाता है। सूर्य की किरणें इस द्रव्य का महत्व-पूर्ण स्रोत हैं। सूर्य की नील लोहित किरणों (Ultra Violet-Rays) के प्रभाव से प्राणियों तथा मनुष्यों की त्वचा में इस की उत्पत्ति होती है। दुधारू पशुओं को भी यदि धूप में चरने दिया जाय तो उनकी त्वचा में उत्पन्न हो यह दूध में मिल जाता है। यही कारण है कि धूप में चरने फिरने वाली गायों के दूध में यह

अधिक पाया जाता है। वैसे ही शीत ऋतु की तुलना में ग्रीष्म ऋतु के दूध में यह अधिक होता है। इस से आहार के खटिक (Calcium) और फौस्फोरस का सात्म्यीकरण ठीक से होता है। जिस से दांतों तथा हड्डियों का उचित पोषण होता है और रक्त की जमने की शक्ति बनी रहती है। इसके अभाव से अस्थियां अच्छी तरह नहीं बनतीं। वे टेढ़ी कमजोर और भुरभुरी हो जाती हैं। इसी के अभाव से बच्चों को अस्थिवक्रता (Ricket) नामक रोग तथा दाँतों के विकार उत्पन्न होते हैं, और बड़ी उम्र वाली स्त्रियों में आस्टियो मलेसिया (Ostio-malacia) नामक रोग उत्पन्न होता है।

जीवनीय द्रव्य 'ई'

यह जीवनीय द्रव्य सभी बीजों में, उनसे निकाले तेलों में, हरे पत्तों में, गेहूं के अंकुरों में कच्चे मांस दूध, मक्खन में पाया जाता है। इसके अभाव से प्राणियों की जनन शक्ति घट या नष्ट हो जाती है, जिससे बच्चे होते ही नहीं या होकर मर जाते हैं। खाद्य द्रव्यों में किसी २ दिन इन की कमी होने से कुछ नहीं होता, परन्तु लगातार बहुत रोज तक इसकी कमी होने से स्वास्थ बिगड़ जाता है या खास रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इन रोगों को जीवनीय द्रव्या भाव दर्शक(Difficiency diseases) कहते हैं। प्रतिदिन इनका सेवन करने से परिमाण, आयु, शरीर की वृद्धि, जल-वायु, संक्रामक रोगों के लिए अनावृति (Exposure) सूर्य्य प्रकाश में काम करने का प्रमाण इत्यादि बातों पर निर्भर करता

है। तथापि यह कह सकते हैं कि स्त्रियों को गर्भावस्था में बाल्यावस्था में युवावस्था में इनकी पर्याप्त राशि सेवन करनी चाहिए। १९१३ तक इन (Vitamines) जीवनीय द्रव्यों का नाम तक नहीं था। गत ३० वर्षों में इनके संबन्ध में हमें बहुत कुछ ज्ञान हो गया है और भविष्य में भी बहुत कुछ होने की सम्भावना है। यदि मनुष्य खाद्य पेय के व्यवहार में कृत्रिमता छोड़ कर प्रकृति माता की कृपा से प्रत्येक ऋतु में उत्पन्न होने वाले विविध रस युक्त फल फूल शाक सब्जियों तथा अन्य पदार्थों का सेवन करे तो उन्हें जीवनीय द्रव्यों की कमी से उत्पन्न होने वाले रोग कभी नहीं हों, और विविध व्याधियों से डरने का कोई कारण नहीं होवे। जीवनीय द्रव्य (Vitamine) का ज्ञान न होने पर भी इसी व्यापक दृष्टि से वाग्भट ने ऋतुचर्य्या का वर्णन करते हुए लिखा है --

"नित्य सर्वरसाभ्यासः स्वस्वाधिक्यमृतावृतौ"।

पाचकाग्नि

उपर्युक्त पांच प्रकार के भोज्य द्रव्यांशो में से जल और खनिज द्रव्यांशों पर कोई पाचक क्रिया नहीं होती। ये ज्यों के त्यों श्लेष्मलकलाओं से शोषित होकर रक्त में चले जाते हैं; अर्थात् इन द्रव्यों के लिए कोई भी पाचकाग्नि आवश्यक नहीं होती। शेष द्रव्यों के लिए निम्नपाचक रस आवश्यक होते हैं। इन रसों में जो पाचक तत्त्व होते हैं वे पाचकाग्नि का कार्य करते हैं।

१—लाला

यह प्रथम पाचक रस है जो मुख मे भोजन के चर्वण काल में मुख कुहर स्थित ६ लाला ग्रन्थियों से निकलता है। इससे भोजन गीला और मुलायम हो जाता है। इस के अतिरिक्त लाला मे टाइलीन (Ptyline) नामक एक विशेष पाचक पदार्थ होता है जो भोजन के श्वेतसार (Starch) कार्बोहाइड्रेट को शर्करा मे परिवर्तित कर देता है। प्रोटीन और मेद पर इसका कोई असर नहीं होता।

२—आमाशयिक रस

थूक से मिल कर भोजन अन्न प्रणाली से हो कर आमाशय में पहुचता है। वहां उस पर आमाशयिक रसका कार्य्य होता है। यह दूसरा पाचक रस (Gastric juice) है इस मे हाइड्रोक्लोरिकएसिड(Hydrochloric acid)लवणाम्ल, पेप्सीन और "रेनेट" नामक विशेष पदार्थ होता है। इनमे से पेप्सीन' प्रोटीनों को विश्लेषित करके उनसे नये पदार्थ तैयार करता है। इसके कार्य के लिए अम्ल का होना परमावश्यक है। रनेटे अम्ल की सहायता से दूध को दधि मे परिणत कर देता है। आमाशयि काम्ल से इक्षुशर्करा द्राक्षाशकरा मे रूपान्तर हो जाता है शरीर की गर्मी से पिघल कर मेद द्रव रूप मे आ जाता है तथा वसा की सेलों, का आवरण पेप्सीन की क्रिया से घुल कर मेद के बिन्दु स्वतंत्र हो जाते हैं। तथापि आमाशयिक रस की कोई रासायनिक क्रिया मेद पर नहीं होती।

३—पित्त (Bile)

वसा और तैल के पचन और शोषण में पित्त बड़ी आवश्यक चीज़ है। पित्त के कारण अग्न्याशय-रस की वसा-विश्लेषण शक्ति विशेष कर बढ़ जाती है। जब पित्त कम बनता है तथा किसी कारण वश आँत में नहीं पहुँच सकता (जसे कि कामला रोग में) तब वसा का ठीक पचन न होकर वह विष्ठा द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है।

४—क्षुद्रान्त्र रस (Succus intericus)

यह चौथा पाचक रस है। इस में इरेप्सिन (Erepsin) नामक प्रोटीन विश्लेषक होता है। यह उन पदार्थों का विश्लेषण करता है जो आमाशयिक पेप्सीन के कारण प्रोटीनों के विश्लेषण से बने हैं। दूसरा शर्करा पारिवर्तक (Invertase) होता है जो सब शर्कराओं को द्राक्षा शर्करा में परिवर्त्तित करता है।

५—अग्न्याशय रस

यह पांचवां पाचक रस है। इस में ट्रीप्सीन नामक विश्लेषक, लायपेस नामक वसा विश्लेषक और एमायलेस नामक श्वेतसार विश्लेषक होता है। ये विशेष पाचक पदार्थ आहारगत अपने २ अवयवों पर कार्य्य करते हैं। संक्षेप में—प्रोटीन पर आमाशय रस का पेप्सिन अग्न्याशय रस का ट्रीप्सीन और क्षुद्रान्त्र रस का इरेप्सिन कार्य्य करता है। वसा पर पित्त और अग्न्याशय रस का लायपेस

(Lipase) कार्य करता है। कार्बोहाइड्रेट पर लाला का टायलीन, अग्न्याशय रस का अमायलेस और क्षुद्रान्त्र रस का शर्करा परिवर्त्तक (Inaertvse) कार्य्य करता है। खनिज को जल के पचन में किसी पाचक रस की आवश्यकता नहीं पड़ती। वे ज्यों के त्यों शोषित होकर रक्त में चले जाते हैं। पञ्चतत्वात्मक आहार पर इन पाँच पाचक रसों का कार्य्य होने पर जो असात्म्य और अपचा रह जाता है वह विष्ठा के स्वरूप में शरीर से बाहर निकल जाता है। सारभाग अंत्र की लसिका वाहिनियों (Lactials) और शिराओं द्वारा हृदय में से होकर समस्त शरीर में फैलता है और धात्वग्नियों (Intercellular Engymes) द्वारा परिपाचित होकर शरीर का पोषण करता है पोषण में क्षति की पूर्त्ति, वृद्धि, और रक्षा इनका समावेश होता है और इस को 'एनाबोलिज्म' कहते हैं। शरीर में विविध कार्य्य के कारण जो त्याज्य या मल रूप पदार्थ बनते हैं वे फिर रक्त में मिल कर वृक्क द्वारा मूत्र से, त्वचा द्वारा स्वेद से और फुफ्फुस द्वारा पश्वास से शरीर से बाहर उत्सर्जित होते हैं। इस विघटनात्मक कार्य को केटाबोलिज्म कहते हैं। यहीं आहार गति का संक्षेप में पाश्चात्य शरीर कार्य्य विज्ञान के अनुसार वर्णन है।

दशम अध्याय

(आहार परिपचन)

आहार परिशोषण के लिये आहार परिपचन की आवश्यकता है। यह पाठकों को मालूम हो चुका है कि चैतन्य सृष्टि की वृद्धि भोजन (आहार) के समीकरण द्वारा होती है। उनको भोजन के लिये कतिपय वस्तुओं की आवश्यकता होती है, अतः इन वस्तुओं को वे ग्रहण करते हैं और उनका पाचन होता है। यह पदार्थ रासायनिक क्रियाओं द्वारा सूक्ष्मकणों में विभाजित हो जाते हैं। शरीर इनको रस के रूप में ग्रहण करता है और उस रस द्वारा सारे अङ्गों की पुष्टि होती है। जिसका स्वरूप हमारे भोजन में बिल्कुल भिन्न होता है। इस भोजन को ग्रहण करने के पश्चात् शरीरांगों के धातु (Cell) बनते हैं जिनसे शरीर की वृद्धि होती है। इस प्रकार खाए हुए भोजन का पहले समीकरण होता है और समीकरण के पश्चात शरीर की वृद्धि होती है।

मनुष्य को शरीर की वृद्धि के लिये, उसके पोषण के लिये और जो कार्य वह अहर्निश करता रहता है उसको कायम रखने

के लिये पर्याप्त शक्ति प्राप्त करने के लिये भोजन की आवश्यकता पड़ती है। जब तक माता के गर्भ में बच्चा रहता है वह अपने शरीर के पोषण के लिये सारा भोजन माता के रक्त द्वारा प्राप्त करता है। माता का रक्त गर्भाशय के अपरा (Placenta) द्वारा बच्चे के शरीर में भोजन पहुँचाता है।[1] किन्तु बच्चा जब गर्भ से बाहर आ जाता है तब उसको स्वयं भोजन ग्रहण करना पड़ता है। अपनी आयु के कुछ मास तक माता का दूध ही बच्चे के शरीर का सब आवश्यक वस्तुयें प्रदान करता है। माता के दूध में बच्चे के शरीर की वृद्धि के लिये सब आवश्यक उपादान उत्तम रूपेण उपस्थित रहते हैं। मातृदुग्ध से उत्तम संसार में अभी तक बच्चों के लिये उपयोगी पदार्थ का आविष्कार नहीं हो सका है। बच्चे की पाचनशक्ति बहुत कमजोर होती है अतः प्रकृति ने उसके लिये ऐसा प्रबन्ध किया है कि ठीक वही वस्तु जो उसके शरीर के लिये आवश्यक है उसको ऐसे रूप में मिले कि वह उनका पूर्णतया समीकरण कर सके। केवल माता का दूध ही ऐसी वस्तु है जिसमें बच्चे के लिये सारे आवश्यक उपादान उचित और शीघ्र पचने वाले स्वरूप में उपस्थित है।[2]

---

१. "अपरा चास्य मातुः प्रसक्ता हृदये, मातृहृदयं ह्यस्य तामपरामभिसंप्लवते शिराभिः स्पन्दमानाभिः, स तस्य रसः बलवर्णकरः सम्पद्यते, स च सर्वरसवानाहारः स्त्रिया ह्यापन्नगर्भायास्त्रिधा रसः प्रतिपद्यते स्वशरीरपुष्टये, स्तन्याय, गर्भवृद्धये च ॥" (चरक शा० ६)

२. "जीवनं बृंहणं सात्म्यं स्नेहनं मानुषं पयः" (च० सू० २७)

ज्यों-ज्यों बच्चे की आयु बढ़ती जाती है त्यों-त्यों उसके शरीर की आवश्यकतायें भी बढ़ती जाती हैं। उसकी पाचनशक्ति भी बढ़ती जाती है और इस कारण उसको कई प्रकार के भोजन की आवश्यकता होती है। दांत निकलने से यह विदित हो जाता है कि बच्चा अब मधुरप्राय (Carbohydrate अन्न) पचा सकता है और उसको इस वस्तु की आवश्यकता है। शनैः २ उसको सब प्रकार के अन्नों की, जिसको मानव जाति ने अब तक खोजा है, आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। वह भोजन को अपने दांतों द्वारा चबाना सीखता है, इससे उसके दांत भी दृढ़ होने लगते हैं और मुख के रस (Saliva) लालस्राव आदि भी होने या बनने लगते हैं जो मधुरप्राय अन्नको पचाने के लिये आवश्यक है।

भोजन को पचाने में सर्वप्रथम सहायक दांत होते हैं जो भुक्तद्रव्य को छोटे २ कणों में विभाजित कर देते हैं जिससे पाचक रसों की उन पर भलीभांति क्रिया होती है। दांतों की बनावट इस प्रकार की है कि ऊपर और नीचे के दांत एक चक्की की भांति काम करते हैं। दांतों द्वारा चबाया हुआ भोजन अन्न प्रणाली से होकर आमाशय में पहुंचता है। वहां पाचन होता है, इसके पश्चात् भोजन आंतों में जाता है। क्षुद्रआंत्रियों में भोजन का पाचन समाप्तप्राय होता है और शोषण प्रारम्भ होता है। इसके बाद बचा हुआ अंश बृहदन्त्री में आता है और अन्त में मल के रूप में अवशिष्टांश मलद्वार द्वारा बाहर निकल जाता है। इन क्रियाओं का वर्णन चरक चि० ग्रहणीरोग में कतिपय श्लोकों में है जो पहले दिया जा चुका है।

पचन प्रणाली

यह पाचन प्रणाली बहुत लम्बी और चक्रव्यूह के समान रहस्यमय है। यहां जो रासायनिक क्रियायें होती हैं वे भी अति रहस्यमय हैं। भोजन को पचाने के लिये यहां ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि कोई भोजन यहां से बच कर न निकल जाय। इसके लिये अर्वाचीन विज्ञानानुसार पांच पाचक रस बताये गये हैं जो सर्व प्रकार के भोजनों को गला कर द्रव रूप कर देते हैं। ये पांच रस शरीर के पांच मुख्य कारखानों में निर्मित होते हैं यथा— मुख, आमाशय, पक्वाशय, क्षुद्रान्त्र और यकृत्। उक्त द्रव के शोषण के लिये २२ फोट लम्बी आंतों के भीतर ७०० फीट कला को इस प्रकार लगाया गया है कि वह थोड़े से स्थान में आ जाय और द्रवभोजन का पूर्ण शोषण कर ले।

सब से पहले भोजन मुख में आता है। वहां पर भोजन प्रथम चबाया जाता है और उसमें थूक (लाला स्राव या कफ) मिलता है। आगे के प्रकरण से पता चलेगा कि थूक त्याज्य वस्तुओं में नहीं है। यह एक पाचक रस है। मुंह में चारों तरफ कुछ ग्रन्थियां होती हैं जो इस रस को बनाती है। इस प्रकार मुंह में चबाये हुए भोजन और थूक से एक ग्रास तैयार होता है जो अन्न प्रणाली से होकर आमाशय में पहुँचता है। अन्न प्रणाली लगभग १५ इञ्च लम्बी एक मांस नलिका है जो भोजन को मुख से आमाशय तक पहुंचाने में मार्ग का कार्य करती है। जब मुख से अन्न जाता है तो वह खुलती चली जाती है।

लाला (Saliva)--

मुख का थूक या लाला निकृष्ट वस्तु नहीं। वह एक रासायनिक वस्तु है जिसकी भोजन पर विशेष क्रिया होती है। इसमें एक तत्त्व होता है जिसको टायलीन (Ptylin) कहते हैं। इसका यह गुण है कि वह भोजन के मधुर प्राय अंश (Starch) जो पानी में उबाला हुआ है या गरम किया हुआ है दो वस्तुओं में विभाजित कर देना है जिसको डेक्स्ट्रीन (Dextrin) और माल्टोज (Maltose) कहते हैं। माल्टोज एक प्रकार की शर्करा होती है। डेक्स्ट्रीन का सगठन माल्टोज से भिन्न होता है किन्तु लाला की अधिक क्रिया होने से वह भी शर्करा के रूप में परिवर्तित हो जाता है लाला की रासायनिक क्रिया के अतिरिक्त कुछ भौतिक क्रिया भी होती है। वह मुख को गला को गीली रखती है और भोजन को भी क्लिन्न कर देती है। यदि चबाया भोजन क्लिन्न न हुआ हो तो उसका निगलना कठिन हो जाय। यह लाला मुख्यतया ६ ग्रन्थियों से बनती है जो मुख के चारों ओर स्थित है उनमें से विशेष नलिकायें आकर मुख में इतस्ततः खुलती हैं उनके द्वारा थूक मुंह में आता है।

उक्त ग्रन्थियों का नाड़ी द्वारा (Nerves) मस्तिष्क से सम्बन्ध रहता है। जब नाड़ियों में उत्तेजना पैदा होती है तो ये ग्रन्थियां तेजी से काम करने लगती हैं और थूक खूब बनने

१. आयुर्वेद में आंत्र का प्रमाण भिन्न है--"सार्धत्रिव्यामान्यंत्राणि पुंसां स्त्रीणामर्धव्यामहीनानि" (२४॥ और २१ फुट) (सु. शा० ५)

लगता है। यह एक साधारण अनुभव है कि उत्तम स्वादिष्ट भोजन को देख कर मुख थूक से भर जाता है वह थूक या पानी रासायनिक पदार्थ लाता है। स्वादिष्ट भोजन को देखकर या उसके गन्ध से ये नाडिया उत्तेजित हो जाती है और ग्रन्थियो का कार्य तेजी से होने लगता है। लाला मे क्षार रहता है। इस कारण अम्ल की उपस्थिति से उसका नाश हो जाता है। आमाशय के रस मे अम्ल रहता है इस कारण लाला मिश्रित भोजन जो अमाशय मे पहुँचता है उस लाला की क्रिया बहुत कुछ नष्ट हो गई होती है। कुछ लोगो का मत है कि आमाशय मे भी लाल की क्रिया कुछ काल तक होती रहती है, क्योंकि अमाशय रस की क्रिया सब से पहले तो भोजन के ग्रास मे बहि भाग पर होती है, अब भीतर के भाग मे मिला हुआ लाला अपना कार्य्य कुछ काल तक करता रहता है।

अमाशय रस (Gastric Juice)

मुख मे पचा हुआ भोजन जब आमाशय मे पहुँचता है तो उस पर आमाशय विकास की क्रिया प्रारम्भ होती है। इस रस मे क्रिया करनेवाले दो प्रधान तत्व होते है। एक एक पेप्सिन (Pepsin) और दूसरा लवणाम्ल (Hydrochloric Acid)। इनके अतिरिक्त सोडियम, पोटाशियम, कैलशियम लौह इत्यादि के कुछ लवण भी रहते है। किन्तु पाचन करने वाले मुख्य वस्तु पेप्सीन और लवणाम्ल ही है। ये दोनों वस्तुए

आमाशय की भित्तियों में स्थित ग्रन्थियों से निकलती हैं; परन्तु दोनों को बनाने वाली ग्रन्थियां भिन्न २ हैं अर्थात् भिन्न सेलों द्वारा ये भिन्न २ वस्तुएं तैयार होती हैं। रक्त, जिससे ये ग्रन्थियां इस आम्लिक रस को तैयार करती हैं, क्षारीय होता है; किन्तु आमाशय के सेल उसी रक्त से यह अम्लीय वस्तु तैयार करते हैं। बहुत लोग इस क्रिया को रक्त के कुछ लवण पर निर्भर बताते हैं; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह आमाशय की ग्रन्थियों की विशेषता है जिससे क्षारीय रस से यह अम्लीय रस तैयार हो जाता है।

पेप्सीन के अतिरिक्त अन्य सब पाचक रसों की क्रिया के लिये क्षार की आवश्यकता है। थूक का टाइलिन क्षार के साथ मिल कर कार्य्य करता है। अग्न्याशय रस में भी क्षार होता है। आन्त्रिक रस की क्रिया भी क्षार के बिना नहीं होती। केवल आमाशय के पेप्सीन को ही अम्ल की आवश्यकता होती है और वह भी लवणाम्ल की। यदि इसके स्थान में कोई दूसरा अम्ल हो तो उसकी उतनी उत्तम क्रिया नहीं होती आमाशयिक रस की सबसे मुख्य क्रिया प्रोटीन पर होती है। प्रोटीन का पाचन आमाशय में होता है। यह क्रिया पेप्सीन और लवणाम्ल की होती है। ये दोनों वस्तुएं मिल कर प्रोटीन को पका देती हैं। पचाने का अर्थ यह है कि उनको सूक्ष्म टुकड़ों में विभाजित कर इस योग्य बना देती हैं कि वे आँतों में ग्रहण किए जा सकें। यहां एक रासायनिक क्रिया होती है जो शरीर के बाहर भी परीक्षण-नलिका में की जा सकती है। अर्वाचीन वैज्ञानिकों ने

इन सब वस्तुओं का जिनमें प्रोटीन का परिवर्तन होता है उनकी रासायनिक क्रियाओं की सब अवस्थाओं का पता लगता है। उनके विचारों के अनुसार उनके परिवर्तन के निम्न क्रम होते हैं:—

"प्रोटीन से—अम्लिक मेटा प्रोटीन—प्रोटीओज—पेप्टोन"

कुछ विद्वानों का कहना है कि यदि प्रोटीन पर यह क्रिया कुछ अधिक काल तक होती रहे तो प्रोटीन भी एमायनो एसिड (Aminoacid) में परिवर्तित हो जाय, जो प्रोटीन की अन्तिम अवस्था है, जिस रूप में वह शरीर द्वारा ग्रहण की जाती है। इस क्रिया के अतिरिक्त वसा पर भी आमाशयिक रस की कुछ क्रिया होती है। इसका कारण लायपेज (Lipase) है जो इस रस में उपस्थित रहती है। इस क्रिया से वसा, वसाम्ल और ग्लीसरीन के रूप में भंजित हो जाती है।

आमाशयिक रस के गुण

इसकी पाँच क्रियायें होती हैं। (१) सर्व प्रथम यह रोगों के जीवाणुओं को नष्ट करता है। भोजन के पदार्थों के साथ बहुधा जो रोगों के जीवाणु आमाशय में पहुँच जाते हैं उन्हें यह मार डालता है। इनको नाश करनेवाला रसगत लवणाम्ल होता है। (२) दूसरी क्रिया शर्करा पर होती है। रासायन विज्ञान के अनुसार साधारण शर्करा जो गन्ने से बनती है दो भाँति की शर्करा से बनी हुई होती है जिनमें से एक का

कार्य्य प्रकाश की रश्मियों को दाहिनी ओर घुमाना और दूसरे का कार्य्य बांई ओर घुमाना है। इन दोनों शर्कराओं के मिलने से, जिनको डेक्स्ट्रोज़ और लेव्युलोज़ (Levulose) कहते हैं, शर्करा बन जाती है। आमाशय रस की क्रिया से शर्करा उपरोक्त दोनों अवयवों में विभक्त हो जाती है। (३) इसकी तीसरी क्रिया यह होती है कि यह दूध को फाड़ देती है। इसका कारण रसगत रेनीन (Renin) नामक वस्तु है। आमाशय रस की तीसरी और चौथी का वर्णन पहले भी किया जा चुका है। (४) वसा लायपेज़ के कारण वसाम्ल और ग्लिसरीन में टूट जाती है। (५) पेप्सीन और लवणाम्ल से प्रोटीन का पाचन होता है। इन सब में प्रोटीन की भंजनक्रिया सर्व प्रधान है। यह ध्यान रखना चाहिये कि लाला ग्रन्थियों के समान ही आमाशयिक ग्रन्थियां भी नाड़ियों से सम्बन्ध रखती हैं। एतदर्थ अनेक कौतूहल पूर्ण परीक्षण भी हुए हैं।

अग्न्याशय रस (Pancreatic Juice)

यह रस भोजन को परिपक्व करता है। यह दूसरे रसों की अपेक्षा तीव्र होता है। लाला ग्रन्थियों के रसगत टायलीन उबाले हुए श्वेतसार पर कार्य्य करता है, परन्तु यह रस बिना उबाले हुए श्वेतसार पर कार्य्य करता है। अर्थात उसे माल्टोज़ में परिवर्त्तित कर देता है। इस कार्य्य को करने वाली वस्तु का नाम एमायलेज़ (Amylase) है। जिस प्रकार आमाशयिक रस का लायपेज़ वसा के कणों पर क्रिया करता है उसी प्रकार

इस रस से भी वसा के कण ग्लिसरीन और वसाम्ल में टूट जाते हैं। इस क्रिया में पित्त के लवणों से बहुत कुछ सहायता मिलती है। वसाम्ल वहां पर उपस्थित क्षारीय वस्तु से मिल जाते हैं और दोनों के मिलने से साबुन बन जाता है (Saponification)। यह साबुन वसा को घुलाने का कार्य्य करता है।

प्रोटीन पर भी इस रस की क्रिया बहुत ठीक और गहरी होती है। इस रस में प्रोटीन भंजन की शक्ति आमाशयिक रस से अधिक है। यह देखा जा चुका है कि आमाशयिक रस का पेप्सीन-लवणाम्ल (Pepso-Hydrochloric acid) प्रोटीन का भंजन करके पेप्टोन बना देता है। कुछ का मत है कि यह इससे भी अधिक कार्य्य करता है पर अधिक विद्वान् इससे सहमत नहीं हैं। परन्तु यह निर्विवाद है कि अग्न्याशय रस प्रोटीन का पहले पेप्टोन में भंजन करता है। इसके पश्चात् यह पेप्टोन पोली पेप्टाइड (Poly Peptide) के रूप में परिवर्त्तित होता है और अन्त में एमायनोअम्ल (Amino Acid) बन जाता है। यह प्रोटीन का अन्तिम स्वरूप है। इस प्रकार भोजन के सर्वावयवों पर इसकी क्रिया अन्य रसों की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है।

आमाशय में पहुंचने पर दूध फट जाता है और इससे छेना और पानी अलग हो जाता है। अग्न्याशय रस में भी रेनीन होता है जिससे दूध शीघ्र ही फट जाता है। दूध फटने की क्रिया तो आमाशय में ही पूरी हो जाती है। पक्वाशय में

पहुंचने तक दूध का कोई अंश साधारण दशा में नहीं रहता। आग्नेय रस का वह भाग जो प्रोटीन पर क्रिया करता है ट्रीप्सीन (Trypsin) कहलाता है। जिस भांति आमाशय रस में पेप्सीन और मौखिक रस में टायलीन होता है उसी प्रकार इस रस में ट्रीप्सीन होता है। इसके अतिरिक्त वसा और श्वेतसार पर क्रिया करने वाला लायपेज और एमायलेज भी इस रस में रहते हैं। यद्यपि आग्नेय रस तीव्र रस है और उसकी क्रिया भी बहुत विशेष है, फिर भी आमाशय और मौखिक रस की अवहेलना हम नहीं कर सकते। क्योंकि पाचन क्रिया का आरम्भ करने वाले ये ही रस हैं, और इन रसों की क्रिया से दूसरे रस को पर्याप्त सहायता मिलती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि मुख में जब पाचन होता है तो उससे आमाशय उत्तेजित होता है और रस बनाता है। इसी प्रकार आमाशय को पाचन अग्न्याशय को उत्तेजित करता है, जिससे वह रस बनाता है। जिस समय आमाशय का पका हुआ भोजन पक्वाशय की भित्तियों से गुजरता है उस समय अग्न्याशय को उत्तेजना मिलती है। इस उत्तेजक वस्तु को पता लगाने के लिए अनेक प्रयोग हुए और अन्त में यह पता लगा कि एक रासायनिक वस्तु जिसको अंग्रेजी में सिक्रीटी (Sicretin) कहते हैं, पक्वाशय के रक्त से अग्न्याशय की सेलों को जाती है और वहां रस की उत्पत्ति आरम्भ कर देती है। पक्वाशय में भोजन में पित्त भी मिल जाता है, इस स्थान में दोनों ओर से रस आता है, पित्ताशय से पित्त और अग्न्याशय से अग्निरस। पित्त

का पाचन क्रिया में कोई विशेष भाग नहीं होता। उसमें कई गुण होते हैं, किन्तु पाचन में उसकी इतनी ही क्रिया होती है कि यह आग्नेय रस को वसा को पचाने मे सहायता करता है। इस प्रकार पाचनयन्त्र के भोजन के सब पदार्थ पचाए जाते हैं। श्वेतसार, वसा, प्रोटीन, सबका भजन होता है कोई शेष नहीं रहता। किन्तु प्रकृति किसी काम को अपूर्ण रहने का अवसर नहीं देती। कदाचित् कोई चोर निकल भागे तो उसके लिए एक और रस पुलिस के समान बैठा रखा है। वह है आन्त्रिक रस।

आंत्रिक रस

आमाशय के नीचे के सिरे से ग्रहणी (Deodenum) और उसके बाद चुद्रांत्र आरम्भ होती हैं। ग्रहणी और चुद्रांत्र के बीच कोई द्वार नहीं है, इस कारण ग्रहणी का पचा हुआ भोजन चुद्र अन्त्रों में जाता है। ये अन्त्रियां पाँचवां पाचक रस बनाती है जिसको पाश्चात्य विद्वान सक्स एन्ट्रीकस कहते हैं। कुछ दिन पहले तक 'इसकी क्रिया केवल शर्कराओं को परिवर्त्तित करने की है' इससे अधिक मालूम नहीं था। परन्तु सबसे पहले पेवले ने यह मालूम किया कि अग्निरस की जो प्रोटीन पर इतनी तीव्र क्रिया होती है उसका मुख्य कारण यही रस है। जब अग्नि-रस में यह रस मिल जाता है तो उसमें प्रोटीन को पचाने की शक्ति आ जाती है। इसके बिना वह प्रोटीन पर कुछ क्रिया नहीं कर सकती आन्त्रिक रस की भी स्वयं प्रोटीन पर कोई क्रिया

नहीं होती। दोनों रसों के मिलने पर ही प्रोटीन को पचानेवाला एक बड़ा शक्तिशाली रस तैयार हो जाता है।

इन बातों से यह पता चलता है कि आंत्रिक रस में कोई ऐसी वस्तु है जो अग्नि रस को क्रियाशील कर देती है। पाश्चात्य विद्वानों ने इसका नाम एन्टोरो-किनेज (Entero-Kinase) रखा है । वे कहते हैं कि अग्निरस में तीन वस्तुएं होती हैं— (१) प्रो-एमायलेज (Pro-Amylase) (२) प्रो-लीपेज (Pro-lepase) और (३) प्रो-ट्रिप्सीनोजन (Pro-trypsinogen) । जब सीक्रीटीन (उद्रेक) रक्त द्वारा आमाशय से पक्वाशय में पहुँचता है तो वह इन तीनों वस्तुओं को अपने पूर्व भाग से छुड़ा कर लायपेज, एमायलेज और ट्रीप्सीनोजन के रूप में ले आती हैं। प्रथम दो वस्तुएं तो काम करने के स्वरूप में आ जाती हैं। तीसरी ट्रीप्सीनोजन अभी तक अपनी क्रिया नहीं कर सकती। जिस समय उनके साथ आंत्रिकरस मिलता है, तो ट्रीप्सीनोजन ट्रीप्सीन के रूप में चली आती है और इस रूप में आते ही अग्नि रस की क्रिया प्रोटीन पर प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार आन्त्रिक रस अग्निरस को प्रोटीन भंजन शक्ति प्रदान करता है। आन्त्रिक रस स्वयं प्रोटीन पर पूर्ण रूपेण क्रिया नहीं कर सकता, किन्तु प्रोटीयोज पर क्रिया कर सकता है। अंडे की सफेदी वह नहीं पचा सकता किन्तु दूध के कैसीनोजन (Casinogen) को पचा सकता है। इन सब रसों की क्रिया में पचा हुआ भोजन २२ फीट लम्बी आंतो में होकर बहता है। उस समय भोजन की तरल अवस्था होती है जिसमें कुछ कण कहीं २ मिलते हैं।

इस प्रकार हमें प्रतीत होता है कि पाचन क्रिया शरीर के अन्दर एक बड़ी रहस्यमय वस्तु है। इसमें बाह्य रासायनिक प्रयोग शालाओं में होने वाली क्रियाओं से कहीं अधिक गूढ़ (रहस्यमय) रासायनिक क्रियायें होती हैं। जितनी भी पाचन में क्रियाएँ होती है वे सब परस्पर किसी न किसी प्रकार सम्बद्ध हैं। मुख में जब क्रिया होती है तो उनसे आमाशय को उत्तेजना मिलती है और आमाशय की क्रिया से अर्थात् अम्ल मिला हुआ भोजन जब पच्यमानाशय (ग्रहणी) में पहुँचता है तो अग्न्याशय उत्तेजित होता है, जिससे अग्निरस तैयार होता है। इन अग्नि रस में जब तक आन्त्रिक रस नहीं मिलता तब तक प्रोटीन को पचाने की क्षमता इसमें नहीं होती। आन्त्रिक रस के मिलते ही अग्नि रस में ट्रीप्सीन उत्पन्न हो जाता है। ये दोनों ट्रीप्सीन और आँत्रिक रस का एरेप्सीन (Erepsin), मिल कर प्रोटीन को द्रवीभूत कर देते है, जिससे शरीर उन वस्तुओं को सहज में ग्रहण कर लेता है। इन सब क्रियाओं का परिणाम यह होता है कि भोजन के अवयव अपने अत्यन्त सूक्ष्म-रूप में आजाते है। प्रोटीन-एमायनो एसिड बन जाता है, श्वेतसार (Starch) शर्करा में परिणत हो जाता है और वसा ग्लीसरीन और वसाम्ल में परिवर्तित हो जाता है। इस स्वरूप मे शरीर इन्हें ग्रहण कर लेता है और अपने काममें लाता है।

पाचन में सहायक जीवाणु

जीवाणु के नाम से आज सभी परिचित हैं। यद्यपि जीवाणु का रोगोत्पादकत्व प्रसिद्ध है तथापि कुछ ऐसे भी जीवाणु हैं जो शरीर की रक्षा तथा पाचन में सहायक होते हैं। जैसे दूध

को दधि में परिवर्तित करने वाले जीवाणु तथा शर्करा से मद्य उत्पन्न करने वाले जीवाणु। इस प्रकार इन जीवाणुओं से अनेक लाभप्रद कार्य्य भी होते हैं। मुख का रस क्षारीय होता है अतः वहां जीवाणु रह सकते हैं परन्तु आमाशय का रस अम्ल होता है अतः वहां जीवाणुओं का नाश हो जाता है। पुनः आँत्र के रस क्षारीय होते हैं अतः सारा आंत्र इन जीवाणुओं से भरा पड़ा है। इनमें से बहुत से जीवाणु ऐसे होते हैं जो ठीक पाचक रसों की भांति क्रिया करते हैं। कोई जीवाणु श्वेतसार से शर्करा बनाते हैं, कोई प्रोटीन का भंजन करते हैं, कुछ वसा को पचाते हैं। आँतों में एक प्रकार के ऐसे जीवाणु होते हैं जो दुग्धाम्ल बनाते हैं। दधि को बनाने वाला यही जीवाणु है। यह दूसरे रोगोत्पादक जीवाणु को बढ़ने से रोकता है और उसकी वृद्धि को कम कर देता है। यही कारण है कि आँत की बीमारियों में दधि का व्यवहार अधिक करते हैं। रूस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक मेचानिकाफ का विचार है कि जरा-व्याधि, बृहद् अंत्रियां के कारण मुख्यतः और लघु अंत्रियों के कारण साधारणतः उत्पन्न होती है। उसके मतानुसार अंत्रियां विषैले पदार्थों का संचय कर उनके द्वारा सारे रक्त को विषाक्त कर देती है और शारीरिक सहन शक्ति को घटा देती है। उसका कहना है कि यदि दधि का उपयुक्त मात्रा से प्रयोग किया जाय तो वह शारीरिक विष न फैलने देगा, क्योंकि दधि के जीवाणु विषोत्पादक जीवाणुओं का नाश कर देंगे और इस प्रकार मनुष्य का जीवन दीर्घ हो जायगा। जहां २ दधि का उपयुक्त मात्रा से उपयोग होता है वहां के मनुष्य दीर्घजीवी होते हैं।

ऊपर कही हुई क्रियाओं द्वारा भोजन का रूप बदल जाता है। इस परिवर्तन का प्रयोग यही है कि शरीर भोजन को ग्रहण कर सके। यह कार्य अँत्रियों का है। क्षुद्रांत्रियों द्वारा भोजन का शोषण होता है।

एकादश अध्याय

(आहार परिशोषण)

भोजन का परिपचन परिशोषण (Absorption) के लिये होता है। भोजन का परिशोषण धातु सात्म्यीकरण के लिये (Assimilation) होता है। शारीरिक उपादानों का निर्माण, भोजन से जो रस तैयार होता है उससे होता है। रसादि धातु के अणु अन्न रस में प्रवाहित होते रहते हैं और आवश्यकतानुसार शारीरिक उपादानों के कमी की पूर्ति करते रहते हैं। भुक्तान्न रस (षड् रस) अपाचित त्रिधात्वीय स्रावों को उपचित करता है और उपचित त्रिधात्वीय स्राव शरीरोपादानभूत सप्त धातुओं को 'केदार कुल्या न्याय' से पोषण पहुंचाता रहता है और सप्त धातु उक्त आगत पोषण को "खले कपोत न्याय" से ग्रहण करता है।

रस निर्माण क्रिया (Mechanism of Rasa Transformation)-इस निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद कि उक्त तीन

१ (च० सू० २८-३-टीका चक्र०)

अवस्था पाकों द्वारा भुक्तान्न क्रमशः मधुर भाव अम्ल भाव और कटु भाव को प्राप्त होता है यह विचारना पड़ता है कि यह क्रिया किस प्रकार सम्पन्न होती है। यह पहले कहा जा चुका है कि षड्‌रस भोजन तथा त्रिधातु दोनों ही पांचभौतिक हैं, दोनों में पञ्च महाभूत तर तमांश से विद्यमान हैं। जिस प्रकार कफ का अपना पाञ्चभौतिक स्वरूप है उसी प्रकार पित्त और वायु का भी। भुक्तान्न का भी उसी प्रकार अपना विशिष्ट पाञ्चभौतिक स्वरूप है। जब प्रथम अवस्था में श्लैष्मिक स्राव भुक्तान्न (षड्‌रस) के सम्पर्क में आता है तो वह उस पर आक्रमण करता है और उनका भिन्न संघात कर उन्हें मृदु और क्लिन्न बना देता है[1] और उनका सब रूपान्तर हो जाता है। इन स्रावों में जीवित शरीर के उपादान होने के कारण एक प्रकार का क्रियाशील गुण Active Principle) होता है जिसका आयुर्वेद ने अग्नि नाम से उल्लेख किया है भेल संहिता शारीर अध्याय ४ में इनका स्पष्ट वर्णन मिलता है। इस प्रकार भुक्तान्न में रासायनिक परिवर्त्तन प्रथम अवस्था में श्लेष्माग्नि के कारण ही होता है। इस परिवर्त्तन को आयुर्वेद ने रसान्तर कहा है। उक्त दो क्रियाओं के बाद हम एक तीसरी क्रिया का सहज ही अनुमान कर सकते हैं अर्थात् भुक्तान्न के रूपान्तर तथा रसान्तर होने के बाद उक्त भुक्तान्न पूर्ण रूपेण एक दूसरे द्रव्य में परिवर्तित हुआ प्रतीत होता है। यह इसका द्रव्यान्तर है। यह द्रव्यान्तर अपने समान धर्म वाले द्रव्य

---

१. 'तद्‌द्रवैर्भिन्नसंघं स स्नेहेन मृदुतां गतम्" (चरक)

के साथ मिल कर उसमें वृद्धि उत्पन्न कर देता है अर्थात् उसे उपचित कर देता है। आयुर्वेद में यह क्रिया 'उदीरण', 'उपचित ऊर्जित' तथा सात्म्यीभवन आदि शब्दों से व्यक्त किया गया है। इस प्रकार यह परिवर्त्तन क्रिया मुख से प्रारम्भ होकर दूसरी अवस्था पाक स्थान से होती हुई तृतीयावस्था पाक के स्थान तक पहुंचती है और इसका परिवर्त्तन समाप्त होता है। अर्थात् भुक्तान्न (षड्‌ रस) त्रिधातु रस में परिवर्त्तित होता है। जिसे षड् रस परिणाम कहते हैं।

अर्वाचीन चिकित्साविज्ञान इसी क्रिया को अपने ढंग से और विस्तारपूर्वक बतलाता है जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। आहार रस का परिशोषण मुख-कुहर में प्रायः नहीं होता, होता भी है तो इतनी न्यून मात्रा में कि वह नगण्य-सा रहता है आमाशय में किञ्चिन्मात्र होता है। सुरा प्रभृति तीक्ष्ण, विकाशी तथा व्यवायी पदार्थों का परिशोषण आमाशय में कुछ होता है। लवण भी यदि घनमात्रा में न हो, तो प्रायः परिशोषित नहीं होता। शर्करा भी कठिनता से ही परिशोषित होती है। वास्तविक तथा प्रधान परिशोषण क्षुद्रान्त्र से प्रारम्भ होता है। क्षुद्रान्त्रों के अग्रभाग (ग्रहणी) से परिशोषण प्रारम्भ होता है और उण्डूक (Illeo-Caecal valve) तक प्रायः समाप्त हो जाता है। बृहद् आंत्रों में भी कुछ परिशोषण होता रहता है। बहुत-सा भोज्य द्रव्य यथा लवण और जल बिना किसी परिवर्तन के ही परिशोषित हो जाते

---

१. "सम्यक् पक्वो निस्सारः आहार रसः" सु० सू० ४०

है। ऐन्द्रियिक पदार्थ पूर्णरूपेण परिवर्तित होकर ही परिशोषित होते हैं। अन्य पदार्थ यथा श्वेतसार, प्रोटीन प्रभृति क्रमशः सुपक्व और सुविस्तीर्ण होकर ही परिशोषित होते हैं यथा द्राक्षौज, एमायनो एसिड बन कर। विशेषकर परिशोषण क्षुद्रांत्र के ऊपरिभाग में ही होता है। जल अन्तःस्रावों का उद्रेक करता है। प्रधानतः परिशोषण दो मार्गों से होता है। प्रथम रक्त वाहिनियों (Portal Tributries) और दूसरा रसवाहिनियों तथा पयस्विनियों से (Lymphatics and lacteals)। शोषण के लिए जल विलेय, सुविस्तीर्ण अविशिष्ट द्रव्य (Soluble, diffused and non-Specific) होना चाहिए। शर्करा जातीय पदार्थों में सीसाकाइड्स (Sacrose, maltose & lactose) सुविस्तीर्ण (Diffusive) होता है और सहज ही परिशोषित हो जाता है। परन्तु ये शरीर में अनुपयुक्त ही रह जाते हैं। साधारणतः जब ये अधिक मात्रा में नहीं रहते तो ये मोनोसाकाइड्स में परिवर्तित हो जाते हैं, जिनका शरीर में ग्लाइकोजन के रूप में उपयोग होता है, जो विशिष्ट प्राणिज कार्बोहाइड्रेट है। इस प्रकार अन्त्रों में आहार केवल सुपक्व और परिशोषित ही नहीं होता है वरन निर्विष अवयवोपयोगी और धातुनिर्मायक भी होता है।

शर्करा जातीय पदार्थों का परिशोषण—सर्वप्रकार के शर्करा जातीय पदार्थों का पहले उदकीकरण (Hydrolisation) हो, मोनोसाकाइड्स तैयार होता है।

स्टार्च——→डेक्स्ट्रीन——→माल्टोज——→ग्लुकोज

लाला स्रावान्तर्गत टायलीन और पैंक्रिया के एमायलेज द्वारा।) (सक्कस एन्ट्रीकस के माल्टोज द्वारा।)

इक्षुशर्करा—→द्राक्षौज और फ्रक्टोज (सक्कस एन्भर्टेज के एन्भर्टेज द्वारा) दुग्धशर्करा—→द्राक्षौज और ग्लैक्टोज (सक्कस एन्ट्रीकस के लैक्टेज द्वारा)

फ्रक्टोज और ग्लैक्टोज यकृत् में आकर द्राक्षौज में परिवर्तित हो जाता है अतः रक्त विश्लेषण में केवल द्राक्षौज (Glucose) ही मिलता है। यहां पर वैरेर साहब कहते हैं कि उक्त कार्य का सम्बन्ध दो शर्कराओं के प्रस्फूरीकरण से (Phosphorilcation) रहता है जो श्लेष्मधरकला कोषों में (Mucosal Cells) परिपाक के बाद होता है। इस प्रकार सुपक्व आहार के सन्तत परिवर्त्तन होते रहने से पक्वरस शीर्षस्थानीय रहता है और धातु परिवर्त्तन का कार्य अबाधरूप से होता रहता है। इस क्रिया को अर्वाचीन चिकित्सा 'सिन्थेसिस" नाम से पुकारते हैं। यह देखा गया है कि प्रस्फूरीकरण और शर्करा परिशोषण का कार्य मोनो-आयडो एसेटिक एसिड (Mono-iodo-acetic acid) से या अन्य किसी प्रस्फूरीकरण विरोधी द्रव्य से दब जाता है। कभी २ उपवृक्कग्रन्थि का अधिक स्राव भी इस कार्य में बाधा पहुँचाता है।

प्रोटीन परिशोषण—पचन प्रणाली से यह हमें मालूम है कि प्रोटीन शारीरिक स्रावगत तत्त्वों द्वारा एमायनो एसिड में परिवर्तित हो जाता है जिनकी शृङ्खला निम्न प्रकार बनायी जा सकती है।

'प्रोटीन—→एसिड मेटा प्रोटीन—→प्रोटीयोज—→पेप्टोन—→ पौलीपेप्टाइड—→एमायनोएसिड या एलकाली।" साधारण रीति से आहार का प्रोटीनांश शारीरिक स्राव गत तत्वों द्वारा परिवर्तित हो एमायनो एसिड बन जाता है और तब परिशोषित होता है परन्तु परिशोषण काल में यदि रक्त में अप एमायनो एसिड का पता लगाना चाहें तो कठिन होगा, जिसके निम्न कारण हैं —

(१) किसी खास समय में भीतर परिशोषण बहुत कम होता है और परिशोषित पदार्थ सम्पूर्ण रक्त में मिश्रित रहता है। (२) रक्त में विद्यमान जमने वाले प्रोटीन (Coagulable protien) की अधिक मात्रा एमायनो एसिड का पता लगने नहीं देती। (३) और एमायनो एसिड जब रक्त में मिलता है तब वह शीघ्र ही कहीं एकत्रित न हो तन्तुओं के कोषों द्वारा (Cells of tissues) तितर बितर हो जाता है। यह देखा गया है कि परिशोषण काल में रक्त का प्रोटीन रहित नत्रजन (Non-protien nitrogen) बढ़ता है। अब तो नाना प्रकार की परीक्षाओं से यह निश्चित हो गया है कि एमायनो एसिड रक्त प्रवाह में परिशोषित होता है। शर्करा तथा एमायनो एसिड समान रूपेण सुविलीय पदार्थ हैं। यह लवण के साथ केशिकाओं द्वारा प्रवेश कर जाता है और उसका अंदाजा भी लगाया जा सकता है। रक्त का एमायनो एसिड प्रोटीन भोजन के बाद बढ जाता है। यह एक बड़ा कौतूहल का विषय है कि वैयक्तिक एमायनो एसिड प्राय अविशेष होता है पर वह परस्पर एक दूसरे का विलायक होता है।

वसापरिशोषण

वसा जब आंत में पहुँचती है तो उसमें दो तरह के परिवर्त्तन होते हैं। (१) भौतिक परिवर्त्तन (Emulsification) और (२) रासायनिक परिवर्त्तन (Saponification) वसा के कणों को ले जाने वाली दूसरी ही नलिकाएं होती हैं जो स्नेहवाहिनी या पयस्विनी कहलाती हैं। इनका यह नाम इसलिये पड़ा कि जब ये वसा का परिशोषण करती हैं तब उनका रङ्ग दूधके समान हो जाता है। ये दोनों प्रकार की नलिकाएं क्षुद्र आंत्रियों के कलाओं के अंकुरों में जुड़ी रहती हैं। आंत्रों में जाकर वसा का परिवर्त्तन ग्लाईसोरल (Glycoral) और वसाम्ल (Fatty acid) के रूप में हो जाता है, जिससे साबुन के रूपमें इनका परिशोषण होता है। प्रायः रसायनिक परिवर्त्तन (Saponification) के लिये भौतिक परिवर्त्तन (Emulsification) की आवश्यकता होती है। पर आवश्यक नहीं। मेलेनवी साहब के अनुसार दूध के समान श्वेत परिवर्तित वसा (Emulsified fat) स्वच्छन्द रूप से बिना उद्कीकरण के ही कलाओं के अंकुरों द्वारा (Through the coloumnour cells of the villie) प्रविष्ट हो जाती है। यह देखा गया है कि उदासीन वसा (Neutral fat) पित्त के साथ मिल कर ग्रहणी प्रदेश में पयस्विनियों द्वारा परिशोषित हो जाती है; ऐसे प्राणियों में भी जिनकी पित्तनलिका तथा अग्न्याशय नलिका रुद्ध कर दी गई हों। यह

कार्य्य प्रधानत लिपेज (Lipase) के कारण होता है, जिससे वसा का उदकीकरण हो जाता है, साबुनीकरण हो जाता है। इस क्रिया से अपरिवर्तित वसा का भौतिक परिवर्त्तन (Emlusi fication) और परिशोषण सुविधायक हो जाता है।

द्वादश अध्याय

(कृतान्न वर्ग)

भोजन में पक्वान्न—

प्रकृति की दी हुई भोजन-सामग्री को हम सुपाच्य बनाते हैं। जब अग्नि तथा ताप की सहायता से हम उन्हें सुपच्य बना लेते हैं तो इनका नाम पक्वान्न या कृतान्न होता है। पक्वान्न एक या अनेक द्रव्यों के संयोग से बनते हैं। सुपक्वान्न स्वादिष्ट एवं सुपच्य होता है। इन पक्वान्नों की निर्माण विधि देश काल, रुचि और आवश्यकता नुसार भिन्न २ हुआ करती हैं। कारण गुण के अनुसार कार्य्य गुण होता है अतः कृतान्नों के उपादान संयोग के अनुसार ही उनके गुण होते हैं। संस्कार भेद से कृतान्न गुरु या लघु होता है। आहारोपयोगी द्रव्यों के संयोग के अनुसार ही उसका गुण दोष हुआ करता है। बहुत से ऐसे द्रव्य हैं जो सयोग विरोधी होते हैं अतः उनकी परीक्षा करके ही व्यवहार करना चाहिए। भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों में जो पक्वान्न व्यवहृत होते

हैं उनका यथा साध्य वर्णन इस अध्याय में किया जायगा। इनकी निर्माण-विधि के साथ २ इनका गुण भी वर्णित होगा।[१]

यद्यपि कृतान्न पाकशास्त्र का विषय है तथापि स्वस्थ और आतुर के हिताहित ज्ञानार्थ तथा पथ्य की व्यवस्था के लिए इसका वर्णन यहां आवश्यक है।[२] भोजन के विविध द्रव्यों के पकाने का सब से उत्तम उपाय उनको भाप के द्वारा पकाना है। रसोई बनाने के लिए आज कल जो कुकर (Cooker) का प्रचार है उस में भोजन इसी विधि से पकाये जाते हैं। जहां तक हो सके अपने भीतर के रस से ही शाक को पकाना चाहिए। यदि शाक बहुत ही सूखा हो तो उसमें जितनी जरूरत हो उतना ही पानी डालना चाहिए। परन्तु अधिक पानी डाल कर पक जाने पर उस पानी को फेंकना अच्छा नहीं। चावल के बारे में भी यही ध्यान रखना चाहिए। अन्यथा क्षार, जीवनीय द्रव्य, प्रभृति आवश्यक पदार्थों की कमी हो जाने से खाद्य द्रव्यों की पौष्टिकता से शरीर वञ्चित रहता है जिससे नाना प्रकार की व्याधियां उत्पन्न हो सकती है।

१. "शूकधान्यैः शमी धान्यैर्यवैः पयसा तथा। पयोविकृतिभिर्मांसैरण्डै र्मूलैः फलैरपि॥ प्रायशो वह्नि पाकेन क्रियन्तेभक्ष्यकल्पनाः। कृतान्न-मिति तान्याहुः प्राज्ञस्तद्गुण वर्णने॥ विविधानि कृतान्नानि स्वस्थातुर-हितं लघु। मुखप्रियं गुरु च यत् पाच्यं तीक्ष्णाग्नि भर्जनैः॥ (द्रव्यगुण)

२. कृतान्न सूदशास्त्रस्य विषया यद्यपि स्मृतः। स्वस्थातुर हितार्थाय तद्विधीन् सगुणान्शृणु॥ नैपुण्यंभर्जनीयं हि सद्वैद्यैः सूदकर्मणि। स्वास्थातुर हितं पथ्यं तैर्यस्मादुपदिश्यते॥

मण्ड, पेया, और विलेपी यवागू के ही तीन प्रकार हैं। मण्ड[1] पके तण्डुलादि के घनभात्रा में से ऊपर का द्रव भाग निकाला जाय तो वह 'मण्ड' कहलाता है। छानने की विधि तथा बनाने के द्रव्य के अनुसार मण्ड तीन प्रकार का होता है। जो मण्ड लाजा या भृष्ट तण्डुलों से बनाया जाता है उसे 'लाज मण्ड' कहते हैं। मण्ड भक्तावयव रहित होता है। चौदहगुणा जल देकर इसे पकाते हैं। पेया[2]—चौदह गुणा जल में चावल डाल कर खूब पकावे, उसको मण्ड की भांति छाने नहीं, वह द्रव सहित भक्तावयव युक्त पदार्थ पेया है। विलेपी[3] चौदह गुणे जल में

---

१. "सिक्थैर्विरहितो मण्ड." (सुश्रुत) जल चतुर्दशगुणे तण्डुलानां चतुःपलम्। विपचेत्स्रावयेन्मण्ड स भक्तो मधुरो लघु ॥ नीरे चतुर्दशगुणे सिद्धो मण्डस्त्वसिक्थकः। लाजैर्वा तण्डुलैर्भृष्टैः लाजमण्डः प्रकीर्तितः। मण्डस्तु त्रिविधो ज्ञेयः एक द्वित्रिपरिश्रुतः। लाजैर्मुद्गैर्मसूरैश्च तण्डुलैः परिसंस्कृतः ॥ (शार्ङ्गधर) यवमण्ड—यवमण्डो लघुतमो मधुना मधुरीकृतः। जम्बीर रस युक्त तृष्णाक्लान्तिहृत मूत्ररोमतः। अन्न मण्ड—अन्नमण्डोऽपितादृक्स्यात किञ्चिद्गुरुतरस्तु सः। साबुमण्डोऽपि सदृशौ ग्राहातृप्तिकरावुभौ। पयसा साधित सोऽयं साबु पायस मुच्यते।" (द० गु० सं०)

२. चतुर्दश गुणेनीरे रक्तशाल्यादिभिः कृता। द्रवाधिका स्वल्प सिक्था-पेया प्रोक्ता भिषग्वरैः ॥ (भा०) पेया सिक्थ समन्विता" (सुश्रुत)

३. चतुर्गुणास्तु संसिद्धा विलेपी घनसिक्थका। पृथक् द्रवेणरहिता ख्याता शिथिल भक्तिका।" विलेपी विरलद्रवा" (सुश्रुत)

चावल डाल कर खूब पकावे; वह अल्प द्रव युक्त गाढ़ा पदार्थ विलेपी है। कुछ ग्रन्थकार और टीका कार 'यवागू'को कृतान्न का एक स्वतन्त्र चौथा प्रकार मानते हैं। यथा[1]—मण्ड भक्तावयव रहित होता है; पेया भक्तावयव युक्त होती है, विलेपी बहुत भक्तावयव युक्त और यवागू अल्प द्रव युक्त होती है। मण्ड[2] को माँड या दक्षिण भारत में कंजी कहते हैं। यह लघु सुपच, तर्पक, तथा मूत्रल होता है। धान की खील का भी मण्ड बनाते है, जो प्रायः रोगियों के पथ्य के लिए व्यवहृत होता है। यह सुपच, दीपन पाचन, वातानुलोमन और हृद्य होता है। पीपर (पिप्पली) और सोंठ मिश्रित कर देने से वह विशेष रुचिवर्धक तथा हृद्य हो जाता है। किसी-किसी[3] के मत से पेया षड्गुण जल में पकानी चाहिए। यह अग्नि को उत्पन्न करने वाली है। हल्दी, दीपनी और वस्ति को स्वेद

---

१. सिक्थकैः रहितो मण्डः, पेया सिक्थ समन्विता।
यवागूः बहुसिक्था स्याद्विलेपी विरल द्रवा॥"

२ मण्डस्तु भृष्टि दोषघ्नो दीपनानिललोमनः।
ज्वरहा परमो[?]लघुः स्वेदनो मार्गशोधनः॥
लाज मण्डोऽग्नि जननो दाहमूर्च्छा निवारणः।
तृष्णाऽतिसार शमनो धातुसाम्यकरः शिवः॥" (च० सू०)
लाज मण्डो विशुद्धानां पथ्यः पाचन दीपनः।
वातानुलोमनो हृद्यः पिप्पली नागरायुतः॥

३. "पेया षड्गुणऽम्भसि" (परि०) स्वेदोऽग्नि जननी लघ्वी दीपनी वस्ति शोधिनी। क्षुत्तृट् श्रमग्लानिहरी पेया, वातानुलोमनी॥ (सुश्रुत)।

और शुद्ध करने वाली होती है। भूख प्यास और थकावटको दूर करती है। और वायु का अनुलोमन करती है। विलेपी[1]—चतुर्गुण जल से भी सिद्ध करने का निर्देश है। यह गाढ़ी होती है इस में सीठी अधिक होती है द्रव कम रहता है। यह तृप्तिकारक, रूचि धैर्यक, हृद्य, ग्राही, और बल को बढ़ाने वाली है। अग्नि को तृप्त करती है तथा भूख को बढ़ाती है। यवागु—किसी २ के मत से इसे भी ६ गुण जल में पकाते हैं परन्तु इस में सीठी अधिक होता है। यह हृद्य, तृप्तिकारी, वृष्या बृहणी, और बलको बढ़ाने वाली है।

अन्न[2]

पञ्च गुणजल में सिद्ध किये हुए मण्ड रहित चावल को अन्न या भात कहते हैं। इसका नाम ओदन भी है। इन्हें

---

१. विलेपीविरल द्रवा "विलेपी तर्पणी हृद्या ग्राहिणी बलवर्धिनी। पथ्या स्वादुरसा लघ्वी दीपनी क्षुत्तृष्णापहा (सु० सू० ४७)

नोट्—मण्ड, पेया, यवागू, विलेपी उत्तरोत्तर अपेक्षाकृत गुरु होते हैं। इनके क्रमशः प्रयोग को संसर्जन विधि कहते हैं।

सागु—तरु स्कंधभवा शुभ्रा गुलिका सागु संज्ञकासंहत्वादि भुवि लब्धा स्वस्थातुर हिता मता।"

२. "अन्नं पञ्च गुणे साध्यम्" (सुश्रुत) "ओदनः क्षालितः स्विन्नः प्रस्तुतो विशदो लघुः। भृष्टतण्डुलजोऽस्थर्शमभ्यधास्याद्गुरुश्च सः॥ (चक्रः) "ओदनो वाष्पनिष्पन्नः साध्यस्त्रिगुणवारिणा। पात्रे बद्धमुखे सोऽयं निर्जलस्तुष्टिपुष्टिकृत्॥ करीषाग्नौ तु सम्पक्वः शनकैः शुष्क-फेणकः। पुटौदन इतिप्रोक्तः सोऽपि प्रायस्तथागुणः॥

सिद्ध करने के पहले अच्छी तरह धो लेते हैं। चावल अधिक कण्डित (छांट) करने से उसके गुणदायक अंश नष्ट हो जाते हैं।[1] त्रिगुण जल से सिद्ध किया हुआ ओदन (जिसका मुंह ढका हुआ हो) विशेष पुष्टिकारक होता है।

पायस[2]

यह दूध और चावल के योग से तैयार होता है। इसे षोडशगुण, या अष्टगुण दूध में पकाते हैं और अधिक स्वादु बनाने के लिए शर्करा तथा मेवा प्रभृति मिलाते हैं। यह विष्टम्भी बल को बढ़ानेवाला और मेद तथा कफ का वर्धक है। पचने में गुरु होता है। इसे खीर (क्षीर) भी कहते हैं।

कृशरा[3]

इसे खिचड़ी कहते हैं। यह कफ पित्त को बढ़ाने वाली

---

१. ओदनार्थं प्रयुञ्जीत तण्डुलान् नातिकण्डितान्। तुषेषु प्रायशः वस्तु यस्माद् भूयिष्ठमवतिष्ठति ॥ (भक्त) धौतस्तु विमलः शुद्धो मनोज्ञः सुरभिः समः। स्विन्नः सुप्रस्रुतस्तूष्णो विशदस्त्वोदनो लघुः ॥ अधौतोऽप्रस्रुतोऽस्विन्नः शीतश्चाप्योदनो गुरुः ॥ सधोन्नं वारिणा-धौतं शीघ्रपाकं बलप्रदम्। शीतलं मधुरं रूक्षं श्रमघ्नं तर्पणं परम् ॥ पानीय भक्तं व्युषितं मेदःस्वेदकफप्रदम्। त्रिदोषकोपनं रूक्षं मलकृन्मूत्रलं परम् ॥ (चक्र०)

२. "विष्टम्भी पायसो बल्यो मेदः कफकरो गुरुः।"

३. "कफ पित्त करा बल्या कृशराऽनिलनाशिनी।"

"तण्डुला दालिसंमिश्रा लवणार्द्रकहिंगुभिः। संयुक्ता सलिले सिद्धा कृशरा कथिता बुधैः ॥" (भाव)

तथा बल को देने वाली है और वायु का नाश करती है। इसका निर्माण यवागू की तरह करते हैं, भेद इतना होता है कि इसमें दाल (अरहर मूंग या उड़द) मिली रहती है।

भूजा[१] (भृष्ट तण्डुल)

भुंजा हुआ चावल हलका सोंधा (सुगन्धि युक्त) और कफ का नाश करने वाला होता है।

दाल[२] (सूपः)

मूंग, मसूर, चना प्रभृति शमीधान्य को अल्प जल में मृदु अग्नि से सिद्ध करने पर पका हुआ पदार्थ दाल या सूप कहलाता है। घृत, लवण तथा जीरक प्रभृति से संस्कृत कर देने पर यह दाल विशेष स्वादु और रुचिकर होती है। इसे रोटी तथा भात के साथ खाते हैं। यह विष्टम्भी रूक्ष और शीतवीर्य होती है। मूंगादि दालों को यदि अधिक जल से सिद्ध करे तो वह यूष हो जाती है, जो हलका, पथ्य, और रुचिकर होती है।

पोलाव[३]

स्नेह, मांस रस, फल, कन्द, विदल, और अम्ल प्रभृति पदार्थों के साथ सिद्ध किया हुआ भात (पोलाव प्रभृति) गुरु

---

१. "लघुः सुगन्धिकफहा विज्ञेयौ भृष्टतण्डुलः।"

२. "स्वल्पेन वारिणा यत्नान्मृद्वग्नौ साधु साधिता। दालिः सूपश्च स ज्ञेयः यूसस्तु बहुवारिकः। सर्पिर्लवण जिरादि युतः सूपः सुरोचनः॥" (भाव०)

३. "स्नेहमांसैः फलैः कन्दैर्वैदलाम्लैश्च संयुतः। गुरवो बृंहणो बल्या येच क्षीरोपसाधिताः॥"

बृंहण, बल को बढ़ाने वाला होता है। केवल दूध में भी सिद्ध किया हुआ अन्न उपरोक्त गुण युक्त है।

यूष१

मुद्गायूष कफ नाशक, अग्निदीपक, हृद्य, एवं वमनादि द्वारा विशुद्ध व्यक्ति के लिये तथा व्रण पीड़ित के लिए सुखद है। यह दो प्रकार का होता है, कृत और अकृत। लवण वा स्नेहादि द्वारा प्रस्तुत मूंग का यूष कृत और लवणादि वर्जित अकृत कहलाता है।

राग षाडव२

उपरोक्त यूष दाडिम द्राक्षादि से युक्त ईषद् अम्ल राग-षाडव कहलाता है। यह रुचिकारक, लघुपाकी, एवं वायु पित्त और कफ का नाश करने वाला होता है।

मुद्गामलक यूष३

यह ग्राही और पित्तकफ को नाश करता है।

---

१. "कफघ्नी दीपनी हृद्या शुद्धानां व्रणिनामपि।
शस्तः पथ्यतमश्चापि मुद्गायूषः कृताकृतः॥

२. तद्दाडिम मृद्वीकायुक्तः स्याद्रागषाडवः।
रोचिष्णुः लघुपाकश्च दोषाणाञ्चाविरोधिकृत्॥

३. "मुद्गामलक यूषस्तु ग्राहीपित्त कफापहः।"

मसूरादि यूष[१]

मसूर, मूंग, गोधूम, कुलत्थ, कलाय, एवं लवण द्वारा प्रस्तुत यूष को मसूरादि यूष कहते हैं। यह कफ पित्ताविरोधी और वातव्याधि के लिए प्रशस्त है। उक्त मसूरादि यूष द्राक्षा दाडिम संयुक्त होने पर वायुनाशक रुचिकर, अग्निदीपक और लघुपाकी होता है।

कुलत्थ यूष[२]

कुलथी का यूष वायु को नाश करने वाला है। श्वास, पीनस तूनी प्रतितूनी, कास, अर्श, गुल्म का नाश करता है।

यवकोल कुलत्थादि यूष[३]

यव, कोल, कुलथी का यूष, कण्ठरोग के लिए हितकर तथा वायु का नाशक है। सर्वधान्य का यूष बृंहण और प्राण वर्धन है।

---

१. "मसूर-मुद्गा-गोधूम-कुलत्थल वणैः कृतः। कफ पित्ताविरोधि स्या-द्वातव्याधौ च शस्यते। मृद्वीका दाडिमैर्युक्ता स चाप्युक्तोऽनिलार्दिते। रोचना दीपना हृद्या लघुपाक्युपदिश्यते"॥

२. "कुलत्थयूषोऽनिल श्वासपीनस नाशनः।
तूनी प्रतूनी कासार्शो गुल्मोदावर्त्तनाशनः"॥

३. "यव कोल कुलत्थानां यूषः कण्ठ्योऽनिलापहः।
सर्वधान्य कृतस्तद्वत् बृंहणं प्राणवर्धनः॥" (सुश्रुत)

अम्ल यूष अनेक प्रकार के होते हैं जिन्हें तक्राम्ल, खड, काम्बलिक आदि नाम से पुकारते हैं। ये रुचिकर तथा वमन

नोट—नाना प्रकार के पत्रशाक, मूला शाक, और फलशाकों द्वारा अन्नवर्जित तथा साम्ल यूष बनाते हैं। ये शाकयूष प्रायः लघु और तर्पक होते हैं। पटोलादि शाकों के साथ मुद्गादिशमी धान्यों का सहयोग कर जो यूष प्रस्तुत होता है उसे 'मिश्र यूष' कहते हैं। यह रुचिकर, अग्निदीपक और बलवर्धक होता है। इसके बनाने की विधि निम्नप्रकार है।

विविध प्रकार के शाकों को (जिसे भी बनाना हो) थोड़ा घृत में जीरा का संस्कार कर (छौंक लगा कर) पहले भूनते हैं। बाद में लवण आर्द्रक और ३-४ गोल मिर्च चूर्ण थोड़े जल के साथ या केवल प्रयोग करते हैं और ढक्कन से ढक देते हैं। सिद्ध होने पर छान कर निम्बु रस मिला व्यवहार करते हैं। यह ईषदम्ल-शाक यूष रुचिवर्धक और तृप्तिदायक होता है।

पाटोल-निम्बयूष—"पटोल निम्बयूषस्तु कफमेदो विनाशिनौ। पित्तघ्नौ दीपनौ हृद्यौ क्रिमिकुष्ठज्वरापहौ ॥

मूलक यूष—"हन्तिमूलकयूषस्तु कफ मेदोगलामयान्। श्वास कासः अतिसार प्रसेकारोचकज्वरान् ।" (सु० सू० ४६)

अम्ल यूषा—"अम्लयूषा बहुविधाः खडाकाम्बलिकास्तथा। ते सर्वे रोचना ज्ञेयाश्छर्दी वातकफपहाः॥ शमीधान्यैः कृतस्तत्र तक्राम्लः कथितः रसः। कपित्थ तक्र चाङ्गेरी शाकाद्यैश्चापरः खडः॥ दध्याम्ल लवणस्नेहतिलमाषकृतस्तुयः। मरिचाजाजीचित्रादि युतः काम्बलिकस्तु सः॥"

वा वातकफ नाशक होते । उ म मुद्ग मसूरादि यूष तक्र आदि द्वारा अम्ली । हुआ खट्टा यूष कहलाता है। जो यूष दधि धान्याम्ल फलाम्ल जीरा । मरिच सहित तिल उ द कलाय प्रभृति द्वारा प्रस्तुत किया जाता है उसे धान्याम्ल यूष कहते हैं।

अथ पायसानि

अ य पयोनि उगे वृ सूक्ष्मस्तु तण्डुलान् । आनिष्पत्ति पचेत्तन्न सि । न्यात् गधा चि ॥ र ला द घृतञ्चापि कश्चिदत्र क्षिपति । तदेतत् पायसं चाऽऽरी परम् ञ्ञ त मिटु ॥ पायस दजर ोक्त वृ ण काय दहन । गोध दन्धेन सिद्ध यदिह पायसम् ॥ यन्न ह् न्निय नृक ञ्र ोन तुतन । स गमियन चूर्णोनां गोधूमये कस्तथा ॥ पा च र न ा द य च्या च लघु । ञ्त्तशाम भिरन्च त प स नि च न ा न हि ॥ गधूमय कमौ यत् तद्विशपण पुष्पदम् ॥

शाटी पायसम्

शटीक दस्य या गार लोक लपु सज भम । स्व पन तेन सयुक्त दुग्ध पायसतामियात् । घनीभा स्त । धस्य स्वेद्वा सव सहतम् ॥ पाक त नु सि । युक्त हि । स्य दमतपित्तिनाम् ॥

शृङ्गाटक पायसम्

शृङ्गाटकाना पिष्टाना तथाना पयसा सह । साध्यते पायस यत् तल्लघिष्ट पायसेषु हि ॥

गोधूम कृतान्नानि

सुपरिष्कृत तथा सुधोत गोधूम को सुखाकर उसे चक्की मे पिसवाते हैं और चलनी से चालते हैं। पीसन तथा चालने के

भेद से इसका तीन प्रकार का चूर्ण (समिता) तैयार होता है। (१) मोटा तथा महान चूर्ण मिले हुए को आटा या गोधूम पिष्टी कहते हैं और (२) इसका जो (सूक्ष्म) बारीक चूर्ण होता है उसे मैदा कहते हैं। (३) तीसरा गोधूम चूर्ण का मोटा अंश पृथक् किया हुआ होता है जिसे सूजी कहते हैं।

'गोधूमो धान्यो धौतः शुष्कः गोधूमिकाख्यः । प्रोक्षिता यन्त्रनिष्पिष्टा चालिताः समिताः स्मृता ॥ (भाव)' समितास्त्रिविधा ज्ञेयाश्चालनभेदतो यथा । स्थूला शुक्तिकाकाराः सुजिका, यास्तु सूक्ष्मका । मैदेति नाम्ना विख्याता, सूक्ष्मा मयदा मता ॥ विशेषात् पुष्टिदा तत्र सुजिका मांसवर्द्धनी । मोटा किञ्चिद् गुणैर्हीनो मयदाऽलघमा गुणैः" सर्वथाऽपि शाकरिण्य सम्यक पिष्टसुपैः सह । गोधूमस्ते पिष्टकामाः स्वादुतो मलशुद्धिकाः ॥

नोट—गोधूम के मैदे से अनेक तरह के पकवान बनते हैं यथा—रोटी, पावरोटी, पूरी। निमकी, सेव, सिंघाड़ा खाजा, मोहन-भोग प्रभृति।

रोटी

समितां वारिणामृष्टां लोणीषु परिकल्पिताम् । प्रसारितां यत्नतश्च कराभ्यां वेल्लनेन वा ॥ ततके स्वेदयेत्पश्चात् दीप्ताङ्गारे त्वरं पचेत् । यावत्तस्याभ्रामृन्निर्गेत् सेयं रोटीति कथ्यते ॥ रोटकेती

(1 Whole meal Flour) यह विशेष पुष्टिकर और जीवनीयगुण सम्पन्न होता है।

सर्वहिता रूक्षा, मृष्टा तुसर्पिषा। स्तोकेन गुरुपाका स्यात् स्थूलऽपक्वा तु दुर्जरा॥

रोटी के भेद

जल द्वारा सुमर्दित सूजी पिण्ड को २०-२५ मिनट तक जल मे सिद्ध कर पुन गून्द कर रोटी पकावे तो सूजी की रोटी बनती है। यह घृत से न चुपड़ने पर लघुपाक, वृहण, मलसग्राही और मन्दाग्नि के लिए तथा विशेष कर मधुमेही के लिए हितकर है। †

यव रोटिका

यवजा रोटिका रूक्षा मधुरा विशदा लघु। मलशुक्रानिलकरी बल्या हन्ति कफामयान्। पीनस श्वासकासाश्च मेदो मेहगलामयान्॥ (भाव)

मिश्र रोटिका

चणं माषादि चूर्णैस्तु समिता मिश्रितै कृता। रोटिका रुचिदा बल्या गुर्वी विष्टम्भकारिणी। केवलैस्तु शमीधान्यचूर्णैर्या सा तु दुर्जरा॥ हिता व्यायामशीलाना वृहणी घृत सयुता॥

लीटी (अंगार कर्पटी)

शुष्कगोधूमचूर्णन्तु साम्बुगाढ विमर्दयेत्। विधाय वटका कार निर्धूमेऽग्नौ शनै पचेत्। अगार कर्पटी ह्येषा वृहणी शुकला

---

† "सूजीति समितामेद कथित पुष्टिदस्तु स। तत्पिण्ड वारिणा मृष्ट मुहूर्त्तं स्वेदयेत् जले। तत पुन सुमृदित रोटिका विधिना पचेत्॥ सुजी रोटी लघुतरा दुर्बलाग्नि हिताऽघृता। वृहणी ग्राहिणीपथ्या विशेषान्मधुमेहिनाम्।

गुरु । दीप्ताग्नीनां हिता बल्या पीनसश्वास कासजित् ॥ (भाव) घृत गर्भाग्नि पाके सा गुर्वी सस्नेहनी परम् । तच्चूर्णं परमा सज्ञा सुप्रिय मरवासिनाम् ॥

कन्दु की (पाव रोटी)

निर्धूमाङ्गारसतप्त कोष्टक तन्दुराह्वम् । प्राचा कन्दुकसज्ञ स्यात तत्पक्व लघुनामियात् ॥ किरवेन कृत सधाना समिता पिण्डिका तु या । कन्दुके पच्यते सेय कान्दुकी पुरोटिका ॥ खण्डश वर्तिता सा च किञ्चित भृष्टोऽनले पुन । स्वल्पर्य भक्ष्यते प्रायो नवनीता स्तृता जनै ॥ इयद्रोग्लेन किरवेन कृता साम्लविपाककृत् । अन्यथा मधुरा बल्या सुपचा बृहणी मता ॥ कन्दुपक्वकृतान्यानि बिस्कुटादीनि यान्यपि । अपि तानि सुपथ्यानि रुजराान लघू न च ॥

मण्डकः

वारिणा कोमला कृत्वा समिता साधु मर्दयेत् । हस्ताच्चालनया तस्या लोप्त्री सम्यक् प्रसारयेत् ॥ अधो मुख घटस्यैतद् विस्तृत प्रक्षिपेद् बहि । मृदुना वह्निना साध्य सिद्धो मण्डक उच्यते ॥" (भाव) मण्डको बृहणो वृष्यो ग्राही लघु दिंरत । स एव घृत सिक्तश्चेत् पाक काले शनै शनै ॥ सस्नेह मण्डका ज्ञेयो रोचना बृहण गु॰ । यवाना तण्डुलाना वा चूर्णं जल युतै कृत । मण्डक स्यात् लघुतरो विशेषान्मूत्रलश्च स ॥

लुचो, पुरी, परौंठा

सुसूक्ष्मा समिता किञ्चित घृताक्ता जल मर्दिता । लोपत्रीषु कल्पिता साधु चक्राकारेण वेल्लिताम् ॥ भर्जयेदतिसतप्ते

सर्पिष्येकैकशः क्रमात्। स्वरद्वयोत्थिता सेयं लुचि वङ्गजनप्रिया ॥ स्थूल गोधूम चूर्णेन कृतातन्वी तु सा पुरी। उपर्य्युपरि विन्यस्तैः स्तरैः सर्पेल्लितास्तु या। घृतेन तप्तके स्विन्ना भृष्टा वा भूरि सर्पिषि। सा पराठेति विख्याता गुरु वृष्याति दुर्जरा ॥ सैव प्राचां 'पुरोडाशो' मधुरैः सह साधितः।

पूरिका या कचौड़ी

माषादि चूर्णं पिष्टेन भृष्टेन मरिचार्द्रकैः। पुष्टगर्भा तु समिता-पिण्डिका घृतभर्जिता ॥ पुरिका नाम कथिता कचौड़ी सैव बृंहणी। स्नेहवैदल बाहुल्याद् गुर्वी विष्टम्भिनी च सा ॥ वेल्लिता विस्तृता सैव दालपुरीति कीर्त्यते। राधावल्लभिका सा चेत् मिश्रेया-र्द्रकहिंगुयुक्।

शृंगाटक

सुभृष्ट शाक मांसादि-गर्भ शृंगाटकाकृति। घृतेन पक्वं समिता पुरं शृगाटकं विदुः ॥

निमकी

समितां सज्यलवण-क्षीर-निंबु-रसांजले। मर्दिता खण्डशो भृष्टा जर्जरां निम्बकी विदुः ॥ निम्बुकीत्याद्बहुविधास्तरनी सहंता ऽथवासा प्रायः सुजरा रुच्या घृतपीता न चेद् भृशम् ॥

अथ मधुरा समिताभक्ष्याः

समिता शर्करा-सर्पि-कृताः सुरभिसंस्कृताः। क्वचित् क्षीरा-दिगर्भाश्च मिष्टय भक्ष्या अनेकधा ॥ सेविका, फेनिका, लप्सी तथा मोहन पुरिका। शस्कुली-कुण्डलीन्याद्याः सर्वे बल्या सबृंहणाः ॥

सेविका

घृताढ्यया समितया कृत्वा सूत्राणि तानि च। निपुणो भर्जयित्वाज्ये खण्डपाकेन योजयेत्॥ (भाव) सेविका सेवयी वासौ सुजरा रुचि पुष्टिदा। रच्यन्ते मोदकास्तासां मृद्विकाऽभिषुका-दिभिः॥ तत्पाकभेदः कैश्चित्तु सीताभोग इतीरितः॥

जरदा

तण्डुलैः कुंकुमामृष्टैर्भृष्टैरन्न समं तु यत्। शर्करा रस संयुक्तं जरदाख्यं हि तद्विदुः॥

फेनिका

घृताढ्यां समितां शुभ्रां स्तरविन्यास वेल्लितां। शालीचूर्ण-घृतं दत्वा स्तराणामन्तरान्तरा॥ आज्येन भर्जयेत् यावद् त्तिष्ठन्ति-स्तरापृथक्। क्षिपेत्तां शार्कर रसे सिताचूर्णेषु वा सुधीः॥ सिद्धैषा फेनिका ज्ञेया लोके खाजेति तां विदुः॥

मोहनभोग या लप्सी

सुजिकां समितां वान्यां भर्जयेत् पत्रकैर्घृते। ततो जलेन विपचेत पयसा निर्जलेन वा॥ स्वगेलाचूर्णसहितांसितां दद्यात्ततः परम्। सोऽयं मोहन भोगः स्यात् लप्सिका वेति कुत्रचित्॥ दाक्षि-णात्यः पचन्त्येषां मरिचैः लवंगेण च॥

मोहन पूरिका

घृताकया समितया रचयेत् सम्पुटं शुभम्। चक्राकारं क्षिपे-

दन्तः क्षीरमेलादिसंयुतम् ॥ पुटितं विपचेदाज्ये सेयं मोहन पुरिका। सुगन्धिशर्कराकीर्णा गरिष्ठा तुष्टिपुष्टिदा ॥

शष्कुली (गाजा)

घृताढयां शुभ्रसमितां जलेनामृश्य कल्पयेत्। चतुष्कोणेषु खण्डेषु रूपेष्वन्यविधेषु वा ॥ सर्पिषा तानि भृष्टानि सुगन्धे शार्करे रसे। निःक्षिपेत्, ता हि शष्कुल्यो रोचनो बलवर्धनाः ॥

कुंडलिनी (जलेबी)

अम्लेन दध्ना प्राज्येन स्थापयेन्नूतने घटे। समितां साज्य सलिल-द्रावितां पिष्ट तण्डुलैः ॥ सा यदा तीव्रघर्मेण तापिता व्युषिताऽथवा। रात्रौ याति यदम्लत्व पाक योग्या तदा भवेत् ॥ अथ सच्छिद्रपात्रे तां गृहित्वा तप्त सर्पिषि। भ्रामयन् कुण्डलीकृत्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ पक्वाञ्च शर्करा रसे स्नापयित्वा क्षणोद्धरेत्। सैषा कुण्डली नाम पुष्टि कान्ति बलप्रदा ॥

अथ वैदलकृत भक्ष्याः

बड़ी, बडा, दाल मोट, पापड़, घुघुनी, बैंगनी, प्याजी इत्यादि अनेक तरह की चीजें लवणादि मिश्रित दाल से बनती हैं। ये दुर्जर विष्टम्भी एवं आध्मान व शूलकारक होते हैं। किन्तु मृदुमर्जित दाल को अच्छी तरह पीस कर बांटे और जब वह फेनयुक्त होजाँय और, उसकी बड़ी बनाई जाय तो वह सुपच होती है। दाल से और भी अनेक भक्ष्य मधुर तथा लवण बनते हैं। ये सब अधिक घृतयुक्त न होने से बलकारक, शुक्रवर्धक व सुपच होते हैं

दाल से बनी हुई सभी चीजें प्रायः गुरु व कषायमधुर रस तथा विष्टम्भ कारक, पित्तश्लेष्मनाशक व मलभेद कारक होते हैं।

वटिका (बड़ी)

माष मुद्गमसूरादिवैदलैः पिष्टफेनितैः। क्षुद्रा वापि वृहत्यावा कल्प्यन्ते वटिकाः पृथक्॥ तीव्रातपे विशुष्कास्ताः सुरक्षाः शुष्कपात्रके स्नेहेन भृष्टाः सिद्धा वा भक्ष्यन्ते शाकयोगतः॥

वटका (बड़ा पकौड़ी)

अथ माषादिपिष्टं चेत् फेनितं लवणादियुक्। तत्क्षणात् वटकी कृत्य साधु भृष्टं सुसर्पिषा॥ तदा ते वटका ज्ञेया पकौड्यो वा मुखप्रियाः। माषाणां वटकास्तेषु बल्या वृष्यतमा मताः॥

दधि-तक्र-काञ्जिकादि वटका

माषाणां वटिकान् दधि तक्रे वा जीरकादिभिः। सहोपितान् प्रशंसन्ति रोचनास्ते विदाहिनः॥ अथ चेत् काञ्जिके क्षिप्तास्ते स्युर्द्वित्रिदिनोषिताः। जीरकादियुतस्तर्हि ते काञ्जिकवटकाः मताः॥

दाल मोट

दालयश्चणकादीनां सुसिक्ताः कोमलीकृताः। स्नेहभृष्टाः सलवणाः कथिताः दालमोटिकाः। किञ्चितभृष्टास्ततः स्विन्ना मरिचादिसमायुताः। कलाय यव गोधूमाः कुल्माषा घुघुनीति वा॥ कुलल्माषावातला रूक्षा गुरवोभिन्नवर्चसः॥

शाकगर्भ बैदलिकाः

तनु वार्ताकु खण्डानि वकपुष्पादिकानि वा। पिष्टफेनित

माषादि मण्डितानि घृते पचेत् ॥ तैले वा तानि भृष्टानि कवोष्णान्येव भक्षयेत् ॥ ते रोचनाः बलकराः शाकगर्भा हि वेदला।

वेसन वर्त्तिका (फुरी, भाजा)

दालयश्चणकादीनां निस्तुषा यन्त्रपेषिताः। वेसनं नाम तेनेह पच्यन्ते वटकादयः॥ अधुना तद्द्रवीकृत्य संयुक्त मरिचादिभिः। झर्झरस्त्राविनं तप्ते घृते सूत्रगतं भवेत् ॥ सद्यो निष्कासिता सेयं नाम्ना वेसन वर्त्तिका। रुचिकृद् भङ्गुरा भवत् सुजरा चर्वणोचिता॥

अथ क्वथिता (कढ़ी)

निशा हिंगु घृते भृष्ट्वा वेशनं तक्रघोलितम्। सजीरपत्रं निः-क्षिप्य मृदुतापेन साधयेत्॥ तदेतत् क्वथिता संज्ञ कढ़ी नाम्ना च कीर्त्यते। क्वथिता पाचनी रुच्या लघ्वी वह्निं प्रदीपनी॥

मुक्तामोदकः (मोतीचूर)

मुद्गानां धूमसीं सम्यग् घोलयेत् निर्म्मलाम्बु नाघृते सुतप्ते तद्बिन्दून् झर्झरात् पातयेच्छनैः॥ पक्वांस्तान् शाकररसे क्षिप्त्वा कुर्वीत मोदकान्। ते मुक्तामोदका नाम बल्या शीताश्च तर्पणाः॥ स्थूलास्तु बिन्दवश्चेत् स्युस्ते ज्ञेयाः बुन्दियाभिधाः॥ मृद्वीका मरिचा-द्यैश्च तत्पिण्डं लड्डुकाभिधम्। वेसनाज्यभृष्टेन कृत्वा वेसन मोदकाः॥ मोदकेषु क्षिपन्त्येके घनक्षीराज्य सा धतम्॥

अथ क्षीर कृत भक्ष्याः

सर्वे क्षीर कृता भक्ष्याः मधुरा वृष्यबृंहणा। किलाटेन कृता-स्तत्र विशेषाल्लघवो मता॥ किलाटो लघु संघातः सुजरो धातुपोषणः।

क्रियन्ते तेन संदेशरसगोलादयस्तथा ॥ घनसंधानदुग्धेन कृता भक्ष्यास्ते दुर्जराः । क्षीरगर्भास्तु समिता पाकश्चापि तथा मता ॥

किलाट कृता मधुरभक्ष्याः

क्षीरं निम्बु रस युतं सुक्त वा मोरटाम्बुना । अग्नौ विपक्वं पिण्ड यत् मुञ्चेत् सोयं किलाटकः ॥ तज्जलं मोरटाख्यं स्यात् पीडयित्वा च तद्धरेत् ॥ किलाटं नीरसं कृत्वा पादांशं सितया युतम् । शिलापिष्ट पचेदग्नौ मन्दे साधु प्रलेहवत् । तत्पात्रे विस्तृते क्षिप्तं वृत्तं सदेशसंज्ञकम् ॥ समिता लेश संयुक्तं किलाटस्यतु गोलकाः । सितारसे तनावुष्णे क्षिप्ताः स्यु रसगोलकाः ॥ पाकस्य कोमलात्ते स्युः कोमलाः सुषिरान्तराः । अन्यथा घन सघाता वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ अथैते समिता भागाधिकाश्चेत् घृतभर्जिताः । ताम्र वर्णाः रसे पक्वाः किलाटवटकास्तथा । क्रमशो गुरवो ज्ञेयाः सन्देशः सुजरः परम् ॥

अथ घनक्षीरकृतभक्ष्याः

क्षीरं मन्दानले पक्वं घृतसन्तानिकं यदा । स तानिकास्ताः क्रमशः कटाह परितो क्षिपेत् ॥ वीजयेद् व्यजनेनापि पुनः सन्तानिकास्तुये । यदा दुग्धं तु घनतां यातमल्पावशेषितम् ॥ सन्तानिका विशुष्काश्च तदा ताः कुच्चयेच्छनैः । सिता मिश्रा क्षियं ज्ञेया वसौन्धी रवड़ीति वा ॥ रोचनी गुरुपाका सा बृहंणी बलवर्धिनी ॥

अथ क्षीर कुर्चिकाः

पूर्ववत् क्षीर पाकेन कृता सन्तानिका यदा । निःशेषशुष्कास्तत् क्षीरं सर्वशः कुर्चयेन्मुहुः ॥ तत् कुर्चितं सितायुक्तं कुर्चनं नाम कथ्यते ।

माधुरानां विशेषेण प्रियं तत् सुरभीकृतम् ॥ बल्यं बृहणमायुष्यं हितं व्यायामशालिनाम् ॥

अथ बरफी-पेड़ा-मधुरभक्ष्याः

क्षीरं शनैर्घनीभावं गतं मन्दानलस्थितम् । अदग्धगन्धि पीताभं क्षीरपिण्डं प्रकीर्त्यते ॥ सितोपलायुतं क्षीरपिण्ड पाकविशेषतः । बरफो संज्ञकं ज्ञेयं चतुरस्रेषु खण्डितम् ॥ अतीवघनभावेन तस्मात् पेड़ादिकं भवेत् । क्षीर पिण्डभवं भक्ष्यं बल्यं वृष्यं च दुर्जरम् ॥ मात्रा द्रव्य गुरुर्ज्ञेयं पथ्यं व्यायामशालिनाम् ॥

शाकादि व्यञ्जन

ये अनेक तरह से बनते हैं। प्राचीन समय में इन्हें पका कर तथा इनके रस को निकाल कर स्नेहादि में सिद्ध करते थे परन्तु यही विधि सर्वत्र नहीं थी। केवल कषाय, कटु, तिक्त वा अम्ल रस विशिष्ट शाकों का पाक उक्त विधि से करते थे। अन्य शाकों को अल्प घृत में भून कर उसमें मरिच (मिर्च), आर्द्रक (अदरक), इत्यादि मसाला डाल कर यथोपयुक्त जल देकर पाक करते हैं। इस प्रकार पाक किया हुआ शाक स्वादिष्ट और हितकर होता है। आलू प्रभृति कन्द, शाक और बैंगन आदि फल शाक को केवल जल में पका कर तथा अग्नि में पका कर उसमें लवणादि मिला कर उपयोग अल्पाग्नि पुरुषों के लिये पथ्य है। यह विदाही तथा अम्लपाकी नहीं होगा। प्रायः सभी शाक घृत में भून कर हरिद्रा, लवण, आर्द्रक तथा धनियां मरिचादि अल्प मात्रा में डाल कर सिद्ध करने से सुपच होता है। तैल सिद्ध शाक उस प्रकार उपकारी नहीं होता।

वर्जनीय शाक

असम्यक् स्विन्नमथवा वेशवाराधिकञ्च यत् । कटूवाम्ल प्रचुरं चा प शाकं तद्दूरतस्त्यजेत् ॥ भृष्ट सार्षप तैलेन ज्ञयं शाकं विदाह कृत् । द्विधाभृष्टं पर्य्युषितं शुष्क शाक कृतं च यत् ॥

शाक पाक भेद

देश भेद के अनुसार शाक के पाक में भी भेद होते हैं। यथा बंगाल में—डालना, चर्परी, झोल, घण्टा, दम, प्रभृति शाक पाक प्रसिद्ध हैं। पंजाब आदि प्रान्तों में दधि तथा बेसन के योग से दहीबड़ा, पकौड़े आदि तरह २ के शाक बनाते हैं। इस प्रकार अपनी २ रुचि के अनुसार नानाविध भुजिया, रसेदार आदि बनाते हैं। ये सब दुर्जर, विष्टम्भी तथा विदाही होते हैं।

वाष्प स्विन्न शाक

यह दो प्रकार का होता है। प्रथम जिसमें कोई स्नेह तथा मसाला नहीं होता। केवल थोड़ा जल देकर स्विन्न कर लेते हैं और उसका उपयोग लवण तथा मिर्च के साथ करते हैं। यह स्वास्थ्य की दृष्टि से सर्वोत्तम और सुपच होता है। दूसरा जिसमें स्नेह (घृत तैल) देकर प्रथम थोड़ा भून लेते हैं। बाद में थोड़ा जल और मसाला देकर किसी पात्र से ढक कर स्विन्न करते हैं। यह रुचिकर होता है। इसका गुण मसाला तथा स्नेह के सम्मिश्रण के अनुकूल होता है।

—:ॐ:—

त्रयोदश अध्याय

(हिताहार वर्णन)

हिताभिर्जुहुयान्नित्यमन्तराग्निं समाहितः। (चरक-सू० २७)
अन्नपान समिद्भिर्ना मात्रा कालौ विचारयन् ॥

प्रथम अध्याय में आहार विवेचन करते हुए यह कहा जा चुका है कि "आहार उन उपादानों को प्रदान करता है जो शरीर के वृद्धि, निर्माण तथा शारीरिक अवयवों के उपयुक्त संचालन के लिये आवश्यक हैं" इस लिये यहां यह विचार करना होगा कि जो आहार (भोजन) हम लेते हैं वह उक्त कार्य करने में समर्थ है या नहीं। यदि इस आहार से उपर्युक्त कार्य्य सम्पन्न होते हैं तो वह हमारे लिए हित है अर्थात् शरीर के लिए हित है। भगवान्[1]

---

१. "इष्ट वर्णगन्धरसस्पर्शं विधि विहितमन्नपानं प्राणिनां प्राणिसंज्ञकानां प्राणमाचक्षते कुशला:, प्रत्यक्ष फल दर्शनात् तदिन्धना ह्यन्तराग्नेः स्थितिस्तत्सत्वमूर्जयति, तच्छरीर धातु व्यूहबलेन्द्रियप्रसादकरं यथोक्तमुपसेव्यमानं विपरीतमहिताय संपद्यते ॥"

आत्रेय ने इष्ट वर्ण गन्धरसस्पर्श युक्त विधि विहित अन्न-पान को प्राणधारियों का 'प्राण' कहा है। क्योंकि यह प्रत्यक्ष है कि उक्त गुण सम्पन्न इन्धन (भोजन) से ही अन्तराग्नि-कायाग्नि, की स्थिति है। उक्त गुण सम्पन्न आहार से हमारी इन्द्रियां प्रसन्न रहती हैं। शरीर-धातु पुष्ट होता है, बल बढ़ता है और सत्व ऊर्जित होता है।" बहुत से आहारोपयोगी द्रव्य, स्वभाव से ही शरीर के लिए हित और अहित हुआ करते हैं। इस लिये आहारोपयोगी द्रव्यों के स्वभाविक गुण धर्म का ज्ञान होना भी परमावश्यक१ है। जैसे जल स्वभाव से ही शरीर में क्लेद उत्पन्न करने वाला है; लवण विष्यन्दी है; क्षार पाचक है, मधु संधान गुण वाला है, घृत शरीर को स्निग्ध करता है, दूध जीवन देने वाला है, रस प्रीणन है, सुरा शरीर को जर्जरित करती है, शीधु लेखन कर्म वाला है, द्राक्षासव अग्नि को दीप्त करता है, फाणित दोषों का संचय कराता है, दधि शोथ उत्पन्न करता है, हराशिमु (पिण्याक शाक) ग्लानि उत्पन्न करता है, उड़द की दाल अधिक मल करने वाली है, क्षार दृष्टि तथा शुक्र का नाश करने वाला है, दाडिम को छोड़ कर सभी अम्लरस वाले पदार्थ पित्त प्रकोपक हैं, मधु और पुराने शालि-यव और गेहूँ को छोड़ कर सभी मधुर द्रव्य कफ वर्धक हैं, प्राय सभी तिक्त वर्ग वेत्राग्र और पटोल को छोड़कर वातल और अवृष्य है। कटु रस भी पिप्पली और सोंठ के अतिरिक्त सभी वातल और अवृष्य है—

१. "येषां विदितमाहारतत्वमग्निवेश, गुणतो द्रव्यतः कर्मतः,
सर्वावयवशश्च मात्रादयो भावाः, न एतदत्रेमुपदिष्टं विज्ञातुमुत्सहन्ते॥"
(च० सू० २५)

इत्यादि। चरक सूत्रस्थान "यज्जः पुरुषीयाध्याय" मे मानव शरीर में व्याधियां क्यों और कैसे उत्पन्न होती हैं। और उनके मूल उत्पादक कौन हैं आदि द्रव्यों की मीमांसा करते हुए हिताहिताहार का बहुत ही सुन्दर वर्णन आया है। प्रसंग वश उस वाद-विवाद को यहां उद्धृत करना आवश्यक प्रतीत हो रहा है।

काशी पति वामक ने बड़े विनय तथा आदरपूर्वक ऋषियों के मध्य इस प्रश्न को उपस्थित किया कि क्या जिन तत्त्वों से पुरुष की उत्पत्ति होती है[1] उन्हीं तत्त्वों से उसके आमय (रोग) भी उत्पन्न होते हैं ? राजा के पूर्वोक्त प्रश्न करने पर पुनर्वसु आत्रेय ने ऋषियों को यह कहा कि आप सब अमित ज्ञान-विज्ञान वाले छिन्न-संशय हो, आप लोग राजा के इस प्रश्न का उत्तर दीजिए। तदनन्तर सर्व प्रथम मौद्गल्य परीक्षी ऋषि ने कहा—

१. ऋषी ने कहा—क्योंकि पुरुष (कर्म पुरुष) आत्मज है। आत्मा के अभाव में पुरुष सुख दुःख का अनुभव नहीं कर सकता। आत्मा ही कर्मों का कर्त्ता है और वही उनके फलों का उपभोक्ता है अतः पुरुष के रोग भी आत्मज हैं।"

२ "शरलोमा ऋषि ने मौद्गल्य ऋषि के वाक्यों का यह कहते हुए कि दुःख द्वेषी आत्मा कभी भी अपने को दुःखों से संयुक्त नहीं कर सकता, खण्डन किया और कहा कि शरीर की उत्पत्ति तथा विकार का कारण 'मन' है क्योंकि सत्व सञ्ज्ञक मन रज और तम गुणों से युक्त होता है और "रज तम" परीत मन शरीर और उसके विकार का कारण है।

१. "किन्नु स्यात्पुरुषो यज्जस्तज्जास्तस्यामया स्मृताः"—च० सू०

३. इस पर वायुविद ने कहा कि मन केवल कारण नहीं बन सकता। क्योंकि शरीर के बिना शारीरिक रोगों की उत्पत्ति कैसे हो सकती है और मन की स्थिति भी शरीर के बिना असम्भव है। शरीर भौतिक है और इसकी उत्पत्ति रस से, अतः पुरुष तथा पुरुष के विकार (रोग) रसज हैं।

४. हिरण्याक्ष ने कहा कि पुरुष तथा पुरुष के रोग रसज नहीं हो सकते। अतीन्द्रिय मन भी रसज नहीं हो सकता। पुरुष षड्धातुज है. अतः उसके रोग भी शब्दादि के विप्रतिपन्न होने से उत्पन्न होते हैं।

५. इस पर कौशिक ऋषि ने कहा कि बिना माता पिता के मनुष्य की उत्पत्ति असम्भव है अतः इसके सभी रोग मातृज तथा पितृज होते हैं।

६. भद्रकाप्य ऋषि ने कहा कि अंधे का पुत्र अंधा, लंगड़े का लंगड़ा नहीं देखा जाता, कुष्ठी का पुत्र कुष्ठी, ही निश्चय रूप से देखा नहीं गया है। अतः सभी रोग माता पिता से हों ऐसा कहना उचित नहीं। क्योंकि पुरुष कर्मज है अतः उसके विकार (रोग) भी कर्मज हैं।

७ इस पर भारद्वाज ऋषि ने कहा कि ऐसा नहीं हो सकता क्योकि ऐसा मानने पर यह समस्या उपस्थित हो जायेगी कि पहले 'कर्त्ता' है कि कर्म। कर्त्ता के न किए कर्म का फल कभी नहीं देखा गया। पुरुष तथा रोगों के कारण स्वभाव हैं। खर, द्रव, चल, उष्णता आदि भूम्यादि के गुण स्वभाव से ही उत्पन्न होते हैं।

८ कांकायन ऋषि ने इसका खण्डन यह कह कर किया कि यदि इसे मान लिया तो किसी भी कार्य को आरम्भ करने का कोई फल ही न होगा। जब स्वभाव से ही सब कार्यों की सिद्धि और असिद्धि होने लगे तो अमित सकल्प स्रष्टा के चेतन अचेतन जगत और सुख दुःख के उत्पत्ति का कोई अर्थ ही न रह जायगा अतः पुरुष तथा रोग का उत्पत्ति का कर्त्ता ब्रह्मा (स्रष्टा) ही है।

९ इस पर भिक्षुरात्रेय ने कहा कि यह सब ठीक नहीं। पुरुष कालज है अतः उसके रोग भी कालज हैं। ससार का सब कार्य काल वश होता है अतः सर्वत्र सबका कारण काल है।

इस प्रकार ऋषियों के वाद-विवाद को सुन भगवान् पुनर्वसु आत्रेय ने कहा कि इस तरह पक्षसंश्रृत वाद-विवाद से तिलपीडक कोल्हू के बैल के समान कोई निर्णय होना असम्भव है आप लोग इन वाद-विवादों को छोड़ कर आध्यात्मानुचिंतन कीजिये। "जिन जिन भावों से शरीर के सम्पत् अर्थात् प्रशस्त गुणों का उदय होता है उन्हीं भावों की विपरीतता से अर्थात् विपत् अर्थात् अप्रशस्त गुणोत्पादक भावों से रोगों की उत्पत्ति होती है।"[१] आत्रेय भगवान् के इस उपदेश को सुन कर काशीपति आदि महर्षियों ने प्रश्न किया कि भगवन। संपन्निमित्त तथा विपन्निमित्त

१. "येषामेव हि भावानां सम्पत् संजनयेन्नरम्।
तेषामेव विपद्व्याधीन् विविधान्समुदीरयेत्॥ (च० सू० २५)

आहारों का ज्ञान कैसे होगा ।-भगवान आत्रेय ने कहा कि हिताहार पुरुष के सभी भावों को बढ़ाने वाला होता है और अहिताहार उसका ह्रास करने वाला अर्थात् व्याधि को उत्पन्न करने वाला होता है। "जिस आहार के उपयोग से शरीर तथा शरीर के धातु अपने प्रकृत अवस्था में तो (सम अवस्था में) प्रकृत रूप से कार्य करें वह हिताहार है और इसके विपरीत अहिताहार कहलाता है।[१]"

यद्यपि हिताहिताहार का विवेचन करते हुए कुछ आचार्यों ने यह भी कहा है कि, जो वायु के लिये पथ्य होता है वह पित्त के लिए अपथ्य होता है अतः एकान्त हित कोई आहार या द्रव्य नहीं हो सकता। परन्तु भगवान धनवन्तरि ने इसका खण्डन करते हुए कहा है कि द्रव्य स्वभाव से और संयोग से प्राणियों के लिये हित और अहित हुआ करते हैं अतः हिताहार और अहिताहार तथा हिताहिताहार की कल्पना अनुचित नहीं।[१] बहुत से ऐसे द्रव्य हैं जो मनुष्य के लिए एकान्त हित होते हैं जैसे—जल, घृत, दूध, चावल प्रभृति। और एकान्त अहित जैसे अग्नि क्षार विष आदि। इनमें बहुत से ऐसे भी हैं जो संयोग और संस्कार से हित और अहित बन जाते हैं। जो द्रव्य संयोग तथा संस्कार से अहित बन जाते हैं उनका वर्णन अगले अध्याय में होगा।

१. "यदाहारजातमग्निवेश समांश्चैव शरीरधातून् प्रकृतौ स्थापयति, विषमांश्च समीकरोति इत्येतद्धितं विद्धि, अहितं विपरीतमित्येतद्धिताहितलक्षणमनपवादं भवति।" (च० सू० २५)

हिताहित अन्न तथा भोजन (आहार) का विवेचन अर्वाचीन चिकित्साविज्ञों ने भी शरीर की आवश्यकताओं को दृष्टिकोण में रखते हुए किया है। शरीर जिन २ मूलतत्त्वों के समवाय से निर्मित हुआ है उन २ तत्वों का उपयुक्त मात्रा में हमारे भोजन में रहना परमावश्यक है। शरीर में प्रायः १८ मूलतत्त्व पाए जाते हैं। इनमें कार्बन नाइट्रोजन, ऑक्सिजन, हाइड्रोजन, गंधक, स्फुर (फौस्फेट) सामुद्र (सोडियम) पलाश (पोटाशियम) खट (कालशियम) मग्न (मैग्नेशियम) लोह, हर (क्लोरिन) तथा योद[1] ये १३ प्रधान हैं। इनके अतिरिक्त अन्य पांच तत्व मनुष्य शरीर में पाए जाते हैं जिनका नाम—प्लव[2], मंज[3], ताम्र शीस और रजत है

यद्वायोः पथ्यं तत् पित्तस्यापथ्यमित्यनेन हेतुना न किञ्चिद् द्रव्यमेकान्तेन हितमहितं वाऽस्तीति केचिदाचार्या ब्रुवते। तत्तु न सम्यक्, इह खलु यस्माद् द्रव्याणि स्वभावतः संयोगतश्च एकान्तहितानि एकान्ताहितानि हिताहितानि च भवन्ति। तत्र एकान्त हितानि जातिसात्म्यात् सलिलघृतदुग्धौदनप्रभृतीनि। एकान्ताहितानि दहन पचन मारणादिषु प्रवृत्तान्यग्निक्षार विषादीनि। संयोगादपराणि विषतुल्यानि भवन्ति।" (सुश्रुत ५.२०)

1. Iodine 2. Fluorine 3. Manganese.

"एकान्तेनाहिताहितम्"—जिस द्रव्य का हितकर या अहितकर कार्य किसी के ऊपर निर्भर न होकर केवल अपने ही गुणों के अनुसार सर्वकाल और सर्वावस्थाओं में हुआ करता है वह द्रव्य एकान्तहित या एकान्त अहित होता है।

इनमें प्लव नाम का मूल तत्त्व मानव शरीर में अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में पाया जाता है। और अन्य चार कभी कदाचित ही देखने में आते हैं रक्त में नत्र और प्राणवायु नाम के मूलतत्व कभी कभी अन्य मूल तत्वों से पृथक् भी दिखाई देते है।

मानव शरीर मे उक्त १८ मूल तत्त्वों का समवाय विभिन्न रूप मे होता है। इन समवायों को मुख्यतया दो विभागों म विभक्त किया गया है। १ सेन्द्रिय (Organic) और २ निरीन्द्रिय (Inorganic)। इनमे से ३ सेन्द्रियक वे हैं जिनमे कार्बन (Carban) नामक मूलतत्त्व विद्यमान रहता है। और कार्बन मूलतत्त्व विहीन पदार्थ निरीन्द्रियक होते है। इन स्थूल भेदों के अतिरिक्त नैसर्गिक रूप से पाये जाने वाले सेन्द्रिय पदार्थों मे तीन सूक्ष्म भेद और होते है जिन्हे क्रमशः शर्कराजातीय पदार्थ (कार्बोहाइड्रेट), मेद (फैट) और अमिद्या (प्रोटीन या प्रथिन) कहते हैं। इन सबकी पूर्ति अन्न द्वारा होती है। अन्न के तथा मानव शरीर के पारस्परिक सम्बन्ध के नाते, अन्न की प्रधान उपयोगिता मानव जीवन के लिए आवश्यक है–यह सिद्ध हो जाता है। इस कार्य्य कारण सम्बन्ध को पहिचानते हुए वैज्ञानिकों ने अन्न की उपयोगिता को और भी अधिक विशद करने के लिए उसकी परिभाषा इस प्रकार की है कि,–(१) जो शरीर की वृद्धि और जीर्णोद्धार में सहायता करे। (२) स्नायविक तथा अन्यान्य शारीरिक शक्ति को काम करने में मनुष्य को कार्यक्षम बनाते हुए उष्णता पहुँचाने के हेतु ईन्धन रूप पदार्थ पहुंचाते रहे और (३) इन

दोनों ही कार्यों को सतत और सम्यक् रूप से चलाने के लिये विभिन्न नियामकों (Regulation) की पूर्ति करता रहे, वही शास्त्रीय भाषा में "अन्न" कहलाता है।

हमारे भोज्य पदार्थों में तेल, घृत, शक्कर, लवण आदि बहुत ही कम पदार्थ ऐसे होते हैं जो यथार्थ में रासायनिक दृष्टि से उनके वास्तविक स्वरूप में ही देखने को मिलते हैं। इनके अतिरिक्त शेष जितने भी पदार्थ हैं उनमें से अधिकांश प्रायः दो से लेकर सात तक रासायनिक पोषक पदार्थों से संयुक्त होते हैं। स्थूलतः उनका वर्गीकरण इस प्रकार है:— १) प्रोटीन समूह (२) मेद (३) कार्बोहाइड्रेट (४) निरीन्द्रिय क्षार ५) सुगन्धित अर्क और परिमल द्रव्य समूह (Flavouring) (६) जीवन सत्व (Vitamin) (७) जल। प्रस्तुत ग्रन्थ में दिये गए अन्नों की सारिणियों को देखने से इनकी यथार्थ कल्पना का पाठकों को पता लग जायेगा। इन पोषक रासायनिक पदार्थों का जो प्रमाण हमारे भोजन में होता है उसी हिसाब से उपरोक्त तीनों शारीरिक कार्य्य होते रहते हैं। उदाहरणार्थ—शारीरिक वृद्धि और उसके जीर्णोद्धार के लिए प्रमुखतया अन्न पदार्थों में प्रोटीन समूहों, जल और क्षारों (लवणों) की आवश्यकता होती है। ऊष्मा और शक्ति के लिए कार्बोहाइड्रेट और मेद की आवश्यकता पड़ती है। और शरीरस्थ कार्यों के नियन्त्रण के लिए जीवनसत्व और लवणों की आवश्यकता होती है। इन कार्यों को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिये जो मात्रा उपयुक्त हो, उस मात्रायुक्त आहार या भोजन को हिताहार या हित भोजन कहते हैं।

अन्न के पोषक घटक

अन्न के प्रमुख तीन उपयोग हैं। १. शारीरिक विकास और उसके विभिन्न अवयवों तथा तन्तुओं के जीर्णोद्धार की दृष्टि से। २. कार्यकारिणी शक्ति और ऊष्मा की सतत पूर्त्ति करने वाले ज्वलन पदार्थों का संग्रह करने की दृष्टि से। ३. चयापचय पर नियंत्रित करने वाले अन्न पदार्थ प्राप्त करने की दृष्टि से। अन्न के बहुत ही थोड़े पदार्थ ऐसे होते हैं जो नितांत रसायनिक और पृथक् घटकों के रूप में होते हैं। बहुतों में दो से सात तक पोषक घटक होकर एक आठवाँ घटक ऐसा होता है जो पोषण के लिये अनुपयुक्त होता है। यह आठवाँ पदार्थ सिट्ठी या फोक है।

अन्न के संबन्ध में उक्त उद्देश्यों की पूर्त्ति इन घटकों द्वारा विभिन्न प्रकार से हो सकती है। जिनमें से पहला उद्देश्य वृद्धि, विकास और जीर्णोद्धार का कार्य्य मुख्यतः प्रोटीन, लवण और जल द्वारा सिद्ध होता है। दूसरा उद्देश्य मेद तथा कार्बोहाइड्रेट द्वारा सिद्ध होता है। शरीर के लिये आवश्यक शक्ति और उष्णता देने का काम प्रायः ८५ से ९० प्रतिशत इन्हीं द्वारा होता है, शेष १०, १५ प्रतिशत भाग प्रोटीनों द्वारा पूरा होता है। तीसरा-नियंत्रण का कार्य जीवनसत्व (Vitamins) द्वारा पूरा होता है। है। अर्क और स्वादिष्ट पदार्थों से अन्न का स्वाद बढ़ कर पाचकरस पैदा होता है जिस से भूख ख़ूब लगती है और मन प्रसन्न रहता है। जल का संयोग सभी पदार्थों के लिये आवश्यक होता है। शरीर का जलमय भाग ही ७५ प्रतिशत होती है।

अन्न की उपादेयता सम्बन्धी कसौटी

उष्णता पैदा करने के लिये किसी विशेष प्रकार का अन्न नहीं खाना पड़ता। शरीर धातुओं का चयापचय होने समय उष्णता उत्पन्न होती है, जिसका उपयोग शरीरके तापमान रक्षण के लिये किया जाता है। प्रोटीनों से शरीर धारण सम्भव होता है तथा आहार में इनका अभाव होने से कुछ ही सप्ताह में मनुष्य को मृत्यु हो जाया करती है। उक्त घटकों का पारस्परिक सम्बन्ध जानने की चार निम्न कसौटियां हैं:—

(१) रासायनिक—उक्त पोषक घटकों का आहार में क्या परिमाण है।

(२) भौतिक—उनसे कितना काम (शक्ति और उष्णता) निकल सकता है ?

(३) प्रकृतिविज्ञानात्मक—उनके पाचन और शोषण सम्बन्धी कार्य सुलभ रूप से होते तो हैं ?

(४) आर्थिक—उत्तम गुण धर्म का अन्न गरीब समाज को सहज ही में प्राप्त हो सकता है या नहीं ?

१. रसायनिक

प्रयोगशाला में घटकों का परिमाण निकालना सम्भव होकर उनकी आदर्श परिमाणों से तुलना करते हुए उनके सम्बन्ध में पूर्णता और अपूर्णता का निश्चय किया जा सकता है।

२. भौतिक कसौटी

प्रोटीन, मेद और कार्बोहाइड्रेटों के उष्णांक निश्चित होकर (उनका उल्लेख पहले किया जा चुका है।) अन्न पदार्थ में उक्त तीनों घटकों का परिमाण देख कर उनके उष्णांक कायम करते हैं। इस से समूचे आहार में इष्ट उष्णांक है या नहीं, मालूम होता है। मेदों मे पर्याप्त मात्रा में उष्णांक इकट्ठे मिलते हैं, यह सत्य है। परन्तु इस प्रकार पाए जाने वाले उष्णांक से शरीर का विकास भलीभांति न हो सकने के कारण विभिन्न घटकों का परिमाण देखना परमावश्यक हो जाता है।

३. प्राकृतिक कसौटी

अन्न में भोज्य घटक होने चाहियें; उसमें आवश्यक उष्णांक की मर्यादा होनी चाहिये तथा उसका कुछ भाग सुपच शोषणीय तथा तृप्तिकर हो; और कुछ भाग अपचनीय भी होना चाहिए। शोषणीय भाग में प्रविष्ट प्रोटीनों का रूपान्तर शरीर प्रोटीनों में जितना ही अधिक हो उतना ही अच्छा है। क्योंकि, उसी पर उनका पोषण निर्भर करता है। अतः ऐसे प्रोटीन-युक्त पदार्थ अन्न घटकों में विशेष रूप से होने चाहियें। साथ ही उन अन्न घटकों में जीवन सत्व भरपूर हों। अन्न की सीठ्ठी की गणना भी रासायनिक तत्त्वों में होती है, क्योंकि जानवरों को उससे शक्ति प्राप्त होती है। किन्तु मनुष्य के उदर में उसका पाचन न होने से वह उसके लिये बेकार होता है। पचनीयता का निश्चय करते समय

१. (Callorie.)

दो बातें विचारणीय होती हैं—(१) पाचन के लिये आवश्यक समय, (२) पाचक रसों की क्रिया होकर पचा हुआ भाग। जठर से अन्न आगे बढ़ने में जो समय व्यतीत होता है उस पर पहले प्रकार की पचनीयता की निश्चिति होती है; मांस के लिये ३–४ घण्टे लगते हैं; दूध के लिये २–३ घण्टे पर्याप्त होते हैं; भात आदि के लिये ४–५ घण्टे लगते हैं। उन पर जाठर रस आदि की क्रियाएं होकर उनके शोषण योग्य सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण बन जाते हैं। आहार का परिमाण निश्चित करते समय अन्न की पचनीयता पर ध्यान देना चाहिये। (२) दूसरे प्रकार में अन्न के स्वरूप के कारण उस पर जाठर रस आदि अपनी क्रिया करने में समर्थ नहीं होते। दाल आदि बहुत से ऐसे अन्न पदार्थ हैं जो अच्छी प्रकार गल जाने पर भी अगर साबुत रहे और भली भांति चबाये न जायें तो तो मल के रास्ते ज्यों के त्यों निकल जाते हैं। इसका कारण यह है कि जाठर रस उनमें प्रवेश नहीं कर पाता खाते समय जल्दबाजी करने या अधकचा अन्न खाने से इस तरह का नुकसान कई बार होता है। दाँतों की अव्यवस्था भी इस प्रकार के नुकसान का कारण होती है।

शोषणीयता

अन्न पदार्थों में पाये जाने वाले विभिन्न घटक, उन पर जाठर रस आदि की क्रिया होने के पश्चात् कहां तक सोखे जाते हैं इसका प्रमाण नीचे दिया गया है। शोषणीयता की जाँच करने की पद्धति में विश्लेषण द्वारा आहार के घटक निकाल कर उनसे मल के घटक बाद देते हैं। शेष भाग अशोषणीय समझा जाता है।

मिश्र आहार के शोषणीयता के प्रमाण।

पदार्थ	प्रोटीन प्र० श०	मेद प्र० श०	कार्बोहाइड्रेट प्र० श०	प्राप्त होने वाले उष्णांक प्र० श०
दूध	९७	९५	९८	९३
शूकधान्य (चावल, गेहूँ इत्यादि)	८५	९०	९८	९१
दाल (शमीधान्य)	७८	९०	९७	८३
शक्कर		...	९८	९८
शाक सब्जी	८३	९०	९५	९९
फल	९५	९०	९०	८८
मछली-मांस	९७	९५	९८	८७
अण्डे	९७	९५	९८	८९
औसत परिमाण	९२	९५	९८	९१

प्रोटीन

मांसाहार के प्रोटीन प्रायः सारे के सारे सोख लिये जाते हैं। शाकाहार के प्रोटीन व्यर्थ निकल जाते हैं। उदाहरणार्थ— गाजरों में ४०, आलुओं में ३०, धान्यों मे २०, चने में १७, और दूध मे ७ फीसदी प्रोटीन का नुकसान होता है।

मेद

पतले (हल्के) तेल विशेष शोषणीय होते हैं। मेद प्रायः सभी सोख लिये जाते हैं। ऐसे शोषणीयता की मर्यादा भी हुआ करती है। दैनिक आहार मे १५० ग्राम (५॥ औंस) मेद होन से वह सोख लिया जाता है; किन्तु इससे अधिक होने से उसका पाचन होने पर भी शोषण का परिमाण उत्तरोत्तर न्यून होता जाता है।

कार्बोहाइड्रेट

पैष्ट समूह सबसे अधिक सोखे जाते है। शक्कर तो सब की सब घुल मिल जाती है। आहार मे चावल का परिमाण नाम मात्र को मल पैदा करता है।

तृप्तिदायकता

(१) जठर में अन्न जितने अधिक समय तक हो, (२) जाठर रस का जितना अधिक सर्जन हो तथा (३) आहार का परिमाण तथा उसमें पचने लायक जितने अधिक घन पदार्थ हों उतनी ही अधिक तृप्ति उनके उपभोग करने वाले को होती है।

दूध, मक्खन, घृत, शक्कर, आलू, अण्डे, मांस आदि पदार्थ ऐसे हैं जिससे शीघ्र तृप्ति होकर वह दीर्घ काल तक टिकते हैं।

सिट्ठी का प्रमाण

आँतों के कार्य्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये इसका अन्न में होना आवश्यक है। इसके रहने से आँतों का आकुंचन भली भाँति होकर सम्पूर्ण मल के आगे सरकने में सुविधा होती है। इसके अभाव में मल शुष्क होकर मलावरोध पैदा कर देता है। साथ ही इसका अधिक होना भी उचित नहीं।

पोषण क्षमता

अन्न के प्रोटीन जितने परिमाण में सरलता पूर्वक शरीरस्थ प्रोटीनों में रूपान्तरित हो सके उतना ही श्रेयस्कर है। प्रोटीनों का जव मूल्य (Biological value) उनमें बसे हुए अमाएनो-अम्ल की संख्या और परिमाण पर निर्भर करता है। जेलेटिन मक्के में पाये जाने वाले प्रोटीन पोषण की दृष्टि से शून्य मूल्य रखते हैं मांसाहार के प्रोटीन इस दृष्टि से अधिक मूल्यवान् होते हैं, इसका कारण उस के विपुल और विविध अमाएनो-अम्ल हैं। प्राणिज प्रोटीनों में जैसे अच्छे बुरे प्रोटीन होते हैं वैसे ही उद्भिज प्रोटीनों में भी हुआ करते हैं। ऐसी कोई बात नहीं कि प्राणिज प्रोटीन के बिना काम नहीं चल सकता। नीचे दी हुई सारिणी में किसी एक अन्न पदार्थ में पाये जाने वाले प्रोटीनों का रूपान्तर शरीर प्रोटीनों में कितना प्रमाण रखता है

इसकी तालिका दी हुई है। उदाहरणार्थ मूंग के १०० ग्राम (लगभग २ छटांक) प्रोटीन से ५२ ग्राम शरीर प्रोटीन तैयार होती है। शेष ४८ ग्राम शरीर द्वारा सोखे जाने पर भी वह निरुपयोगी होने के कारण उनका अपचय होकर वृक्कों द्वारा मूत्र आदि के रूप में बाहर निकाल दिए जाते हैं। यह श्रम शरीर को अकारण ही होता है। दूध में पाया जाने वाला (केजीन) प्रोटीन सबका सब उपयोगी होता है अतः ऐसे पदार्थों का जैव-मूल्य शत प्रतिशत देते हैं।

प्रतिशत के हिसाब से अन्न पदार्थों के जैव मूल्य

दूध-केजीन	१००
मांस मछली	९८
गेहूँ	८६
ज्वार बाजरा	८३
चावल	७५
सोयाबीन-पिष्ट	५८
सोयाबीन पका हुआ	५०
मूंग	५१
मसूर-दाल	५२
चना	४८
बैंगन	७१
शाक सब्जी	६०–६५

सम भाग मिश्रण

चावल + ३५ भाग अरहर = ७६
" + " + उड़द = ३७
" + " + सायाबीन = ८६
" + ' + चना = ८०
" + " + मूंग = ६०
" + सोयाबीन = ६८
" + चना = ६६
" + मक्खन रहित दूध = ८०

उक्त तालिका से यह स्पष्ट होगा कि यदि शाकाहारी दूध का समुचित सेवन करते रहें तो किसी भी पोषक तत्व की उन्हें कमी नहीं प्रतीत होगी।

कुछ लोगों के मत से उक्त जैव मूल्य निम्न प्रकार होते हैं— चावल–८६.३, आलू–७६., दाल–५४.६, गेहूँ ३६.२ मक्का २६.४। ऊपर के उदाहरणों से यह पता चलता है कि स्थानभेद से इन अन्नों के जैव-मूल्य में भी अन्तर होता है।

जीवन सत्व

यह पदार्थ आहारस्थ घटकों के चयापचय को सहायता प्रदान करता है। इनके आस्तित्व से शरीर के कार्य सुचारू रूप से चलते हैं, आरोग्य-सम्पन्न रहती है, और आधिव्याधि नहीं होने पाते। यह सूक्ष्म परिमाण में होते हुए भी यथेष्ट होते हैं

इनमें पांच मुख्य हैं। अ (A) ब (B) स (C) द D) और ई (E। लवण और जीवनसत्व देने वाले अन्न को संरक्षक अन्न (Protective food) कहते हैं। दूध, घृत, फल, फूल आदि सरक्षक अन्न हैं।

मनोऽनुकूलता

उक्त सभी बातों के विचारने के बाद यह विचारना परमावश्यक है कि उक्त गुण सम्पन्न भोजन, मन तथा अन्य संबन्धित इन्द्रियों को प्रसन्न करने वाले हैं या नहीं। क्योंकि सर्वगुण सम्पन्न औषध भी यदि मनोऽनुकूल न हो तो वे शरीरोपयोगी नहीं होते।

४. आर्थिक कसौटी

यदि यह प्रतिबन्ध होता कि, आहार के सभी प्रोटीन अधिक मूल्यवान् हों तो सर्वसाधारण के लिये आर्थिक दृष्टि से इस प्रकार का भोजन कभी भी सम्भव नहीं हो सकता। उपयुक्त आहार वे तभी ले सकते जब उनके पास एतदर्थ पर्याप्त धन होता। भात में पाया जाने वाला उष्णैक यदि दूध से लेने लगें तो लगभग अष्टगुण खर्च करना पड़ेगा। ठीक यही हालत अन्य पदार्थों की भी है। आम प्रायः सभी जात के एक से ही उष्णैक देते हैं किन्तु लंगड़ा आम अपने स्वाद के कारण अधिक मूल्यवान् होता है। गरीबी के आहार (भोजन) में उपयुक्तता, उष्णैक और भाव तीनों की जानकारी होने से मनुष्य के भोजन खर्च में

काफी बचत की जा सकती है। एक पौण्ड शक्कर यद्यपि एक पौण्ड चावल की अपेक्षा अधिक उष्णांक देती है तथापि इसका अर्थ यह नहीं कि शारीरिक दृष्टि से शक्कर ही श्रेष्ठ है। चावलों में अन्य अपचनीय पदार्थ सीठ्ठी के रूप में काम आते हैं। ठीक इसी प्रकार शक्कर से मक्खन के बराबर उष्णांक प्राप्त हो सकते हैं किन्तु मक्खन में 'ए' जीवन सत्व (Vitamin A.) होने के कारण वह विशेष उपयोगी है। इन सब बातों से स्पष्ट है कि आहार समतोल बनाते समय, उष्णांक, समतोलता और खर्च तीनों पर ध्यान देना पड़ता है। आर्थिक दृष्टि से विचार करते समय यह भी देखना चाहिये कि अन्न में कितना भाग ग्राह्य और कितना भाग त्याज्य है। यह भाग छोड़े बगैर काम चल सकता है कि नहीं। इसके अतिरिक्त उसे सुपक्व करने में तथा परोसने में भी सावधानी रखने की आवश्यकता है।

आहार द्रव्य के गुरुत्व और लघुत्व का विचार

गुरुत्व और लघुत्व का विचार द्रव्य के स्वभाव तथा (उसके साथ ही साथ) संस्कार, मात्रा, उस पदार्थ के बनाए हुए विविध खाद्य प्रकार और काल इनका अतिक्रमण नहीं करता (अर्थात् द्रव्य का गुरुत्व और लघुत्व इन सब बातों पर निर्भर करता है) और ये बातें एक से एक बढ़कर होती हैं।[1] जो विशेष परिश्रम नहीं करते हैं, जिनकी जठराग्नि मंद है, जिनका स्वास्थ्य

---

१. "गुरु लाघव चिन्तेयं स्वभावं नाति वर्तते।
तथा संस्कार मात्राख्य कालांश्चाप्युत्तरोत्तरम्॥" (सु॰सू॰ ४६)

ठीक नहीं है। जिनका शरीर कोमल है, जो आराम तलब हैं उन मनुष्यों के लिये द्रव्यों की लघुता और गुरुता का विचार नितांत आवश्यक है और उन्हीं की दृष्टि से यहां गुरुता और लघुता का विचार अभिप्रेत है! जो बलवान् हैं जो कठिन पदार्थ सर्वदा सेवन करते हैं, जिनकी जाठराग्नि तीक्ष्ण है, जो हमेशा श्रम करते हैं उनके लिये यह गुरु लाघव चिन्ता अत्यावश्यक नहीं। ऊपर बताया जा चुका है कि पदार्थों का गुरुत्व और लघुत्व विशेष कर उनके संस्कार और काल पर निर्भर करता है। गुरु पदार्थ भी संस्कार से लघु और लघु पदार्थ भी संस्कार से गुरु हो जाते हैं-जैसे-धान की खील और सत्त का सिद्ध पिट्ठी। इसी प्रकार काल भी अपने संस्कार द्वारा द्रव्यों में लघुता और गुरुता उत्पन्न करते हैं जैसा नया धान्य गुरु और पुराना धान्य लघु होता है। कृतान्न ताजा लघु और बासी गुरु होता है। द्रव्यों के रस, गुण, विपाक, और वीर्य से भी द्रव्यों का गुरुत्व और लघुत्व जाना जाता है। ऐसे रस, गुण, विपाक और वीर्य वाले द्रव्य जो सुजर या सुपच हों वे लघु कहलाते हैं और जो दुर्जर या दुष्पच होते हैं वे गुरु कहलाते हैं। द्रव्यों के दिरास का निर्माण द्रव्य के मूल भूत घटक पञ्च महाभूतों की संख्या तथा संयोग पर निर्भर करता है और उनके अन्दर जो रसादि बनते हैं उनका कार्मुक गुण उनके निर्मायक-घटकों पर निर्भर करता है। इस अग्निषोमीय जगत् के सभी पदार्थ अग्नेय और सौम्य भेद से दो प्रकार के होते हैं। उक्त षड्रस के अन्दर भी मधुर, तिक्त, कषाय सौम्य और लवणाम्ल कटु अग्नेय रस माने जाते हैं।[1]

१. (चरक सू २६)

और मधुराम्ल लवण स्निग्ध और गुरु तथा कटु तिक्त कषाय रूक्ष और लघु होता है। इस प्रकार जो द्रव्य मधुराम्ल लवण रस वाला होता है वह गुरु और जो कटु तिक्त कषाय रस वाला होता है वह लघु होता है। पञ्चभूतों में पृथ्वी और जल ये दो घटक जिन द्रव्यों में अधिक मात्रा में होते हैं वे गुरु और जिन में अग्नि आकाश वायु तत्त्व अधिक होता है वे लघु होते हैं।

हिताहार

शूक धान्यों में लोहितशाली (लाला चावल) मानव शरीर के लिये हिततम होता है। शमीधान्यों में मंग हिततम है जल में आन्तरिक्ष जल लवणों में सैंधव लवण, शाकों में जीवन्ती शाक, घृत में गाघृत दुग्धों में गो दुग्ध, स्थावर तैलों में तिल तैल कन्दों में आर्द्रक, फलों में मृद्वीका, इक्षु विकार में शर्करा. ये स्वभाव से ही मनुष्य के लिये हिततम है। इसी प्रकार जो मांसभक्षी हैं उनके लिये मृगमांसों में एण मांस, पक्षियों के मांस में लाव, बिल में रहने वाले जन्तुओं में गोधा, मछलियों में रोहित मत्स्य आनूप मृग वसा में वराह वसा मत्स्यवसा में चुलकी वसा. जलचर विहंगमों की वसा में पाकहंस वसा, विष्किरों में कुक्कट वसा, डाल पात खाने वालों की वसा में अजावसा, हिततम कहा गया है। शरीर धारण के लिये अन्न को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। आप्यायन कर्म के लिये जल सर्व श्रेष्ठ है। जीवन धारण कराने के लिये क्षीर सर्वश्रेष्ठ है। बृंहण कर्म में मांस और तर्पण में मांस रस

श्रेष्ठ बताया गया है। अन्नों में रुचि उत्पन्न करने के लिये लवण श्रेष्ठ है और अम्ल द्रव्य द्रव्यों में उत्तम समझा जाता है। बल को बढ़ाने के लिये कुक्कुट और वृष्य कर्म के लिये नक्ररेतस का उपदेश किया गया है। श्लेष्म और पित्त को शान्त करने के लिये मधु सर्वोत्तम होता है। घृत वात और पित्त को प्रशमन करने में सर्वश्रेष्ठ है। तैल वात और कफ को शान्त करने में सर्वश्रेष्ठ है। वमन श्लेष्महरकर्मों में, और विरेचन पित्तहर कर्मों ये श्रेष्ठ है। वास्त्य वातहर कर्मों में श्रेष्ठ है। शरीर को मृदु करने के लिये स्वेद कर्म सर्वश्रेष्ठ होता है। व्यायाम शरीर को स्थिर करने में सर्व श्रेठ है।

पथ्य

समान कारी अर्थों या भावों में वही श्रेष्ठ है, जो शरीरके तत्तद् अवयवों या धातुओं के कार्य्य संचालन या पूर्ति में श्रेष्ठ हों।[२] वही पथ्य है जो शरीर के मार्गों के लिये अनपेत अर्थात् अनपकारक हो और मन को प्रसन्न करने वाला हो।

आहार-विचार

शरीर पोषण के हेतु छः बातों पर परिमित दृष्टि रखनी पड़ती है—(१) अन्न में प्राप्त होने वाले उष्णौक, (२) प्रोटीन समूह और उसके ओमायनो अम्ल, (३) लवण समूह, (४) जीवन सत्व, (५) शरीर से उक्त चारों के पारस्पारिक सम्बन्ध तथा (६)

२. "समान कारिणो येऽर्थास्तेषां श्रेष्ठस्य लक्षणं,ज्यायस्त्वं कार्यकारित्वे।"
पथ्यं पथोऽनपेतम् यद्यच्चोक्तं मनसः प्रियम्।"(च० सू० २५)

शरीर में पोषण के कारण दिखाई देने वाले गुण दोष। इसके साथ इस बात का भी ध्यान रखना परमावश्यक है कि आहार में उक्त आवश्यक भोज्यांशों की मात्रा परिमित अर्थात् आवश्यकतानुसार ही हो। किसी एक कमी से उस अंश में होने वाली शारीरिक पुष्टि या जीर्णोद्धार नहीं हो सकता। आहार के तीन उपयोगों को भूलना नहीं चाहिये—(१) बाढ़ और जीर्णोद्धारके लिये प्रोटीन (२) ऊष्मा के लिये मेद और कार्बोहाइड्रेड, तथा (३) नियंत्रण और विकास के लिये जीवन सत्व, लवण, और जल। अतः (१) दैनिक एक ही आहार में विभिन्नता होनी चाहिये, (२) उत्कृष्ट प्रोटीनों से समृद्ध पदार्थ होने चाहिये, (३) 'सी' सत्व की प्राप्ति के हेतु फल और सब्जियां होनी चाहिये तथा (४) दूध में कमी न हो। आर्थिक विनिमय का बंटवारा क्रमांक २, ३ और ४ पर समान रूप से करने से उत्कृष्ट प्रकार का शास्त्र-सम्मत आहार प्राप्त होता है।

आहार में से दोषों को दूर करने का उपाय

संसार का अधिकांश मानव-समाज प्रमुखतया धान्यजीवी है; क्योंकि, एक तो वे सस्ते होते हैं दूसरे आहार का प्रायः एक तिहाई हिस्सा धान्यों का हुआ करता है, जिनमें चावलों का व्यवहार मुख्य है। पंजाब और संयुक्तप्रांत में गेहूँ की प्रमुखता है। यदि चावलों का चोकर न निकाला जाय तो गेहूँ और चावल में विशेष अन्तर न रह जाय, धान्य का आधा हिस्सा बिना चोकर निकाले खाने के काम में लाया जाय। धान्यों में ऐसे घटक हैं

ही नहीं जिन्हें अनिष्ट कहा जा सकता है, किन्तु जिन घटकों की खास तौर पर आवश्यकता होती है वह जरासी असावधानी से उनमें नहीं आने पाते—यह ध्यान में रखना चाहिये। यदि अधिक दृष्टि से धा यों का ही सेवन करना हो तो वह अखण्ड लिये जायें तथा खट लवणों (Calcium Salts) और ए० बी० सी० नामक जीव। सत्त्वों के लिये शाक सब्जियों और दूध का व्यवहार अवश्य किया जाय। आजकल (वैज्ञानिक युग में) रासायनिक विश्लेषण पर अधिक जोर दिये जाने के कारण यह धारणा-सी बैठ गयी है कि अन्न के घटक सम्यक् प्रमाण में दिये जाने से सारा काम बन सकता है। परन्तु अब कुछ दिनों से उन घटकों से परिपूर्ण नैसर्गिक अन्न पदार्थों का सेवन करने की ओर लोगों का झुकाव हुआ है। पोषण शास्त्र का उद्देश्य यह नहीं है कि लोगों को सत्त्व और लवण समूह खरीदने के लिए बाजार में भेजा जाय अपितु, ऐसे अन्न पदार्थ खरीदने के लिये, जिनमें वे घटक मौजूद हों। उदाहरणार्थ आगे बताए हुए कृत्रिम लवणों का प्रतिदिन उपयोग करने की अपेक्षा उनसे युक्त अन्न पदार्थ सेवन करना विशेष श्रेयस्कर है।

अब एक और महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि किसी प्रान्त के अत्यन्त सस्ते अन्न के पैदावार पर जोर दिए जाने से किसी तरह का नुक्सान हो सकता है या नहीं? लोगों की प्रायः यह प्रवृत्ति हुआ करती है कि गेहूँ, चावल, सांवा, ज्वार, बाजरा आदि शूक धान्य जो उनके प्रदेश में पैदा होते हैं सेवन किया जाय। ऐसा करने से रोग की सम्भावना न भी हुई तो भी किसी जाति के अन्न के एकान्त सेवन से तथा अधिक सेवन से उसका बुरा प्रभाव

होता ही है। किन्तु आहार में यदि समुचित परिमाण में रक्षक पदार्थ मौजूद हो तो उससे कोई नुक्सान नहीं हो पाता। यही कारण है कि उक्त धान्यों को विशेष दोष नहीं दिया जाता।

गेहूँ आहार अन्नों में मुख्यतः मेद का अभाव होता है। यह मक्खन, घी, तेल आदि से दूर किया जा सकता है। 'ए' सत्व की प्राप्ति के लिये उचित परिमाण में मक्खन आदि स्नेह पदार्थ होना चाहिये। 'स' सत्व की प्राप्ति के लिये शाक-सब्जी तथा फलों का होना आवश्यक है। खट लवणों की प्राप्ति भी इन शाक-सब्जियों से हो जाती है। चावल प्रधान आहार में भी उपरोक्त दोष होते हैं। यह अच्छी जाति का होना चाहिये। कुटे हुए चावलों में तैलांश कम होता है, अतः उनके साथ घी, मक्खन या कम से कम तेल का सेवन अवश्य करना चाहिये। घी तथा मक्खन "ए" सत्व विशेष होने के कारण उनका महत्व है। आहार में आधा या कम से कम चौथाई हिस्सा भी गेहूँ लेने से 'बी' सत्व की प्राप्ति अच्छी होकर आहार सुधर सकता है। गेहूँ के अभाव में पांच हिस्से चावल और एक हिस्सा दाल तो अवश्य ही होना चाहिये, किन्तु यह ध्यान रहे कि दाल ४—५ औंस से अधिक न खाई जाय। शेष दोष गेहूँ प्रधान आहार की तरह निकाल देने चाहियें। सांवां प्रधान आहार में चावल प्रधान आहार की अपेक्षा विशेष प्रोटीन होती है परन्तु इतनी नहीं जितना गेहूँ प्रधान आहार में हुआ करती है। साथ ही पोषण की दृष्टि से इनका महत्व मध्यम है। सांवे में चावलों की अपेक्षा तैलांश अधिक हुआ करता है, फिर भी घी-तेल की आवश्यकता रह जाती है। सांवे को विशेषकर बीस

कर खाते हैं जिससे उसमें 'ब' सत्व की मात्रा भरपूर होकर 'अ' सत्व कम हो जाता है। इसमें खनिज पदार्थ विशेष नहीं होते और खट लवण नाममात्र का होता है। इस आहार में अन्त्रजन्य कार्य सुचारु रूप से चलने के लिये जिस सिट्टी की आवश्यकता होती है वह बहुत ही कम होता है, अतः इसके साथ हरी शाक सब्जी का सेवन करना चाहिये।

आहार का आधा हिस्सा रक्षक अन्नों का होना चाहिये और उसमें दूध, फल, मूल, शाक-सब्जी आदि होने चाहियें। दूध का प्राकृतिक उपयोग अन्न के रूप में है। शेष सब पदार्थ प्रकृति ने अन्य उद्देश्यों से पैदा किये हैं। मनुष्य उसका उपयोग अपने वैयक्तिक स्वार्थ के लिये करता है। उनमें यदि किसी प्रकार की कमी हो तो यह दोष पदार्थों का नहीं। अतएव द्रव्यों का मिश्रण करके उन्हें उपादेय बनाना तथा उनमें परिमितता उत्पन्न करना यह मानवधर्म है। धान्यों का आधा हिस्सा चोकर लेना चाहिये। आवश्यक खट लवण तथा जीवन सत्वों के लिये हरी शाक-सब्जियां तथा दूध फलादि का व्यवहार आवश्यक है। समुचित तथा आहार से रोगादि कट कर, स्वास्थ्य सुधरता है, बुद्धि तेजस्विनी होकर चित्तवृत्ति उल्लसित और प्रफुल्लित होती है।

मिश्राहार की आवश्यकता

आदर्श आहार के लिये आवश्यक भोज्यांशों का तथा जीवन सत्वों का उचित मात्रा में होना परमावश्यक है। प्रत्येक अन्न पदार्थ में सभी आवश्यक भोज्यांशों का तथा जीवन सत्वों का मिलना दुर्लभ

है अतः इनको सुचारुरूप से सम्पन्न करने के लिये उपयुक्त और सुलभ आहारों का मिश्रण आवश्यक है। भात और रोटी में घृत का आयोजन तथा मात्रा में शीघ्र शक्ति लाभार्थ लड्डू आदि घृत पक्व अन्नों का आयोजन किया, उक्त पसन्दी का ही प्रकार है। संसार के आज तक के इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है कि, किसी ने एक ही पदार्थ खाकर देह धारण किया हो। अबोध शिशु दूध या स्तन पान पर ही रहते हैं परन्तु वह एक निश्चित कालावधि तक ही। और दूध ही एक ऐसा अन्न पदार्थ है जिसमें शरीर के पोषणार्थ सभी भोज्यांश उपस्थित रहते हैं।

चतुर्दश अध्याय

(अहिताहार वर्णन)

'विपरीतं तु अहितं विद्धि"

इसके पूर्वाध्याय में हिताहार का वर्णन किया गया है। इस वर्णन के विरुद्ध जो आहार होता है वह अहिताहार कहलाता है। क्योंकि हित आहार शारीरिक भावों का सम्पत् अर्थात् प्रशस्त गुण उत्पन्न करता है और अहित आहार अर्थात् अप्रशस्त आहार (शारीरिक भावों में विपन्नता) नाना प्रकार की व्याधियों को उत्पन्न करता है। अहिताहार बहुत ही व्यापक शब्द है। भोजन के योग्य समय के पूर्व या पश्चात् तथा मात्रा से कम या अधिक, एवं अनुपयुक्त भोजन पदार्थ, ये सब अहिताहार के अन्तर्गत ही है। क्योंकि समय के पूर्व भोजन करने वाला मनुष्य (पहले अन्न का पूर्ण परिपाक न होने से) शरीर हल्का न होने के कारण, अनेक रोगों का अथवा (क्वचित्) मृत्यु तक का शिकार होता है। समय के पश्चात् भोजन करने वाले मनुष्य का अन्न, वायु बढ़ कर जाठ-

राग्नि नष्ट हो जाने के कारण, कष्ट से पचता है. और दूसरी बार भोजन करने की इच्छा नहीं होती। मात्रा से कम सेवन किये हुए अन्न से तृप्ति नहीं होती और बल का नाश होता है। मात्रा से अधिक सेवन किया हुआ भोजन सुस्ती. भारीपन, पेट में गुड़-गुड़ाहट और कमजोरी करता है। जिस भोजन के देखने से घृणा मालूम हो और जिसके उपभोग से शरीर तथा मन में स्फूर्ति, बल तथा प्रसन्नता न हो वह भोजन अहित होता है।

जिस प्रकार अहित भोजन देश, काल, सयोग-संस्कार आदि से हित हो जाता है उसी प्रकार हित भोजन भी अनुचित देश, काल, सयोग और संस्कार से अहित बन जाता है।[1] जैसे— दुर्भोजन में रखी हुई द्राक्षा अम्ल तथा दोषयुक्त हो जाती है। बासी अन्न दुष्पच हो जाता है। मधु घृत समान मात्रा में विषवत् हो जाता है।[2] सत्तू के लघु होने पर भी उससे बनी हुई पिण्डी गुरु होती है। बहुत से ऐसे द्रव्य हैं जो स्वभाव से ही अहितकर होते हैं जैसे—विष, मद्य, आदि। शूक धान्यों में यवक, शमी धान्यों में माष, जल में वर्षाजल, शाकों में सर्षप शाक, दूध में भेड़ का दूध, स्नेहों में कुसुम्भ स्नेह, फलों में लकुच, इक्षु विकारों में फाणित, आदि स्वभाव से अहित होते हैं। अतः—

---

१. "हिताहितत्वेप्येकान्त नियमोऽस्मादनिश्चितः। मात्रा योग क्रिया देश-कालावस्थादिभेदतः॥" (वाग्भट)

२. "दुर्भोजनस्था द्राक्षाऽम्ला दोषला प्रजायते।" "भजते विषरूपत्वं तुल्याशे मधुसर्पिषी।" (वाग्भट)

"आहारा चारा चेष्टासुखार्थी प्रेत्य चेह च।
पर प्रयत्नमातिष्ठेत् बुद्धिमान् हित सेवने॥" (च० सू० ६)

[1]मानव आहार देह धातुओं का पोषक सामान्य गुणों वाला होता हैं अतः जो द्रव्य देह धातु के' विपरीत गुण वाले होते हैं

---

१ "देहधातु प्रत्यनीक भूतानि द्रव्याणि देहधातुभिर्विरोध मापद्यन्ते। परस्पर गुणविरुद्धा न्यकानिचित् संयोगात, संस्कारादपराणि, देश कालादिभिश्चापराणि, तथा स्वभावादपराणि द्रव्याणि" न मत्स्यान् पयसा सहाभ्यवहरेत्। उभय हि एतन्मधुरं, मधुर विपाकान्मःाभिष्यन्दि, माश्यानूपौदकानि पिशितानि च मधुगुडतिलपयरोमांसमूलकमारुषं विरूढ धान्यैर्वानैकध्यम-द्यात्तन्मूलं हि बाधिर्यान्ध्यं जाड्य वैकल्य मूकता मैनिमन्यमथवा मरणमवाप्नोति॥ (च० सू० २६)
न पौष्करं रोहिणीशाक कपोतान् वा सर्षपतैल भृष्टान् मधु पयोभ्यां सहाभ्यवहरेत्। तन्मूलं हि शोणिताभिष्यन्द धमनीप्रतिचया-पस्मारशङ्खक गलगण्डरोहिणीनामन्यतम प्राप्नोति अथवा मरणाय। तथा न मूलक लशुन कृष्ण गन्धार्जकसुमुखसुरसादीनि भक्षयित्वा पयः सेव्यं कुष्ठ बाधाभयात्। न जातुकशाक न च लकुचं पक्वं मधुपयोभ्य म् सहोपभोज्यम्। एतद्धि हि मरणाय। तदेव लकुच पक्व न माषसूप गुड सर्पिभिः सहोपभोज्यं वैरो धिकत्वात्। तथा आम्रातक मातुलुङ्ग लकुचकरमर्दिकत शठबदर-कोषाम्र भव्य जाम्बव कपित्थतिन्तिडीक रावताचोऽपनस नारिकेल दाडिम आमलक्यान्येवं प्रकाराणि चान्यानि द्रव्याणि सर्व चाम्लं द्रवमद्रवं च पयसा सह विरुद्धम्। इत्यादि (चरक सू० २६)

वे देह धातु से विरोध करते हैं अर्थात् उसके लिये अहित होते हैं। इनमें बहुत से ऐसे द्रव्य हैं जो परस्पर गुणविरुद्ध होने के कारण, तथा, संयोग, संस्कार, देश काल, मात्रा एवं स्वभाव से ही विरोधी होते हैं। जैसे—दूध के साथ मछली। मधु, गुड़, तिल, दूध, उड़द, मूली तथा मारिष शाक के साथ आनूप तथा ग्राम्य जन्तुओं के मांसः ये बाधिर्य, आंध्य, जाड्य, वैकल्य, मूकता भिन्नभिन्न आदि रोग उत्पन्न करते हैं पुष्कर तथा रोहिणी शाक सर्षप तेल में भून कर खाने से अहितकर होता है। इनके उपभोग से शोणिताभिष्यन्द, धमनी प्रतिचय, अपस्मार, शखक गलगण्डादि रोग उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार मूली, लशुन, सोहञ्जन आदि शाकों को खाकर दूध नहीं पीना चाहिये; क्योंकि इससे कुष्ठ रोग उत्पन्न होता है। कभी भी करीर, लकुच, कच्चा या पक्का मधु या दूध के साथ न सेवन करें; इनके उपयोग से शरीर के अन्दर विष प्रभाव होते हैं। पका लकुच (बड़हल) उड़द की दाल, गुड़ और घी के साथ विरोधी होता है। आमड़ा, बिजौरा नींबू लकुच, करौंदा, जम्बीरा, बेर, लुद्राम्र, चलता, कमरख, जामुन कैंत, इमली, अखरोट, कटहल, नारियल, अनार आदि सर्व प्रकार के अम्ल द्रव या अद्रव रूप दूध के साथ नहीं सेवन करना चाहियें। तथा कङ्गु, वरक, बनमुङ्ग, कुलत्थी, उड़द, लोबिया, भी दूध के विरोधी है। कुसुम्भशाक, शर्कराकृत मद्य, मैरेय, आदि एक साथ सेवन करना निषिद्ध है। हारियाल का मांस सर्षप तैल में भून कर खाने से पित्त विकार होता है। दूध पीने के बाद मन्थ कभी नहीं पीना चाहिये; क्योंकि इससे

कफ का प्रकोप होता है। पोइशाक तिल तैल से सिद्ध किया हुआ अतिसार उत्पन्न करता है इत्यादि।

बलाका वारुणि तथा कुल्माष के साथ विरोधी भोजन है। मयूर का मांस एरण्ड अग्नि से तथा एरण्ड तैल के योग से सिद्ध कर सेवन करने से मनुष्य की मृत्यु तक हो सकती है। उष्ण पदार्थ के साथ तथा उष्ण कर मधु का उपभोग करने से विषवत् प्रभाव होता है। पर्युषिता काकमाची विषवत् हो जाती है। इस प्रकार जो द्रव्य दोषों को उत्क्लेशित कर शरीर से नहीं निकलता; ऐसा आहार द्रव्य अहित कहलाता है।[1]

---

१. यत् किंचिद्दोषमुत्क्लेश्य न निहरति कायतः।
आहार जात तत् सर्वमहितायोपपद्यते ॥ (च० सू० २६)

पंचदश अध्याय

उपसंहार

यह बात भलीभांति प्रमाणित हो चुकी है कि किसी भी राष्ट्र का अस्तित्व न केवल उसकी सेना पर अवलम्बित है अपितु उस राष्ट्र की जनता के तथा समाज के आरोग्य पर भी है। यही कारण है कि गत महायुद्ध के बाद से सभी राष्ट्रों का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। सभी राष्ट्र अपने यहां की व्यष्टि तथा समष्टि के स्वास्थ्य को उन्नत करने में सतर्क हो रहे हैं। यह बात राष्ट्र के हित की दृष्टि से ही आवश्यक नहीं, वरन् जीवन के सभी लक्ष्यों की पूर्त्ति के लिये भी उतनी ही आवश्यक है। मानव जीवन का लक्ष्य धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों को प्राप्त करना है। इन्हें चतुर्वर्ग प्राप्ति कहते हैं। जो इन चतुर्वर्ग को प्राप्त कर लेता है वह अपना जीवन सफल समझता है। इन चारों की प्राप्ति के लिये भी, शरीर और मन का स्वस्थ रहना परमावश्यक है

क्योंकि रोग तथा अस्वस्थता इनकी प्राप्ति में सदा बाधक होती है।¹ आरोग्य-लाभ तथा शरीर और मन को स्वस्थ रखने का सर्वोत्तम तथा अचूक उपाय विधिवत् आहार-विहार है। शरीर तथा मन को प्रसन्न करने वाले आवश्यक पोषक पदार्थों का आहार मे आयोजन करना शरीर तथा मन के स्वास्थ्य को सम्पन्न करने के लिये परमावश्यक है। जिन २ राष्ट्रों ने इस पर ध्यान दिया है और एतदर्थ सतर्क हुए हैं, आज वे ससार में सबसे बली और सुखी हैं। परन्तु ये उन्नत राष्ट्र भी प्रकृति के अनुलङ्घनीय नियमों की अवहेलना कर विज्ञान-बल मात्र से इस कार्य को सम्पन्न करने में अब तक तत्पर रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि अनेक भौतिक सफलताओं के उपलब्ध होते हुये भी वे अपने चरम लक्ष्य से दूर हट गये हैं और इसकी प्रतिक्रिया रूप यत्र-तत्र उन राष्ट्रों में नैसर्गिक जीवन तथा प्रतिकार का बोलबाला होने लगा है। विज्ञान कोई बुरी वस्तु नहीं; परन्तु बहुत से ऐसे भी विषय हैं जिनका विज्ञान निपटारा नहीं कर सकता। विज्ञान से हमें सहायता अवश्य लेनी चाहिये; पर ऐसे स्थल पर जहां विज्ञान के अनुसार चलने से प्रत्यक्ष घाटा होता हो, वहां अपनी बुद्धि को तिलाञ्जलि दे देना अनुचित होगा। बहुत से ऐसे कार्य (आहार-विहार) हैं जो प्रत्यक्ष

---

१. "धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्। रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसोजीवितस्य च।" (चरक)

"आरोग्यं भोजनाधीनम्।" (का० सि० २.१)

तथा परोक्ष रूप में हमें हितकर जंचते हैं, पर वे विज्ञान सम्पन्न नहीं हो सके हैं। अतः वे इतने ही से सद्यः त्याज्य नहीं होंगे क्योंकि बहुत बार ऐसा देखा गया है कि बहुत से उपादेय पदार्थ पहले विज्ञान-सम्मत न होने पर कालान्तर में उस पर विज्ञान की भी मुहर लग गयी है और बहुत से विज्ञान-सम्मत ग्राह्य पदार्थ भी आगे चल कर उसी विज्ञान द्वारा त्याज्य माने गये हैं। अतः आरोग्य-लाभार्थ हमें अपने आहार-विहार को प्रकृति की कसौटी पर कस कर उन विज्ञान-सम्मत नियमों का पालन करना चाहिये जो हमारे अभीष्ट लाभ में सदा सहायक हों।

प्रकृति की उत्तमावस्था और पोषण की उपादेयता पहिचानने के ६ उपाय हैं। (१) जिसके सेवन से प्रौढ़ावस्था तक अनवरत विकास होता रहे, (२) समयानुकूल प्रजोत्पादन शक्ति उत्कृष्ट हो (३) बाल मृत्यु का प्रमाण अत्यल्प हो, (४) हड्डियों और दाँतों का पूर्ण विकास हो, (५) सभी प्रकार के रोग-संक्रमण से सदा रक्षा होती रहे, (६) तथा असमय जरा-वार्धक्य न हो। आजकल संसार के सभी उन्नत राष्ट्र समय २ पर लोगों के स्वास्थ्य की जाँच करा कर उसकी तालिका तैयार कराते हैं और उसमें सदा सुधार की योजना करते रहते हैं। शरीर के विकास की यथार्थ नींव गर्भावस्था में ही पड़ती है। अतः गर्भकाल तथा गर्भाधान काल में एतदर्थ सतर्क होना परमावश्यक है। गर्भाधान काल में देश काल का ध्यान रखना तथा आहार-विहार में सावधान होना परमावश्यक है। गर्भकाल में गर्भवती को सावधानी से रखना उसके आहार-विहार में उचित पोषण का

आयोजन करना परमावश्यक है। इसके बाद प्रसव काल में उचित व्यवस्था का होना और प्रसवान्तर जच्चा और बच्चे की उचित देख भाल आदि बड़े महत्व के विषय हैं।

दीर्घ-जीवन

मानव जीवन की तीन प्रधान एषणायें होती हैं[१]। (१) प्राणैषणा, (२) धनैषणा, (३) परलोकैषणा। इन तीनों में प्राणैषणा सर्वप्रथम एवं सर्वप्रधान है। क्योंकि इसके अभाव मे अन्य दोनों का होना असम्भव है। आयुर्वेद के सर्वोत्तम ग्रन्थ चरक संहिता मे सर्वप्रथम दीर्घ जीवन की जिज्ञासा की गई है यहा दीर्घ जीवन का अर्थ युगप्रमाणोचित आयु है। धर्म-अर्थ काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ हैं जिनकी प्राप्ति मानवजीवन का परम लक्ष्य है। इनकी प्राप्ति दीर्घ जीवन के बिना नहीं हो सकती। संसार के जितने कार्य हैं चाहे वे आध्यात्मिक हों या आधिभौतिक सब के लिये समय अपेक्षित है। यही कारण है कि संसार के सभी स्वतन्त्र तथा उन्नत राष्ट्र अपने यहा की आयु मर्यादा को बढ़ाने में सतत प्रयत्नशील हैं। भारत ही एक ऐसा राष्ट्र है जो परतन्त्रता की बेड़ी मे जकड़े रहने के कारण इसकी उपेक्षा कर, अपनी आयु मर्यादा का दिनोंदिन ह्रास करता जा रहा है। इस

---

१. "इह खलु पुरुषेणानुपहत सत्व बुद्धि पौरुष पराक्रमेण हितमिह चामुष्मिंश्च लोके समनुपश्यता तिस्र एषणा पर्येष्टव्या भवन्ति।"

(च० सू० ११)

आयु मर्यादा को बढाने के लिये निम्न कपितमय मुख्य बातों पर ध्यान देना परमावश्यक है।

माता पिता का स्वास्थ्य सुदृढ़ और दोषरहित हो

सन्तति का बहुत कुछ भविष्य माता पिता के स्वास्थ्य पर निर्भर करता है। स्वस्थ माता पिता के स्वस्थ रज वीर्य से सुकाल मे जो गर्भाधान होता है उससे प्रसूत सन्तति अविकृत स्वस्थ एव सर्वांगपूर्ण होती है। यह कहावत 'जिसकी जड (मूल) ही विकृत हो उसके शाख पात का कौन ठिकाना"—सर्वथा उचित है। यह प्रत्यक्ष है कि सुदृढ नींव वाली इमारत बहुत काल तक ठहरती है।

(२) स०वृत्तानुपालन

सदाचार एव स्वास्थ्य के नियमों के उल्लघन हमे नाना तरह की व्याधियों मे फसाते रहते हैं, जिससे हमारी आयु क्षीण होती है। सदाचार तथा स्वास्थ्य के नियम सभी स्वास्थ्य ग्र थों मे तथा सहिताओं में पाये जाते हैं। उनका सम्यक् अध्ययन कर तद्विद् पुरुषों से उनका आदेश लेकर,उसके अनुसार चलना चाहिये।

(३) शरीर का प्रतिवर्ष शोधन

आपको भलीभाति विदित है कि जितने भी कार्य्य करने वाले यन्त्र है उन्हे साल में एक बार ओवर-हौलिंग (उनके सभी पुर्जा को स्वच्छ करना) किया जाता है जिससे वे अपनी शक्ति पर्यन्त अबाध रूप से कार्य्य करते रहते हैं। इसी प्रकार

अहर्निश कार्य्य करने वाले इस शरीर-यन्त्र का भी वर्ष में एक बार शोधन, (पञ्च कर्म द्वारा) अन्तःपरिमार्जन और बहिःपरिमार्जन (अभ्यङ्गादि द्वारा) होना परमावश्यक है।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धि वर्णश्चास्य प्रसीदति।
बलं पुष्टिरपत्यं च वृषता चास्य जायते ॥
जरां कृच्छ्रेण लभते चिरं जीवत्यनामय ।
तस्मात् सशोधनं काले युक्ति युक्त पिबेन्नरः ॥

(चरक. सू. १६)

(४) उपरोक्त विधान से संशुद्ध एवं संसर्जित शरीर को परिपुष्ट करने के लिये रसायन सेवन

जिस क्रिया से शरीर के मूलभूत उपादान रसादि धातुओं की उत्तरोत्तर पुष्टि एवं वृद्धि होती रहे उसे रसायन कहते हैं। "(लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम्)"। आधुनिक विज्ञान भी अब इस बात को मानने लग गया है कि मनुष्य की आयु-मर्य्यादा बढ़ाई जा सकती है। पाश्चात्य जगत् को अब विश्वास होने लग गया है कि आयु की मर्यादा बढ़ाने का विधान जो प्राचीन ग्रन्थों में उद्दिष्ट है उन में सत्यता है। आयुर्वेद के पाठकों को यह भली-भांति मालूम है कि आयुर्वेद के सभी संहिता ग्रन्थों में रसायन तथा वृष्य विधानों का विस्तृत वर्णन है।

(५) समुचित पूर्त्ति

जीवन में आधा परिश्रम मनुष्य एक मात्र पेट के लिये करता है। समुचित अन्न की प्राप्ति के हेतु आयु का प्रायः आधा

समय और उतनी ही आय, व्यय करनी पड़ती है। व्यवहार में देखने में आता है कि मनुष्य अपनी आय का अधिकांश, अन्न की अपेक्षा बाह्याडम्बर में लगाता है अर्थात् अनावश्यक बड़े २ भवन-निर्माण में, अनावश्यक वेषभूषा में, तथा शरीर को नष्ट करने वाले अन्य उपभोगों में। निःसंदेह ये खर्च उन्हीं मनुष्यों के द्वारा होते हैं जिनके पास अधिक पैसे हैं। किन्तु इसका प्रभाव उन अन्य पुरुषों पर भी पड़ता है जिनके पास पैसे नहीं हैं। वे भी देखा देखी वेषभूषा तथा आदत वश नशीली वस्तुओं के उपयोग में पैसे खर्च कर देते हैं जिसकी वजह से उन्हें शरीर पुष्टि के लिये उपयुक्त अन्न प्राप्त नहीं होता। उपार्जन के लिये जितना श्रम करना पड़ता है और उस श्रम से जितना शारीरिक उपादानों का ह्रास होता है, यदि उसके अनुपात में, उसकी समुचित पूर्ति न हो तो आयु का ह्रास होना अनिवार्य है। भारत के बहुसंख्यक जनों की यहां दशा है। जो समर्थ हैं वे अनभिज्ञता एवं कुवृत्तिवश अनुपयोगी आहार-विहार से अपना स्वास्थ्य नष्ट कर आयु का ह्रास कर रहे हैं और दूसरे अभाव वश आयु का ह्रास कर रहे हैं। इसका एकमात्र उपाय राष्ट्र द्वारा उचित पारिश्रमिक की व्यवस्था और उसके उपयोग की उचित विधि का जनता में प्रचार कराना है। भगवान् आत्रेय ने यज्ञः पुरुषीय ध्याय में अग्निवेश को उपदेश करते हुए कहा है कि 'येषां हि विदितमाहारतत्त्वमग्निवेश गुणतो द्रव्यतः कर्मतः सर्वावयवशश्च मात्रादयो भावास्त एतदेवमुपदिष्टं विज्ञातुमुत्सहेरन्॥" अतः यह राष्ट्र तथा समाज का कर्तव्य है कि वे ऐसे व्यक्तियों द्वारा जो आहार के सभी ज्ञेय विषयों को जानते

हों, उनका उपदेश जनता में करा के और उन्हें उसके अनुकूल चलने के लिये वाध्य करें।

(६) विकारोन्मूलनेऽप्रमादः

मानव समाज को सुखी बनाने के लिये सदियों से रोगोत्पत्ति के पश्चात् उनके निवारणार्थ अनेक प्रयत्न हो रहे हैं और होंगे। एतदर्थ नाना प्रकार की औषधियों का आविष्कार हुआ है और हो रहा है। वर्तमान चिकित्सा पद्धतियों द्वारा इस कार्य्य में सफलता प्राप्त करने के लिये अहर्निश तत्त्वविशेषज्ञों की परस्पर होड़ लगी है। किन्तु प्रचलित चिकित्सा पद्धतियों ने अब तक रोगों को शमन करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया है। रोगोन्मूलन के बिना इस कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। रोगोन्मूलन शोधन-चिकित्सा द्वारा ही शक्य है। अतः स्नेह स्वेदोपपादित शरीर को पञ्चकर्म द्वारा शुद्ध कर उसे संसर्जित करना चाहिये। बहुत से ऐसे विकार होंगे जो शोधन के योग्य नहीं होंगे। ऐसी अवस्था में उसे शमन चिकित्सा द्वारा शोधन के योग्य बनावे, पुनः शोधन कर रोग का उन्मूलन करे। बहुत से ऐसे विकार हैं जो अपनी प्रथमावस्था में विशेष कष्ट नहीं देते। अतः मनुष्य उनकी परवाह नहीं करता जिससे वे भयंकर रूप धारण कर लेते हैं और बहुत यत्न करने पर भी कभी २ नहीं अच्छे होते। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह दोष के संचय काल में ही उन्हें जीते। ("चय एव जयेद्दोषम्")क्यों कि संचय काल में जीते हुए दोष वृद्धि को नहीं प्राप्त होते। ("संचयेऽपहृता दोषा लभन्ते नोत्तरा गतीः")।

(५) उपस्तम्भ त्रय का समुचित सेवन—आहार, स्वप्न और ब्रह्मचर्य ये जीवन के तीन उपस्तम्भ माने गये हैं। "त्रय उपस्तम्भा इत्याहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्य मिति"– चरक)। इन तीनों के युक्ति युक्त सेवन से मनुष्य बलवर्णादि गुणों से युक्त युग-प्रमाणोचित आयु लाभ करता है। (क) आहार—उपस्तम्भ त्रय मे 'आहार' प्रधान उपस्तम्भ है; क्योंकि यह उस ह्रास का प्रपूरक है जो हम नित्य अपने अपने परिश्रमादि से करते हैं। साथ ही आहार से हमें शक्ति प्राप्त होती है जिस से हम किसी कार्य्य को करने मे समर्थ होते हैं। शरीर को अक्षुण्ण रखने के लिये उपयुक्त उपादानों को सदा इकट्ठा करते रहने के कारण ही इनको 'आहार' कहते हैं। आहार की समुचित व्यवस्था करने के लिये ही मनुष्य नाना प्रकार के कार्य्य करता है। कृषि पशु पालन, वाणिज्य, सेवा आदि सभी कार्य्य इस आहार को सुव्यवस्थित करने के लिये ही किये जाते हैं। इस जीवन को अक्षुण्ण बनाए रखने में आहार का प्रधान हाथ है। प्रस्तुत पुस्तक में आहार के सभी अंगों पर पर्याप्त प्रकाश डालने की चेष्ठा की गई है। यहां उनका सारांश मात्र ही दिया जायगा। डा० जीवराज मेहता ने अपने अखिल भारतीय मेडिकल कान्फरेंस के सभापति पद से हाल में ही कहा है कि "ससार के बहुत से देशों में शरीर पोषण के विषय पर अनेक वर्षों तक वाद-विवाद होते रहे हैं। हम लोग आज भी वैज्ञानिक आधार पर भारत की पथ्य-व्यवस्था करने में असमर्थ हैं यद्यपि हम लोग सैकड़ों वर्ष से अर्वाचीन चिकित्सा विज्ञान का कार्य्य कर रहे हैं फिर भी शाकाहार-प्रधान देश भारत के मनुष्यों के लिये, उनके स्वस्थास्वस्थ अवस्था के

लिये, कोई पथ्य व्यवस्था न कर पाये हैं।" अपने व्याख्यान के सिलसिले में आगे चल कर वे कहते हैं—"हमारी प्राचीन वृद्धा माताओं को यह पता था कि हमारा पौष्टिक भोजन कैसा और किस तरह उपलब्ध होगा। वे जानती थीं कि हमारी स्वस्थावस्था के लिये तथा अस्वस्थावस्था के लिये कैसा पथ्य होना चाहिये। उन्हें बहुत से घरेलू चालू औषधियों का भी ज्ञान रहता था। यह ज्ञान दिन पर दिन शनैः शनैः लुप्त होता गया और आज हमारी ऐसी दशा हो गई है कि यदि उनमें से हमारी कुछ माताओं को कुछ मालूम भी है तो हमारी देवियों को तो उसका लेशमात्र भी ज्ञान नहीं। हमारी लड़कियां तो उसे जानना भी अपने शान के विरुद्ध समझती हैं। यदि अर्वाचीन विज्ञान द्वारा अब तक इस समस्या का कोई हल नहीं निकल सका है तो क्या देश के प्राचीन चिकित्सा शास्त्र का स्वाध्याय कर इसका निपटारा करना हमारा कर्त्तव्य नहीं हो जाता? प्रस्तुत पुस्तक में इसी विषय का निपटारा करने का प्रयत्न किया गया है। इस विषय का निश्चय करने में अकेला विज्ञान कदापि नहीं समर्थ हो सकता। क्योंकि मानव शरीर केवल भौतिक ही नहीं है अपितु आध्यात्मिक भी है। यह प्रश्न केवल भौतिक विज्ञान, रसायन, तथा कलारी और विटामीन (प्राकृतिक तथा कृत्रिम) का ही नहीं, बल्कि शारीरिक और आत्मिक मूल्य रखता है। अतः आहार की व्याख्या करते समय हमें यह विचारना होगा कि क्या अमुक द्रव्य हमारे शरीर की पुष्टि करने के साथ २ मन तथा आत्मानुकूल भी है। विज्ञान की सहायता से हम शरीर के निर्मायक तत्वों का पता

लगा कर यही कहने में समर्थ हो सके हैं कि हम परिश्रमादि से शरीर के अमुक २ तत्वों का ह्रास करते हैं और उसकी पूर्त्ति के लिये हमें अमुक २ तत्वों की आवश्यकता होती है। हम यह भी जान पाए हैं कि आहारोपयोगी अमुक २ द्रव्य में अमुक २ शरीरोपयोगी तत्व होते हैं, और उनके सेवन से अमुक कार्य या आवश्यकता की पूर्त्ति होती है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि जिन २ तत्वों का आहारोपयोगी द्रव्यों में अवलोकन कर सके हैं उनके अतिरिक्त उसके अन्दर और सब अंश बेकार तथा त्याज्य हैं। बहुत से ऐसे द्रव्य भी होते हैं जिनके बहुत से अंश आहारोपयोगी नहीं होते, जिनका पता हमें अपने अभ्यास तथा व्यवहार से लगता है। आजकल हम वैज्ञानिक युग में द्रव्यों के अन्दर से शरीरोपयोगी तत्वों को पृथक् कर उन्हें कृत्रिम आहार का रूप दे साधारण जनता को लुभा २ कर जितने देशी तथा विदेशी कारखाने हैं वे अपनी जेब भर रहे हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि अबोध तथा फैशन के फेर में पड़ी हुई जनता कृत्रिम भोजन का सेवन कर अपनी प्रकृत अग्नि को दिनोंदिन कमजोर कर रही है। इन कृत्रिम भोजनों में जो भी शरीरोपयोगी भोज्यांश आयोजित होते हैं, वह इनका विकृत तथा कमजोर रूप होता है। कुछ ऐसे भी होते हैं जिन्हें पचाने के लिये शारीरिक 'अवयवों को अत्यल्प परिश्रम करना पड़ता है। इस प्रकार इन कृत्रिम भोजनों से हम अपने शारीरिक अवयवों को आराम तलब या अशक्त बना देते हैं। जब कभी किसी कारणवश उपर्युक्त कृत्रिम भोजन नहीं प्राप्त होता और प्रकृत भोजन करने का

अवसर प्राप्त होता है, हम सहज ही अजीर्णादि रोगों के शिकार बन जाते हैं। विज्ञान हमें किसी द्रव्य के कार्य्य कारण सम्बन्ध को समझाने के लिये है न कि उस ज्ञान के दुरुपयोग के लिये। हमारे विचार से हमें उन शरीरोपयोगी भोज्यांशों से युक्त प्रकृत द्रव्य का ही सेवन करना चाहिये, जो शतशः वा सहस्रशः वृद्ध पुरुषों द्वारा परीक्षित है। संसार के बड़े २ राष्ट्रों ने इस विज्ञान के बल पर अपने यह पथ्य व्यवस्था' (विटामिन और कलारी का हिसाब) की है और स्वास्थ्य तथा आयु मर्यादा के बढ़ाने के जो आंकड़े संसार के सम्मुख रखे है वे सर्वथा दोष रहित नहीं। हम मानते हैं कि युरोप के राष्ट्रों ने अपने स्वास्थ्य तथा आयु-मर्यादा में कुछ उन्नति की है पर वह उन्नति औसत रूप से है और यह औसत वहां की शिशुमृत्यु के रोकने से बढ़ी हैं। निःसन्देह वे इसके लिए धन्यवाद के पात्र हैं और इस शिशुमृत्यु को रोकने का श्रेय उनको प्राप्त है। परन्तु संसार के प्राचीन इतिहास साक्षी हैं कि प्राचीन काल में स्वास्थ्य तथा आयु की मर्यादा उत्तम तथा अधिक थी और यह उनके प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन न करने के कारण थी। हम प्रकृति के जितना निकट रहेंगे; प्राकृतिक पदार्थों के उपभोग का हमें उतना ही सुखद एवं सुन्दर सुअवसर प्राप्त होगा। आयुर्वेद उस अतीत का एक प्रतीक है जो हमें सदा यह उपदेश करता रहता है "तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्त्तते। अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत्॥"–(चरक)। आहार की विस्तृत व्याख्या इस पुस्तक में की जा चुकी है।

स्वप्न

यहां स्वप्न शब्द निद्रा के अर्थ में व्यवहृत हुआ है। जब इन्द्रियां तथा मन क्लान्त होकर बाह्य विषयों से पूर्ण निवृत्त हो जाते हैं तब निद्रा उत्पन्न होती है। निद्रा में मन निरीन्द्रिय प्रदेश में अवस्थित होता है। परन्तु जब केवल इन्द्रियों की विषयों से निवृत्ति होती है और मन निवृत्त नहीं होता है. उस समय मन के कार्य पर होने के कारण मनुष्य नद्रितावस्था में भी नाना प्रकार के स्वप्न देखता है।[1] निद्रा विष्णु की माया होने के कारण वैष्णवी कहलाती है। विष्णु जैसे सृष्टि का धारक पोषक होता है वैसे निद्रा भी शरीर की धारक पोषक होती है यह तम से उत्पन्न होने के कारण पाप्मा (पापी) कहलाती है। यह स्वभाव से ही सम्पूर्ण प्राणियों को अपने वश में लाती है। पाप्मा शब्द निद्रा के उत्पत्ति बोधक और गुण बोधक विशेषण है। इसका अभिप्राय यह है कि निद्रा कितनी ही शरीर धारक क्यों न हो, वह पाप मूलक होती है। इसका कारण डल्हणाचार्य "कृत्स्न शुभ व्यापार निरोधात" बतलाते हैं। चरक और अष्टांग संग्रह में निद्रा के कारण के अनुसार) सात प्रकार वर्णन

---

१. यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मनः क्लमान्विताः ।
विषयेभ्यो निवर्त्तन्ते तदा स्वपिति मानवः ॥ (चरक)
सर्वेन्द्रियव्युपरतौ मनोऽनुपरतं यदा ।
विषयेभ्यस्तदा स्वप्नं नाना रूपं प्रपश्यति ॥ (अ० सं०)
निद्रा तु वैष्णवीं पाप्मानमुपदिशन्ति,
सा स्वभावत एव सर्व प्राणिनोऽभिस्पृशति ।" (सुश्रुत)

किए गए हैं उस में तमोभव निद्रा पाप्मा कहलाती है।[1] रात्रि में तमोगुणाधिक्य होने के कारण स्वभाव से ही निद्रा आती है।[2] रात्रि में जो निद्रा आती है वही चरक और अष्टांग संग्रह में काल-स्वभा -प्रभवा बतलायी गई है और उसी से प्राणियों का धारण होता है।[3] जैसे तम से तमोगुण समझा जाता है वैसे ही तम से अँधेरा भी समझा जाता है। रात में स्वाभाविक अंधेरा होने से नींद भी आती है। अंधेरा नींद की एक स्वाभाविक-अनुकूल स्थिति होती है। व्यवहार में देखा जाता है कि जब नींद नहीं आती है तो रोशनी कम कर देने से नींद आने में सहायता हो जाती है। मध्य-रात्रि के दो प्रहर अर्थात् रात के नो बजे से प्रात: ३ बजे तक निद्रा के लिये उत्तम काल समझा जाता है।[4]

स्वाभाविक निद्रा

सत्त्वभूयिष्ट पुरुषों के लिये जो निद्रा का काल बताया गया है वही निद्रा का वास्तविक काल है। निद्रा का काल वय, व्यवसाय, अभ्यास और प्रकृति के अनुसार बदलता है। बचपन में एक महीने के बालक के लिये २१

---

१ "तमोभवामाहुरधस्य मूल" (चरक)

२. "बाहुल्यात्तमसो रात्रौ निद्रा प्रायेण जायते" (अ स०)

३. काल स्वभाव प्रभवा मता या तां भूत धात्रीं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः।
(चरक)

४. "सत्व भूयिष्ठानामर्धरात्रे" (सुश्रुत) प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेद् भ्यासे च तौ नयेत्। महरद्वयं शयानस्ते हि ब्रह्म भूयाय कल्पते॥ (स्मृति)

घंटे तक, छः महीने के लिये १८ घंटे तक, एक साल के लिये १५ घंटे तक, ४ साल के लिये १२ घंटे तक, और १२ साल के लिये १० घंटे तक. निद्रा की आवश्यकता होती है। इस के बाद युवावस्था में नींद का काल पुरुषों के लिये ७ और स्त्रियों के लिये ८ घंटे का होता है। वृद्धावस्था में निद्रा इस से भी कम हो जाती है। शारीरिक तथा मानसिक अधिक परिश्रम करने वालों के लिये अधिक, और कम करने वालों के लिये कम निद्रा की आवश्यकता होती है। अभ्यास से मनुष्य निद्रा का काल बहुत कम या बहुत अधिक कर सकता है। कफ प्रकृति वाले मनुष्य को अधिक, वात प्रकृति वाले को कम, और पित्त प्रकृति वाले मनुष्य को मध्यम दर्जे की निद्रा की आवश्यकता होती है। वय के अनुसार निद्रा के काल मे जो फर्क बतलाया गया है वह प्रकृति भेद के अनुसार होता है। आयुर्वेद के अनुसार बाल्यावस्था में कफ, युवावस्था में पित्त और बढ़ापे में वात की अधिकता होती है।

प्राणियों को निद्रा प्रतिदिन रात को एक विशिष्ट समय पर आती है तथा विशिष्ट समय पर चली जाती है। निद्रा के समय तम का प्रावल्य होता है। बोधन के समय सत्व का, इससे यहां कोई विशेष मतलब नहीं। परन्तु नियत समय पर इनका अस्तोदय क्यों होता है-यह प्रश्न प्रत्येक विचारशील पुरुष के सामने उपस्थित हो सकता है और आयुर्वेद के ऋषियों के सामने भी उपस्थित हुआ था; जिसके उत्तर में उन्होंने बताया कि तम और सत्व भले ही निद्रा के होने और न होने में कारण हों, परन्तु इनसे बढ़ कर कारण शरीर का स्वभाव है जो नियत काल पर तम के

द्वारा नींद और सत्व के द्वारा बोधन उत्पन्न करता है। आधुनिक काल मे नींद के सम्बन्ध में अन्वेषण करके वैज्ञानिक गण इसके स्वरूप का मत प्रदर्शन करते हैं—"Natural sleep is the Normal manifestation of one stage in the rhythmical activity of nerve cells." (Halliburton's physiology) अर्थात् स्वाभाविक निद्रा नाड़ी कार्यों की अनुस्वर कर्मण्यता के एक अवस्था विशेष का प्रकाशन है।" स्वभाव दुरति क्रम होता है वैसे ही निद्रा भी दुरतिक्रम होती है। चाहे मनुष्य उसको टालने की कितनी ही चेष्टा क्यों न करे। अमेरिका के क्लीटमन (Kleitman) और उसके साथियों ने निद्रा न लेने से शरीर पर क्या परिणाम होता है इसकी जांच २ से ५ दिन तक निद्रा न लेकर की। तब उनको यह मालूम हुआ कि शरीर के ताप-क्रम, मूत्र, रक्त. रक्तभार, पचन, भूख इत्यादि बातों में कोई भी खराबी नहीं होती है। अगर यह बात सत्य है और इसमें कोई संदेह नहीं, तो कौन बुद्धिमान् मनुष्य अपनी आधी जिन्दगी नींद में खराब करेगा? रात में अच्छी आयु व्यर्थ में नष्ट होती है, यह बात प्राचीन काल से लोगों के मन में खटकती है। (आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं, रात्रौ तदर्धं गतम्॥ भर्तृ०) तब भी आधुनिक वैज्ञानिक क्लीटमन के उपरोक्त वचन के आधार पर निद्रा को पूर्णतया छोड़ कर अपनी आधी आयु का सदुपयोग करने का विचार मनुष्य कार्य रूप में परिणत नहीं कर सकते। इसका कारण, जैसे अन्न सेवन शरीर का एक स्वभाव है वैसे ही निद्रा सेवन भी शरीर का एक स्वभाव है। और अन्नसेवन से जैसे शरीर की पुष्टि होती है

निद्रा सेवन से भी वैसे ही शरीर की पुष्टि होती है[1]। अन्न के बिना मनुष्य जितने दिन गुजारा कर सकता है उतने ही दिन लगभग निद्रा के बिना भी कर सकता है। "Man Can exist without sleep for about the same time, that he can do without food, viz two to four weeks but he can not live without it" (Savil

निद्रा की प्रक्रिया के सम्बन्ध में आधुनिक खोज

निद्रा स्वभाव से होती है, परन्तु किस प्रकार से होती है इसका ज्ञान बहुत कुछ खोज करने पर भी अत्यल्प है। ब्रह्म गुहा (Third Ventricle) के तल के धूसर भाग में और कटाधरीय भाग (Hypothalmus) में निद्रा से सम्बन्ध रखने वाला कुछ अंश होता है जिसमें खराबी होने से निद्रा तथा तंद्रा होती है। प्रत्यक्ष निद्रा उत्पन्न होने की दृष्टि से निम्नमत पाश्चात्य वैद्यक में प्रचलित है। १) होवेल नामक अमेरिकन शास्त्रज्ञ का मत है कि मस्तिष्क में रक्त की कमी और अन्य अंगों में रक्त की अधिकता उत्पन्न होने से निद्रा उत्पन्न होती है। भोजन के बाद पचन संस्थान में रक्ताधिक्य होकर मस्तिष्क में रक्त की कमी होने से भोजनोत्तर मनुष्य को कुछ तन्द्रा होती है जाड़े के दिनों में रात को शरीर ढकने के लिये पर्याप्त वस्त्र न होने से निद्रा नहीं आती, क्योंकि त्वचा की रक्त वाहिनियों के

---

१. देह वृत्तौ यथाहारस्तथा स्वप्नः सुखो मतः। स्वप्नाहार समुत्थे च स्थौल्यकार्श्ये विशेषतः। निद्रायत्तं सुखं दुखं पुष्टि कार्श्यं बलाबलम् वृषता क्लीवता ज्ञानमज्ञ न जीवितं न च।" (चरक)

सिकुड़ने से मस्तिष्क में रक्ताधिक्य हो जाता है। प्रतिदिन रात को त्वचा की रक्त वाहिनियां विस्तृत होती हैं जिससे मस्तिष्क में रक्त की कमी होकर नींद आती है। परन्तु इससे नींद आती है या नींद के कारण मस्तिष्क में रक्त की कमी होती है इस प्रश्न का हल इससे नहीं होता। (२) कुछ शास्त्रज्ञों का मत है कि जागृतावस्था में शरीर में ऐसे रासायनिक द्रव्य उत्पन्न होते हैं जो उचित मात्रा में संचित होकर मस्तिष्क पर निद्रा का प्रभाव डालते हैं। वैसे ही निद्रितावस्था में ऐसे द्रव्य उत्पन्न होते हैं जो निद्रा खोलने का कार्य करते हैं। (३) कुछ तत्वज्ञों का कथन है कि जागृतावस्था में मस्तिष्कगत नाड़ी कन्दे (Neurons) के अक्षतन्तु (Dendrits) परस्पर भलीभांति मिले रहते हैं जिससे परस्पर संवहन होता रहता है और जिसका परिणाम सज्ञा है। निद्रितावस्था में अक्षतन्तु सिकुड़ कर गांठदार हो जाते हैं जिससे इनका आपस में सम्बन्ध टूट जाता है और एक दूसरे में संवहन नहीं होता। इसका परिणाम संज्ञानाश होता है। जो इस उपपत्ति के पक्ष में हैं, उनका कथन है कि निद्रा के कारण सिकुड़न होती है वा सिकुड़न के कारण निद्रा होती है यह तो विवादास्पद विषय है। (४) पावलोव (Pavlow) नामक सुप्रसिद्ध रशियन वैज्ञानिक का मत है कि निद्रा सांकेतिक निवारण (Conditional inhibition) का परिणाम है। प्राणियों के शरीर में कई सहज प्रत्यावर्त्तन क्रियाएँ (In born reflexis) होती हैं। अन्न दर्शन से लाला स्राव उनमें से एक है। यदि किसी कुत्ते को नियत समय पर घंटिका वादन के साथ खाने को दिया जाय तो कुत्ता

घटिका-वादन रूप संकेत का सम्बन्ध अन्न के साथ जोड़ देता है जिससे कुछ दिनों के पश्चात् केवल घटिका वादनसे उसे लालास्राव होने लगता है। यह कार्य जन्मोत्तर होता है और संकेतके अनुसार होता है अतः इसे सांकेतिक प्रत्यावर्त्तन कहते हैं। इसी प्रकार यदि कुत्ते को कोई सांकेतिक दूरा संकेत बताया जाय जिससे वह अन्न न आने का संकेत समझ सके, और उस संकेत का उपयोग अन्न आने के पश्चात् किया जाय तो कुछ काल तक लाला स्राव रूप प्रत्यावर्त्तन क्रिया का निवारण होता है (Inhibition)। यह निवारण का कार्य संकेत के अनुसार होता है अतः इससे सांकेतिक निवारण कहते हैं। प्रत्यावर्त्तन तथा निवारण ये दोनों कार्य मस्तिष्क के धूसर वस्तु में होते हैं। प्रत्येक कार्य का स्थान भिन्न २ होता है। एक स्थान में निवारण का कार्य होने पर वह अन्य स्थानों पर भी प्रकाश (Irradiation) के द्वारा फैलता है। पावलोव का अभिप्राय है कि रात्रि के समय शय्यादि निद्रानुकूल संकेतों का निवारक परिणाम मस्तिष्क के ऊपर होकर प्राणी को आप से आप नींद आ जाती है।

ये सब मत-मतांतर एक दृष्टि से ठीक है परन्तु इन से निद्रा-के कारणों का और प्र क्रया का विषय ज्ञान नहीं होता। कुछ भी हो निद्रा एक शरीर का स्वाभाविक धर्म है और उस से शरीर के प्रत्येक पुर्जे को अधिक से अधिक विश्राम मिलता है। ये आयुर्वेद के सिद्धान्त आधुनिक खोज से भी अविचलित है। इसी से भगवान आत्रेय ने कहा है कि—"देहं विश्रमते यस्मात्तस्मानिद्रा—प्रकीर्तिता। देहवृत्तौयथाहार स्तथानिद्रा समासतः॥" (आत्रेय-संहिता)

निद्रा के प्रकार

'सुश्रुत ने निद्रा के तीन प्रकार बताए हैं। (१) तामसी (२) स्वाभाविकी और (३) वैकारिकी। परन्तु चरक और वाग्भट में निद्रा के सात प्रकार वर्णित हैं। जैसे—(१) तमोभवा, (२) श्लेष्मसमुद्भवा, (३-४) मनः शरीरश्रमसंभवा, (५) आगन्तुकी, (६) व्याध्यनुवर्त्तिनी और (७) रात्रि स्वभाव प्रभवा। परन्तु ये प्रकार अन्त में उक्त स्वाभाविकी, वैकारिकी और तामसी के अन्तर्गत समाविष्ट हो जाते हैं।

१. तामसी निद्रा

"तत्र यदा सज्ञावहानि स्रोतांसि तमोभूयिष्ठा श्लेष्मा प्रतिपद्यते तदा तामसी नाम निद्रा भवत्यनवबोधिनी, सा प्रलय काले।"
(सु० शा० ४)

अर्थात्—"जब (हृदय-स्थित) सज्ञावह स्रोतों में तमोभूयिष्ठ कफ पहुँचता है तब बोध का नाश करने वाली तामसी नामक निद्रा होती है। यह शरीर का लय होने के समय होती है।" वास्तव में यह निद्रा न होकर मृत्युपूर्व कालीन गंभीर संज्ञा-नाश की स्थिति है। यदि इसकी सम्प्राप्ति लक्षण और काल का विचार किया जाय तो यह स्थिति चरकोक्त संन्यास के साथ मिलती है। "यदा तु रक्त वा हीनि रससज्ञावहानि च। पृथक् पृथक् समस्ता वा स्रोतांसि कुपिता मलाः॥ मलिनाहारशीलस्य रजोमोहावृतात्मनः। प्रतिहत्यावतिष्ठन्ते जायन्ते व्याधयस्तदा॥ मदमूर्च्छा च संन्यास-स्तेषां विद्याद्विचक्षणः। यथोत्तरं बलाधिक्यं हेतुलिङ्गोपशान्तिषु॥

वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः । संन्यस्यन्त्यबलं जन्तुं प्राणायतनमाश्रिताः ॥ स ना सन्न्यास सन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः। प्राणैर्वियुज्यते शीघ्र मुक्त्वा सद्यः फलाः क्रिया॥" (च० सू० २४)। चरक और वाग्भट में जो तमोभवा निद्रा है उसके लक्षण यहां पर वर्णित नहीं है; इस लिये तमोभवा निद्रा के सम्बन्ध में उनकी क्या कल्पना थी, इसके समझने का कोई उचित साधन नहीं प्राप्त होता। परन्तु सुश्रुतोक्त तामसी निद्रा चरकोक्त संन्यास के साथ मिलती है, इसमें कोई संदेह नहीं है। पाश्चात्य परिभाषा में कोमा (Coma) की जो अवस्था होती है उसे देख कर तामसी निद्रा को 'कोमा' कह सकते हैं। हर्बर्ट फ्रेंच ने अपने Index of differential diagnosis में लिखा है—"Coma is a state of unnatural, heavy, deep, and prolonged sleep, often accom panied by slow Stertorus or irregulor breathing and frequently ending in death." उपरोक्त सूत्र में 'अर्नवबोधिनी' शब्द से मृत्यु की सम्भवनीयता पुष्ट हो जाती है।

२. स्वाभाविकी निद्रा

"तमोभूयिष्ठानामहःसु निशासु च भवति, रजोभूयिष्ठानामनिमित्तं, सत्वभूयिष्ठानामर्धरात्रे" (सु०शा० ४) अर्थात्-तमः प्रधान लोगों को दिन और रात (दोनों समय) निद्रा होती है। रजः प्रधान लोगों को नियम-विरहित निद्रा होती है और सत्व प्रधान लोगों को आधी रात के समय निद्रा आती है। यहां पर त्रिगुणात्मक प्रकृति

के अनुसार निद्रा में जो फ़र्क होता है वह निर्देश किया गया है। सत्वभूयिष्ठ लोगों के लिये निद्रा का जो काल बतलाया गया है वही वास्तविक काल है।

३. वैकारिकी निद्रा

"क्षीणश्लेष्मणामनिल बहुलानां मनः शरीराभितापवतां च नैव सा वैकारिकी भवति।" (सु० शा० ४) अर्थात् क्षीण कफ वात-भूयिष्ठ शारीरिक तथा मानसिक व्याधियों से पीड़ित व्यक्तियों को निद्रा विच्छिन्न, न्यून, अथवा सर्वथा निद्रा नहीं आती वह वैकारिकी निद्रा है। यह निद्रा अनिद्रा के बराबर है। इसको अंग्रेज़ी में इनसौमिनिया (Insomnia) कहते हैं। इस में अपने वय, व्यवसाय, अभ्यास और प्रकृति आदि के अनुसार उचित काल तक नींद न आने से पूर्ण अनिद्रा तक, सब दोषों का समावेश हो जाता है।

निद्रा-हेतु

"हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत! देहिनाम्। तमोभिभूते तस्मिंस्तु निद्रा विशति देहिनाम्॥ निद्रा हेतुस्तमः सत्वं बोधने हेतुरुच्यते। स्वभाव एव वा हेतुर्गरीयान परिकीर्त्यते॥" (सु० शा० ४) इस श्लोक में नींद कैसे आती है और कैसे खुलती है इसकी उपपत्ति बतलायी गई है। यह उपपत्ति दर्शनशास्त्रानुसार है। इस को ध्यान में रखना चाहिये। समस्त संसार, त्रिगुणात्मक प्रकृति का खेल है और पुरुष भी त्रिगुणों में फंस जाने के कारण पञ्चभूतात्मक शरीर रूपी पिञ्जरे में बन्द है। "सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृति संभवाः। निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्॥"

(गीता)॥ इस प्रकार त्रिगुणात्मक पुरुष के निवास करने के कारण हृदय त्रिगुणों का भी स्थान माना गया है। "सत्वादिधाम हृदयं स्तनोरः कोष्ठ मध्यगम्" (अ०हृ०)। ये गुण हमेशा आपस में मिले रहते हैं। सत्व का परिणाम प्रकाश, निर्मलता, अनालस्य, और तम का आलस्य, निद्रा होता है। "तत्र सत्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम्। तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्॥ प्रमादालस्य निद्राभिस्तान्निबध्नाति भारत॥ (भगवद्गीता १४)। जब हृदय तम से आवृत होता है तब निद्रा आती है। और जब तम कम होकर सत्व प्रबल होता है तब नींद खुल जाती है। इस तरह परस्पर विरोधी गुणों के क्रमिकप्रभाव से नींद और जागरण की अवस्था उत्पन्न होती है। लौकिक दृष्टि से यदि सत्व और तम की ओर देखा जाय तो तम से अंधेरा, समलता, और सत्व से प्रकाश और निर्मलता का बोध होता है। प्रकाश को इन्द्रियार्थों की उपस्थिति का उपलक्षण समझ सकते हैं। अन्धेरा उसके विपरीत समझा जा सकता है। जब अन्धेरा, प्रशान्त गृह आदि उपस्थित होते हैं तब नींद आती है और जब प्रकाश, शोरगुल इत्यादि उपस्थित होते हैं तब नींद खुलती है। संक्षेप में तम से बाह्य उत्तेजक पदार्थों की अनुपस्थिति और सत्व से उनकी उपस्थिति समझ सकते हैं। इस दार्शनिक उत्पत्ति के अतिरिक्त आयुर्वेद में निद्रा के और दो विशेषण मिलते हैं। एक के अनुसार संज्ञावह स्रोतों का कफ से अवरुद्ध होना निद्रा का कारण होता है। दूसरे के अनुसार इन्द्रियों की तथा मन की इन्द्रियार्थों से उपरति निद्रा का कारण होती है। वह उपरति ऐच्छिक तथा अनैच्छिक दोनों हो सकती है। परन्तु प्रायः उपरति

थकावट के कारण अतएव अनैच्छिक होती है। इस लिये उसीका निर्देश किया गया है। यदि कोई मनुष्य अपने इच्छा बल से जब चाहे तब उपरति की अवस्था उत्पन्न कर ले तो उसे उसी समय नींद आ जाती है यथा—नेपोलियन को। वेद तथा उपनिषदों में निद्रा के सम्बन्ध में बड़े सुन्दर वर्णन मिलते हैं। पाठकों के ज्ञानार्थ उसे यहां देना आवश्यक प्रतीत होता है। निम्न सूक्तों में आत्मा और इन्द्रियों के परस्पर सम्बन्ध और सोने जागने के रहस्य को लौकिक दृष्टान्तों से स्पष्ट किया गया है। यथा—"सहस्रशृंगो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत्। तेना सहस्येना वयं निजनान्स्वापयामसि ॥ (अथर्व० का० ४। सू० ५।१) अर्थात्–(यः) जो (सहस्रशृङ्गः) सहस्रों, अनन्त किरणों वाला (वृषभः) जीवन शक्ति का या वर्षा का हेतु सूर्य (समुद्राद्) अन्तरिक्ष से या समुद्रतल से (उदाचरत्) ऊपर को उठता हुआ प्रतीत होता है वह उसी प्रकार पुनः समुद्र में ही अस्त होता हुआ प्रतीत होता है। (तेन) उस (सहस्येन्) शक्तिमय पिण्ड के दृष्टांत से हम भी (जनान्) मनुष्यों को (निस्वापयामसि) ठीक उसी प्रकार से जागता और सोता पाते हैं। अर्थात् जिस प्रकार प्रतिदिन प्रातः सूर्य उदित होता है सायंकाल अस्त होता है उसी प्रकार प्रतिदिन मनुष्य प्रातः उठता है और रात्रि को सो जाता है, और जिस प्रकार प्रातः सूर्य में से किरणें सर्वत्र फैलती प्रतीत होती है और साय समय अस्त होते हुए सूर्य के विम्ब में ही सब किरणें लीन हो जाती हैं उसी प्रकार आत्मा में से ये इन्द्रियां प्रादुर्भूत होती हैं और सोते समय पुनः उसमें ही लीन

हो जाती हैं। ठीक इसी प्रकार के अर्थ को द्योतन करने वाले वाक्य छान्दोग्य उपनिषद् तथा प्रश्नोपनिषद् में आते हैं। "अथाध्यात्मं प्राणो वाव संवर्गः स यदा स्वपिति प्राणमेव वागप्येति, प्राणं चक्षुः, प्राणंश्रोत्रं, प्राणं मनः, प्राणो ह्येवैतान्संवृङ्क्त इति"(छान्द०४।३।३) अर्थात् प्राण ही निश्चय करके संवर्ग है अर्थात् लय करने वाला है; क्योंकि जिस काल में कोई पुरुष शयन करता है उस काल में वागिन्द्रिय, चक्षु, श्रोत्र और मन प्राण में ही लय भाव को प्राप्त होते हैं। इसलिये प्राण ही सब इन्द्रियों का लय करने वाला कहा गया है। प्रश्न पनिषद् में सौर्यायणी गार्ग्य के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् पिप्पलाद ने बताया है कि "यथा गार्ग्य ! मरीचयो ऽर्कस्यास्तं गच्छतः सर्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डले एकी भवन्ति, ता पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं ह वै तत्सर्वं परे देवे मनस्येकीभवन्ति, तेन तर्ह्येष पुरुषो न शृणोति, न पश्यति, न जिघ्रति न रसयते, न स्पृशते, नाभिवदते, नाऽऽदत्ते नानन्दयते, न सृजते, नेयायते स्वपितीत्याचक्षते ॥ (प्रश्न० ४। ४२।) अर्थात् जिस प्रकार अस्त होते हुए सूर्य की समस्त किरणें सूर्य में आकर एकत्रित हो जाती हैं और जब सूर्य उदय होता है तो वे किरणें पुनः फैल जाती हैं; इसी प्रकार जब मनुष्य सोता है तब समस्त इन्द्रियों की शक्तियां मन में एकत्रित हो जाती हैं इस लिये स्वप्नावस्था में समस्त इन्द्रिय व्यापार बन्द हो जाते हैं और इन्द्रियों के साथ मनुष्य सो जाता है।

सोने के लिये अनुकूल स्थिति का उपदेश करने के लिये अथर्ववेद-चतुर्थ काण्ड में एक सूक्त आता है जो इस प्रकार है:—

"न भूमिं वातो अति वाति नाति पश्यति कश्चन। स्त्रियंश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन् ।।"

अर्थात्-(वातः भूमिं न अति वाति) प्रचण्ड वायु भूमि पर प्रबल वेग से बह कर घर में वेग से प्रवेश न करे, और (कश्चन) कोई मनुष्य (न अति पश्यति) खिड़कियों से न झांके, ऐसे स्थान पर हे इन्द्र ! गृह और राष्ट्र के स्वा मन् ! (सर्वाः स्त्रियः सब स्त्रियों को (स्वापय) सुलाओ और (शुनश्च) कुत्तों को भी बाहर सुला दो, जिससे घर की रक्षा हो और (इन्द्रसखा) राजा का मित्र बराबर (चरन्) पहरा देता हुआ विचरण करे"। आत्मा का मित्र प्राण (इन्द्रसखा) बराबर विचरण करता रहता है (चरन) और सब ज्ञानेन्द्रियों (स्त्रियः) और सब कर्मेन्द्रियों को (शुनः) सुला देता है। वह भी प्राणी भी (वातः) सुषुप्ति दशा को (भूमि) नहीं छोड़ता और कोई भी इन्द्रिय उस समय देख नहीं सकती।

पहले निद्रा के कारणों में अभ्यास, स्वभाव आदि कारणों का जिक्र किया गया है। इन बातों का संकेत करते हुए भी अथर्ववेद में एक सूक्त आता है—

"प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्या वह्यशीवरीः।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि ।।"

(अथर्व० ४। ५। ३)

अर्थात्-शयन काल में हम अपनी इन्द्रियों को कैसे सुला देते हैं इस सम्बन्ध में कहते हैं-जो स्त्रियां (प्रोष्ठेशयाः) झूले में सोने की अभ्यासी हैं, जो (तल्पेशयाः) सेज पर सोने वाली हैं, और (याः नारीः) जो स्त्रियाँ (वह्यशीवरीः) पालकी आदि

में सोने वाली हैं, और (याः स्त्रियः) जो स्त्रियां (पुण्य गन्धयः) पवित्र गन्ध वाली है (ताः सर्वाः उन सबको (स्वापयामसि) रात्रि काल में सुला दें उपरोक्त विशेषण इन्द्रियों के अर्थ में इस प्रकार लगते हैं। इसमें इन्द्रियों के ही चार प्रकार के भेद किये हैं। १—प्रोष्ठेशया नारी अर्थात् मुख भाग में रहने वाली २—तल्पेशया-जो सोते समय बिस्तर से सट जाती हो अर्थात् त्वचा (स्पर्श इन्द्रिय) ३—वह्यशीवरी, जो पैरों में विद्यमान हैं, ४—पुण्य गंधि ज्ञानेन्द्रियां, ये सब उस आत्मा के बल पर उसी में आश्रित होकर सो जाती हैं।

सोने के समय इस शरीर की दशा एक महल के समान होती है, इसके दर्शाने के लिये निम्न सूक्त आता है—

"य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति।
तेषां सं दध्मो अक्षीणि यथेदं हर्म्यं तथा॥

(अथर्व० ४ सू० ५। ५)

अर्थात्—(यथा इदं) जिस प्रकार यह शरीर है (तथा हर्म्यं) उसी प्रकार महल होता है। अर्थात् (य आस्ते) जो चलता है, (यः च तिष्ठन्) और जो खड़ा है या (विपश्यति) नाना और विविध रूप देखता है (तेषां अक्षीणि) उन सबकी आंखों को (सदध्मः) सोने के समय हम लगा हुआ पाते हैं। अर्थात् ये सब सो रहे होते हैं। इसी प्रकार इस शरीर में जो बैठा है जैसे कान, जो चलता है जैसे मन, हाथ पैर, जो खड़ा है जैसे जिह्वा, नाक आदि, जो देखता है जैसे आँख, उन सबकी (अक्षीणि) ज्ञान, क्रिया शक्ति को (संदध्मः) एक प्राण में ही एकत्र धारण करते हैं।

स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्वपतिः ।
स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः ॥ अथ० ४।५।६.

अर्थात् चितशक्ति, चेतना या चित्कला की इस देह में क्या दशा होती है यह बतलाते हैं। जिस प्रकार गृहिणी के चेतन रहने पर उसकी माता पिता, घर का कुत्ता, गृहपति और अन्य सम्बन्धी, अड़ौस-पड़ोस के सभी सो जाते हैं और वह अपने पति की सेवा में रत रह कर जागती है उसी प्रकार यह चेतना भी जागती रहती है। इसकी (माता) पार्थिव देह वा ज्ञानेन्द्रियां (स्वप्तु) सो जांय (पिता) इसका पालक मस्तिष्क भी (स्वप्तु) सो जाय। (श्वास्वप्तु) कर्म भी सो जाय (विश्वपतिः) सब इन्द्रिय रूपी प्रजाओं का स्वामी मन भी सो जाय (स्वप्तु) सुषुप्ति दशा में मग्न हो जाय। (अस्यै ज्ञातयः) इसके ज्ञाति-जानने वाले-भीतरी प्राण भी (स्वपन्तु) निश्चेष्ट होकर सो जायँ और (अभितः स्वप्तु) इसके अड़ोस-पड़ोस के शेष अंग भी सो जांय तो भी यह मुख्य चेतना श्वास-प्रश्वास करती हुई जागती रहती है।

निद्रा कितनी और कब तक लेनी चाहिये इस सम्बन्ध में निम्न सूक्त आता है—

"स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं निष्वापया जनम्।
श्रोत्सुर्यमन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृताद् हमिन्द्र

इवारिष्टो अक्षितः ॥ अथ० ४।५।७ अर्थात्—हे (स्वप्न) निद्रावृत्ते! (स्वप्नाभिकरणेन) निद्रावृत्ति को अभिमुख करके (सर्वं जनम्) समस्त उत्पन्न होने वाले जनों को या इन्द्रिय-

वृत्ति को (निस्वापय) सर्वथा सुला दो। और तब तक (स्वापय) सुलाओ (आ उत् सूर्य) जब तक सूर्य उदय न हो जाय और जब तक उषा काल फट न जाय, और (अहं) मैं आत्मा (इन्द्रः इव) इन्द्र, राजा के समान (अक्षितः) अविनाशी (अरिष्टः) किसी से भी पीड़ित न होकर (जागृतात्) जागूं।

ब्रह्मचर्य

"ब्रह्मचर्यमायुष्यानां श्रेष्ठम" (चरक)। इस विषय पर जितना भी लिखा जाय थोड़ा हो है। ब्रह्मचर्य पर बड़े २ विद्वानों ने अपने तर्क भरे वाक्यों तथा आर्ष प्रमाणों को जनता के सामने उपदेशार्थ प्रकट किया है। इसकी महिमा यहां तक कही गई है कि "ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत" (अथर्व०)। अर्थात् ब्रह्मचर्य रूपी तपस्या से देवताओं ने मृत्यु को भी जीत लिया था। ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ निम्न प्रकार है—"ब्रह्मणे वेद-लाभाय चर्य्यते।" अर्थात्—वेद ज्ञानार्थ उपनयनान्तर अष्टांग मैथुनों से पृथक् रहते हुए इस आश्रम के नियमानुकूल रहना। परन्तु इस पुस्तक में ब्रह्मचर्य एक नियत अर्थ में व्यवहृत हुआ है। यह ब्रह्मचर्य दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। इनमें पहला तो विवाह से पूर्वकालिक ब्रह्मचर्य है; और दूसरे को हम विवाहोत्तरकालिक ब्रह्मचर्य कह सकते हैं। विवाह-पूर्वकालिक ब्रह्मचर्य के पालनार्थ कायिक, वाचिक और मानसिक अष्टाङ्ग मैथुनों से पराङ्मुखता होनी आवश्यक है। अष्टांग मैथुन के अन्दर "स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणं। सकल्पोऽध्यवसायश्च

क्रिया निर्वृत्तिरेव च।"—ये अष्टविध मैथुन हैं। इनके अतिरिक्त मद्य मांसादि भक्षण निषेधादि अनेक नियम ब्रह्मचर्य के लिए पालन करने पड़ते हैं। इसके विशेष विवरण के लिये मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १७५ से २४६ तक देखें। विवाहोत्तर कालिक ब्रह्मचर्य के वर्णन चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकों में उपलब्ध होते हैं। जैसे सुश्रुत में स्त्री संयोग आदि का जहां विधान है वहां ऐसा वर्णन आता है कि पुरुष तथा स्त्री को अमुक काल तक ब्रह्मचारी रह कर अमुक काल में संयोग करना उचित है। (ततोऽपराह्णे पुमान् मासं ब्रह्मचारी सर्पिः स्निग्धः सर्पिःक्षीराभ्याम् शाल्योदनं भुक्त्वा मासं ब्रह्मचारिणीं तैलस्निग्धां तैल माषोत्ताहारां नारीमुपेयाद्रात्रौ (सु० शा० २)। यहां विवाहित दम्पति का ब्रह्मचर्य अभिप्रेत है, अर्थात् ऋतुकाल में निंद्य दिन छोड़ कर शेष दिनों में सहवास करना ब्रह्मचर्य कहलाता है धर्मशास्त्रों ने भी इसका समर्थन किया है। यथा—"निंद्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्। ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्।" (मनु) और भी—'षोडशर्तु निशाःस्त्रीणां तस्मिन्युग्मसु संविशेत्। ब्रह्मचार्येव पर्वण्याद्याश्च तस्रस्तु वर्जयेत्'। (याज्ञवल्क्य)। पुत्रोत्पत्ति के लिये यह समागम होता है, उसमें पुरुष को ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश होता है। इस ब्रह्मचर्य से उत्पन्न अपत्य पुमान् और उत्तम गुणान्वित होता है। इस बात का समर्थन आधुनिक विद्वान् भी करते हैं। "Various considerations make the demand for a certain abstinence before copulation seem well founded. This may be traced

not only to the improvement of the ova and Spermotozoa, but also to increase in the sexual power of attraction. Thus if the man has been contment during mens turation, or best of all, for a few days longer, and then after very strong sexual exigence undertakes copulation with the desire for a boy, then the probability is certainly greater—for achieving the birth of a boy. (Ideal Birth.)

मानव जीवन को हम तीन प्रधान भागों में विभक्त कर सकते हैं

१. जीवन का प्रथम काल अर्थात् बाल्यावस्था, २. जीवन का मध्य काल अर्थात् युवावस्था और ३. जीवन का उत्तर काल अर्थात वृद्धावस्था। चरक संहिता में वय की व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है। "काल प्रमाण विशेषापेक्षिणी हि शरीरावस्था वयोऽभधीयते।" यह वयोवस्था तीन प्रकार की होती है—(तद्वयो यथा स्थूलेन त्रिविधम्) १. बाल्यावस्था, २. मध्यमावस्था ३. वृद्धावस्था। (वयस्तु त्रिविधं-बाल्यं मध्यं वृद्धमिति, सुश्रुत) इसमें १६ वर्ष तक बाल्यावस्था मानी गई हैं। वे भी बालक तीन प्रकार के होते हैं—१. दूध पीने वाले (क्षीरपाः) २. दूध और अन्न सेवन करने वाले (क्षीरान्नादः) और ३. अन्न सेवन करने वाले (अन्नादः । इनमें एक वर्ष की अवस्था तक दूध पीने वाले,

दो वर्ष तक (दूसरे और तीसरे वर्ष तक) दूध और अन्न दोनों का आहार करने वाले, और इसके उपरान्त अन्न खाने वाले। यह मर्यादा स्थूल रूप से ही समझनी चाहिये क्योंकि कई कारणों से उपर्युक्त मर्यादा में परिवर्त्तन होता है। अतः व्यवहार की दृष्टि से वर्ष मर्यादा की अपेक्षा इनके विशिष्ट लक्षणों के अनुसार ही बाल्यादिक अवस्थाओं की निश्चिति करनी अधिक उचित होती है। चरक संहिता में बाल्यावस्था की मर्यादा ३० वर्ष तक बतलाई है और उसके दो विभाग किए हैं। १६ वर्ष की अवस्था तक अपरिपक्व धातु का काल—(तत्र बालमपरिपक्व धातुमजातव्यञ्जनं सुकुमारमक्लेश सहम सम्पूर्णबल श्लेष्मधातुप्राय माषोडशवर्षं, विवर्धमान धातु गुणं पुनः प्रायेणानवस्थित सत्व-मात्रिंशद्वर्षमुपदिष्टम् " (चरक० ८) और १६ वर्ष से ३० वर्ष तक विवर्धमान धातु काल, जब मनुष्य का मन प्रायः अव्यवस्थित रहता है। यह काल श्लेष्मा का अर्थात् इस समय शरीर का रचनात्मक कार्य अधिक होता है। यहां दूध और अन्न सेवन की दृष्टि से बाल्यावस्था के जो ३ विभाग किये हैं उसमें बालक-पोषण के सम्बन्ध में बड़ा भारी तत्व है। अन्न से यहां उस प्रकार का अन्न अभिप्रेत है जिसकी चर्वण करने की आवश्यकता होती है। चर्वण के लिये दाँतों की जरूरत होती है। पहले वर्ष के शिशु के केवल ६ दांत होते हैं जो काटने के काम में आने वाले कर्त्तनक होते हैं। इस लिये पहले वर्ष में शिशु का आहार केवल माता या गो-दुग्ध होना चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्न प्राशनविधि के पश्चात्, दांत निकलना प्रारम्भ होने के बाद, जो प्रायः

छठे सातवे मास से आरम्भ हो जाते हैं, शिशु को चूष्य, पेय, लेह्य, खाद्य द्रव्य थोड़ी मात्रा में दे सकते हैं। परन्तु इन द्रव्यों की राशि अत्यल्प होनी चाहिये और इस दृष्टि से पहले वर्ष के बालक को क्षीरप कहा है। पहले वर्ष में भक्ष्य भोज्यादि खाद्य द्रव्य, जिनके लिये चर्वण की आवश्यकता है, बालक को देना अस्वास्थ्यकर है। क्योंकि बालक इन द्रव्यों को जैसा का तैसा निगल जाता है। द्वितीय और तृतीय वर्ष में बालक के सब दांत निकल आते हैं, अतः इन दो वर्षों की अवस्था में शनैः शनैः अन्न की मात्रा बढ़ा कर तीसरे वर्ष के अन्त से उसे पूर्ण अन्नाहारी बना सकते हैं। परन्तु अन्न प्रदान के साथ २ उसे अन्न को खूब चबा २ कर खाने का उपदेश भी देते रहना परमावश्यक है। (तेषु संवत्सरपराः क्षीरपाः द्विसंवत्सरपराः क्षीरान्नादाः, परतो अन्नादा इति सुश्रुतः)। अर्वाचीन विज्ञान द्वारा भी यह थोड़े अन्तर के साथ सम्मत है यथा रौबर्ट हचीनसन लिखते हैं—"From about the tenth month onwards something to chew shou'd b: given occasionally, Such as a rusk, or a crust, or a qiece of sponge cake or stale bread and butter. After the third year a child should be fed much like a grown uP person." अर्थात्—दसवें महीने के पश्चात् शिशु को दूध के अतिरिक्त रोटी वगैरह का कुछ भाग चबाने के लिये देना चाहिये और तीसरा वर्ष समाप्त होने पर उसको युवा मनुष्य की तरह सर्वप्रकार का अन्न देना चाहिये।

इससे यह स्पष्ट है कि प्राचीन ऋषियों का मत आधुनिक मत के साथ मिलता है।

सुश्रुत के अनुसार १६ वर्ष की अवस्था से लेकर ७० वर्ष की अवस्था पर्यन्त मध्य वय होता है। परन्तु चरक संहिता में ३० से ६० तक मध्य वय माना है। ('षोडेश सप्तत्योरन्तरे मध्यं वयः' सुश्रुत, "मध्यं पुनः पित्त धातुप्रायमाषष्ठि वर्षमुपदिष्टम्" चरक)। सुश्रुत के अनुसार २० वर्ष की अवस्था तक शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्गों की वृद्धि, तीस वर्ष की अवस्था तक यौवन, चालीस वर्ष की अवस्था तक सर्व धातु, इन्द्रिय बल और वीर्य इनकी सम्पूर्णता और इसके उपरान्त ४० वर्ष तक थोड़ी २ हानि होने लगती है। ("तत्र आविंशतेर्वृद्धिः, आत्रिंशतो यौवनं, आचत्वारिंशतः सर्वधात्विन्द्रियबल-वीर्यसम्पूर्णता, अतऊर्ध्वमीषत् हानिर्यावत् सप्ततिरिति ।" सुश्रुत) आधुनिक कल्पना के अनुसार शरीर की वृद्धि, पच्चीस वर्ष की अवस्था तक होती रहती है। यहां वृद्धि का विशेष सबन्ध अस्थियों के साथ है। मांसादि अन्य धातुओं की वृद्धि इसके उपरान्त भी हो सकती है।

७० वर्ष के उपरान्त जिनका सब धातु, इन्द्रिय, बल, वीर्य और उत्साह दिन दिन क्षीण हो रहा है त्वचा में झुरियां पड़ रही हैं, बाल सफेद या नष्ट हो रहे हैं, सब कार्यों में असमर्थ हो रहा है, मेघ बरसने पर पुराने मकान की भांति जो गिर रहा है, ऐसे मनुष्य को वृद्ध कहते हैं। वृद्धावस्था की मर्यादा ६० से १०० वर्ष तक लिखी है—("अतः परं वायु धातुप्रायंक्रमेण जीर्णं मुच्यते वर्षशतान्तम्," चरक)। भारतीय शास्त्रज्ञों के मतानुसार कलियुग

में आयु की अधिकाधिक मर्यादा एक सौ वर्ष तक है। फ्लोरेन्स आदि आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार भी मनुष्य की आयु १२५ वर्ष की होती है। परन्तु इससे अधिक आयुष्मान् के कई उदाहरण प्राचीन तथा अर्वाचीन काल में मिलते हैं।

उपरोक्त तीन अवस्थायें अपनी २ विशेषता रखती हैं। प्रत्येक अवस्था के लिये पृथक् २ आहार विहार के नियम बने हुए हैं। वे समस्त नियम शरीर के सभी विचारणीय पहलुओं को दृष्टि में रख कर आचार्यों द्वारा निर्मित किये गये हैं। इन्हीं नियमों के आधार पर मानव जीवन के लिये उपयोगी चार आश्रमों का निर्माण हुआ है। मनुष्य के जब तक रसादि धातु अपरिपक्व रहते हैं उस काल तक उसे पूर्ण ब्रह्मचारी अर्थात् कायिक, वाचिक और मानसिक अष्टविध मैथुनों से पराङ्मुख होना चाहिये। यह जीवन काल मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन का स्वर्णकाल माना गया है; क्योंकि इस काल में मनुष्य अपने सारे जीवन के लिये व्यय करने का अक्षय कोष संग्रह करता है। जिसने इस स्वर्णकाल को सम्भाला उसका सारा जीवन सुखमय व्यतीत होता है। जिसने इस जीवनमें प्रमाद किया वह सारा जीवन पछताता रहता है और क्लेशमय जीवन व्यतीत करता है। यह मनुष्य के भावी जीवन संग्राम को सफलतापूर्वक तय करने के लिये आयुध संग्रह का काल है; जिसने संग्रह किया उसका जीवन संग्राम सफल हुआ, जिसने नहीं किया वह विफल हो इस संग्राम में अकाल ही कालकवलित होता है। मनुष्य इस संग्रहकाल में सभी आहार-विहार तथा सदाचार के

नियमों का पालन करते हुए अपने संचित धन को लेकर जीवन के दूसरे मञ्जिल में अर्थात् गृहस्थाश्रम में उतरता है और उसके नियमों को अपनाता है। मानव की यही अवस्था ससार को ससार बनाती है। यदि इस अवस्था का विधिवत् उपयोग न किया जाय तो यह सारा संसार निस्सार ही रह जाय।

यह अवस्था आजकल समय के लिहाज से २५ से लेकर ३० तक, से प्रारम्भ होती है। इसके पूर्व इस आश्रम में प्रविष्ट होना, अपने जीवन से शत्रुता करना है। इस काल में मनुष्य आपूर्ण बलवीर्य हो जाता है। मनुष्य की बुद्धि भी इस काल से परिपुष्ट होनी प्रारम्भ हो जाती है। इस काल में मनुष्य अपने तथा अपने आश्रितों के पालन-पोषण के लिये कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, सेवा आदि नाना प्रकार के मानवोचित श्रम अपनी शक्ति के अनुसार करने लगता है। इस ससार को अक्षुण्ण रखने के लिये प्रजनन की भी आवश्यकता है, अतः मनुष्य एतदर्थ अर्थात् पुत्रोत्पादनार्थ मिथुन वृत्ति में प्रवृत्त होता है। और प्रजनन क्रिया को सम्पन्न करता है। जिस प्रकार प्रकृति और पुरुष के सम्पर्क से संसार की उत्पत्ति है उसी प्रकार संसार के सभी पदार्थ स्त्री-पुरुष के सम्पर्क से उत्पन्न होते हैं। यह स्त्री-पुरुष की जाति संसार के सभी जड़ चेतन पदार्थों में पायी जाती है। इस कार्य के लिये शास्त्रों में नियम निर्दिष्ट हैं। मनुष्य को चाहिये कि उसे विधिवत् पालन करे। इस अवस्था के बाद मनुष्य की तृतीयावस्था प्रारम्भ

"गृहेषु द रेषु तिष्ठति अभिरमते इति गृहस्थः" (गृहस्थस्य भावः)।

होती है। इस अवस्था मे शरीर के सभी उपादान शनैः २ क्षीण होने लगते हैं अतः उनकी पूर्त्त के लिये रसायन का सेवन और गृहस्थी से पृथक् हो वानप्रस्थ¹ आश्रम लेना चाहिये। इस अवस्था में मनुष्य अपने को वैयक्तिक स्वार्थ से पृथक् कर अपने अन्दर परोपकार वृत्ति तथा सर्व प्राणियों पर दया भाव का संचय करता है। तदन्तर मनुष्य सांसारिक सभी कर्मों को त्याग कर वेद का आश्रय लेता है और अपने परलोक प्राप्त्यर्थ ईश्वरोपासना करता है यह मनुष्य की सन्यासावस्था है। इस अवस्था में सभी सांसारिक कर्मों का त्याग कर देना होता है। इस प्रकार उपरोक्त चतुर्विध आश्रमों के नियमों का पालन करना और समयानुकूल उनमें प्रविष्ट होना मनुष्य को, चतुर्विध पुरुषार्थ प्राप्ति के लिये परमावश्यक है।

आहार का विकास

प्रत्येक राष्ट्र के राष्ट्राधिकारियों का तथा उस राष्ट्र के वैद्यों का कर्त्तव्य है कि वे इस बात की भलीभांति छान-बीन करें कि मानव जाति की प्रगति तथा उसके वैयक्तिक, शारीरिक तथा मानसिक गुण दोष का उनके आहार से क्या सम्बन्ध है। क्योंकि अतीत काल से यह बात सर्वसम्मत रूप से चली आती है कि हमारा आहार हमारे शारीरिक तथा मानसिक गुण दोषों का

१. "गृहस्थस्तु यदा पश्येत् वलिपलितमात्मन।
पुत्रेषु दारान् निक्षिप्य वन गच्छेत् सहैव वा॥" (मनु०)
"काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।"

बहुत कुछ जिम्मेवार है।[1] व्यष्टि से ही समष्टि (समाज का निर्माण होता है अतः व्यष्टि के गुण दोष एकत्र हो समष्टि (समाज) के गुण दोष बन कर व्यक्ति तथा समाज की उन्नति तथा अवनति के कारण बन जाते हैं। विज्ञान से निःसंदेह संसार का बहुत बड़ा उपकार हुआ है और हो रहा है परन्तु साथ ही साथ उससे अपकार भी हो रहा है, इससे भी हम इनकार नहीं कर सकते। इसका कारण मेरी समझ में मानव मस्तिष्क की सहज उर्वरता है। मानव मस्तिष्क स्वभाव से ही उर्वर होता है अतः प्रकृति से उसकी सतत होड़ भी स्वाभाविक है। इस होड़ के परिणाम शुभाशुभ दोनों ही होते हैं। आहार के सम्बन्ध में इस होड़ से क्या हानि और क्या लाभ हुआ है यह निम्न कतिपय वाक्यों से पता चल जायगा। अर्वाचीन वैज्ञानिकों ने आहार का मानव-शरीर से क्या कार्य्य-कारण सम्बन्ध है इसकी वैज्ञानिक (भौतिक) रीति से खूब छान-बीन की है और करते जा रहे हैं। परिणाम इसका यह हुआ है और हो रहा है कि, एक वर्ग इस प्रयत्न में लगा हुआ है कि यथा शीघ्र ऐसे तत्त्वों या उपादानों को विज्ञान बल से आविष्कृत करें कि मानव शरीर को भी भवनादि जड़ पदार्थ-वत् जब चाहें अपनी इच्छानुकूल निर्माण कर लें या उसमें इच्छा-

---

1. "यादृशं भक्षयत्यन्नं बुद्धिर्भवति तादृशी। तमो भक्षयते दीपः कज्जलं हि प्रसूयते॥"

"आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धिः, सत्त्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।" (गीता)

"आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति।" (मनु०)

नुकूल वृद्धि और ह्रास कर ले। दूसरा वर्ग इन वैज्ञानिक आविकारों के यत्र तत्र कुपरिणामों का अवलोकन कर ठीक इसके विपरीत, अर्थात् नैसर्गिक विधियों के अवलम्बन का उपदेश कर रहा है। आज दुनियाँ मे युरोप सबसे अधिक वैज्ञानिक वैभव-सम्पन्न देश माना जाता है। आज की सभ्यता का जन्मदाता कहलाने का भी हामी युरोप भर रहा है। उन्हीं देशों मे कृत्रिम जीवन से ऊब कर नैसर्गिक जीवन व्यतीत करने के उपदेश बड़े जोर शोर से हो रहे हैं। यहा भगवान् आत्रेय का वह पुनीत उपदेश पुन पाठकों के सामने रखे बिना हम नहीं रह सकते जिसे उन्होंने अपने शिष्यों को दिया था कि 'सर्वे एव भवन्त सम्यगाहु अन्यत्रैकान्तिक वचनात्" (चरक सू० १२)। कहने का तात्पर्य यह है कि एकान्त रूप से उसे ही सत्य मानना जिस पर विज्ञान की मुहर लग जाय तथा विज्ञान की सभी बातों पर विश्वास न करना–यह दोनों ही अनुपादेय हैं। साम्प्रतिकी नैसर्गिकी-चिकित्सा तो हमारे विचार से उन अप्राकृतिक विधियों की प्रतिक्रिया मात्र है जो आज के दिन समृद्ध योरपादि देशों मे बहुत जोर शोर से बढ रही है।

मानव वंश की उन्नति में अन्न का महत्व

उदर भरने के लिये मनुष्य क्या प्रयत्न नहीं करता और कहा नहीं भटकता? मनुष्य को अन्न चाहिये, क्योंकि अन्न प्राण धारण के लिये मुख्य साधन है। भगवान् आत्रेय इसकी महिमा बताते हुये कहते हैं—

"प्राणेभ्यो ह्यनन्तरं धनमेव पर्येष्टव्यं भवति कमर्थमिति चेत् उच्यते। न हि अतः पापात् पापीयोऽस्ति यदनुपकरणस्य दीर्घमायुः। तस्मादुपकरणानि पर्येष्टुं यतेत।" (च.सू. ११)

यहां धन शब्द प्राण के सभी साधनों (उपकरणों) के लिये आया है। आगे चल कर इन उपकरणों का वर्णन करते हुए कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, सेवा आदि सभी मानवोचित कार्यों के करने का उपदेश किया गया है। ये सब उपाय शरीर के प्रधान-पोषक अन्न के लिये (पेट भरने के लिये) ही किये जाते हैं। इसीलिये कहा गया है कि—

"प्राणा प्राणभृतामन्नमन्नं लोकोभिधावति।
वर्ण प्रसादः सौस्वर्यं जीवितं प्रतिभा सुखम्॥
तुष्टिः पुष्टिर्बलं मेधा सर्वमन्नेप्रतिष्ठितम्।
लौकिकं कर्म यद्वृत्तौ स्वर्गतौ यच्च वैदिकम्।
कर्मापवर्गे यच्चोक्तं तच्चाप्यन्ने प्रतिष्ठितम्॥ (च.सू. २७)

अन्न में विविधता होनी चाहिये यह मनुष्य की खास इच्छा होती है। इसी हेतु वह किसी समय भयंकर से भयंकर कष्ट उठा कर भी विभिन्न प्रदेशों में पर्यटन किया करता था। उस समय उसकी साहसी वृत्ति, अधिकार-लालसा और प्रवास सम्बन्धी उत्सुकता, आदि सभी विषयों में अपने तथा अपने आश्रितों के भूख शमन करने का एकमात्र यही कारण प्रधान हुआ करता था। आदि युग में उष्ण कटिबन्ध में रहने वाले देशों में महलों की आवश्यकता नहीं अनुभूत होती थी। उनका काम सर्वत्र

वृक्षों की सघन छाया के कारण पूरा हो जाता था। कपड़ों के सम्बन्ध में भी इस कटिबन्ध में रहने वाले लोग निश्चिन्त रहा करते थे। क्योंकि यहां की उष्ण जल-वायु के कारण उन्हें उनकी अधिक आवश्यकता ही नहीं प्रतिभासित होती थी। सारा प्रदेश विभिन्न प्रकार के फल फूलों और कन्दमूलों से भरा पड़ा था। दैववशात् कभी यदि आस पास के प्रदेशों में स्वजनों की भीड़ हो जाती, तो उन्हें आगे पीछे खसकने के लिये पर्याप्त गुञ्जायश थी। किन्तु फिर भी उस समय लोगों में जीभ की चाट बुझाने के लिये देशान्तर जाने की हार्दिक इच्छा थी, यह स्पष्ट है। क्योंकि इसके बिना उनकी दूर २ तक यात्रा करने का कोई बुद्धि संगत कारण समझ में नहीं आता। आधुनिक युग में भी इस पेट के लिये, इसी प्रकार के अनेक स्थानान्तर करने पड़े हैं और पड़ रहे हैं। शहरों और कल कारखानों में मजदूरी अधिक मिलती है, इस आशा में लोग देहातों से उठ २ कर शहरों में आबाद हुए हैं और अब जब शहरों में भीड़ ज्यादा हुई, रोजगार मिलना कठिन हो गया, तब अब उन्हीं लोगों का ध्यान पुनः देहातों की ओर आकृष्ट हुआ है और लोग यह कहते हुए नजर आते हैं कि "देहात आबाद किये जांय और उनका सुधार किया जाय" इत्यादि।

मत्स्याहारी, मांसाहारी और कृषि-जीवियों की उपपत्ति

देश पर्यटन काल में लोगों को कदाचित् ऐसे अवसर और स्थल आ पड़े होंगे जहां उनके भूख की शान्ति के लिये उपयुक्त

अन्न की उपलब्धि असम्भव सी हो गई होगी। ऐसी परिस्थिति में जो कुछ भी प्राण रक्षार्थ उन्हें समीप मिल सका, उसका उपभोग उन्हें विवशता वश करना पड़ा होगा। इनमें जो नदियों तथा समुद्रों में यात्रा करने वाले होंगे उनकी दृष्टि स्वभावतः जल-जन्तुओं की (मत्स्यादिकों) की ओर गई होगी और उन्होंने उनका भक्षण प्रारम्भ कर दिया होगा जिसने आगे चल कर अभ्यासवश उन्हें मत्स्याहारी बना दिया। इसी प्रकार जो स्थलों में, वनों में जहां भक्ष्य फल फूलों तथा कन्दमूलों की न्यूनता होगी वहां विचारने वाले अन्त काल में पशु पक्षी, जो भी उपलब्ध हुए होंगे, उनका भक्षण करने के लिये बाध्य हुए होंगे जिसने उन्हें आगे चल कर अभ्यासवश मांसाहारी बना दिया। अभ्यासवश मनुष्य बहुत से ऐसे अप्राकृतिक कार्य करने का स्वभाव बना लेता है जो मानवोचित नहीं हैं। प्रस्तुत पुस्तक के द्वितीय अध्याय मे हमने आहार विश्लेषण के वर्णन में बताया है कि मांसाहार मानवोचित नहीं है। इसके लिये अनेक युक्तियां तथा बड़े २ एतद्देशीय तथा पाश्चात्य देशीय शारीर-शास्त्रियों की युक्तियां भी उद्धृत की हैं। आयुर्वेद शास्त्र में सात्म्य का वर्णन करते हुए बताया गया है कि सात्म्य अर्थात् पथ्य (उचित आहार-विहार) चार प्रकार का होता है। यथा—(१) ऋतु सात्म्य (२) देश सात्म्य (३) व्याधि सात्म्य और (४) ओक-सात्म्य। इनमें (१) ऋतु सात्म्य वह है जो ऋतु के अनुकूल अर्थात् जिस ऋतु में जो आहार-विहार शास्त्रों में विहित है और जो शरीर के अनुकूल है। (२) इसी प्रकार जो

आहार-विहार देश के विचार से (आनुप, जांगल और साधारण देश) शास्त्रों मे विहित है वह देश सात्म्य है। (३) व्याधि सात्म्य वह आहार-विहार है जो व्याधि को दूर करने में सहायक हो और शरीर को सुखावह हो। (४) ओक-सात्म्य वैसे आहार-विहार को कहते हैं जो शरीर के लिये उपयुक्त न होने पर भी अभ्यासवशात् शरीर के अनुकूल हो गए हैं। मांसाहार भी अभ्यासवश मनुष्य का ओक-सात्म्य उपरोक्त कारणों से बन गया है। यदि ऐसी बात न होती तो प्राचीन ग्रन्थों में (यथा चरक में) ये वाक्य नहीं होते—

"स्नानमुत्सादनं स्वप्नो मधुराः स्नेह वस्तयः।
शर्करा क्षीर सर्पींषि सर्वेषां विद्धि बृंहणम्॥"
(च० सू० २२)

अर्थात् स्नान, उत्सादन, स्वप्न, मधुर गण सिद्ध स्नेह वस्ति, शर्करा, क्षीर, घृत, ये पदार्थ सबों के लिये बृहण हैं और—

"शोषार्शो ग्रहणी दोषैर्व्याधिभिः कर्षिताश्च ये।
तेषां क्रव्यादमांसानां बृंहणाः लघवो रसाः॥"
(च० सू० २२)

अर्थात् जो शोष, अर्श, ग्रहणी, प्रभृति रोगों से कशित हो गए हों उनके लिये क्रव्याद मांसरस (मांसाहारी जीवों का मांस) लघु और बृंहण होता है। उपरोक्त श्लोक से स्पष्ट रूप से प्रतिभासित होता है कि सभी के लिये मांस उपयुक्त बृंहण नहीं है। और भी—"अहिंसा प्राणिनां प्राणवर्द्धनानामुत्कृष्ट तमम्-" इत्यादि चरकसंहिता के वाक्य, मांसाहार मानवोचित नहीं हैं, इसके लिये पुष्ट

प्रमाण है। वेदादि प्राचीन ग्रन्थों में भी अनेक स्थलों पर ऐसे वाक्य मिलते हैं जो इसकी पुष्टि करते हैं यथा—

(i) "ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं, पयः, कीलालं, परिश्रुतम्, स्वधास्थ तर्पयत मे पितृम्।" (ऋग्वेद)

(ii) "स्वादो फलस्य जगन्धाय।" (ऋग्वेद १०। १४६)

(iii) "आयुः सत्व बलारोग्य सुखप्रीति विवर्धनः।
रस्याःस्निग्धाःस्थिराः हृद्याः आहाराः सात्विकाः प्रियाः॥"
(गीता)

(iv) "पुष्प मूल फलैर्वापि केवलैर्वर्त्तयेत्सदा।
काल पक्वैः स्वयंशीर्णैर्वैखानसमतेस्थितः॥" (मनु०)

(v) गुहराज के आतिथ्य करने पर रामचन्द्र कहते हैं:—
"कुशाचीराजिनधरं फलमूलाशनं च माम्।
विद्धि प्राणिहितं धर्मे तापस वनगोचरम्॥" (वाल्मीकि)

(vi) भरत ने भी कहा है—
"चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरोस्म्यहम्।
आहरिष्यामि ते नित्यं पुष्पाणि च फलानि च॥
वन्यानि च तथान्यानि स्वाहार्हानि तपस्विनाम्॥"
(वाल्मीकि)

(vii) सीता ने भी कहा है—
"फल मूलाशननित्या भविष्यामि न संशयः॥" (वाल्मिकि)

(viii) "ये यवान्ना जनपदा गोधूमान्नास्तथैव च।
तान् देशान् संश्रयिष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिताः॥" (महाभारत)

(ix) "कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्प मूल फलैः शुभैः।

नतु नामापि गृह्णीयात् पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥" (मनु०)

(x Flesh and Blood is a repulsive sight to every refined temperament and instinct. Animal slaughter and bloodshed is revolting to every unperverted instinct of man If a hungry man be shut up in a room containing some fruits, nuts, gram, fouls and goats his instinct would naturally lead him to make a squar meals of the fruits and grams etc and not to devouring of the innocent creatures In the sight of bunch of fresh grapes, as for the matter of fact, any short of fresh wholesome fruit, our mouths begin to water, but not so, on seeing a goat or a pig The very smell and sight of their prey, makes the lion and the tiger ferocious and they instantly pounce upon their prey sucking the gushing warm blood, and gulping down large pieces of live raw flesh As far as our enquiries goes, no sane human being is found capable or inclined to copy the monstrous carvality, because such is not his nature Flesh and blood is not a natural food for man."

"Man does not relish meat in the raw

state, without some short of seasoning and preparations. He must at least have salt with his meat. such is not the case with fruits and nuts." (Advantages of vegeterian diet).

आज भी मत्स्याहार तथा मांसाहार उन्हीं मानव जातियों में प्रचलित है जो राक्षसी वृत्ति के हैं या जो फैशन के फेर में इस अभ्यास को डाले हुये हैं।

मांसाहार के दोष

मांस के भक्षण से मन में तामसी भाव उत्पन्न होते हैं, जो मनुष्यों को उसके लक्ष्य से सदा दूर हटाते हैं। जो लोग यह कहते हैं कि मांमाह र से मनुष्य को अधिक बल मिलता है यह उनकी कोरी कल्पना है। यदि ऐसा कहें कि मांसाहार से मनुष्य में या सभी प्राणियों में राक्षसी वृत्ति उत्पन्न होती हैं तो इस में तथ्य है। संसार के जितने भी बली जीव हैं वे प्रायः शाकाहारी हैं। जैसे घोड़ा, हाथी, गैंडा, प्रभृति। ये कभी भी मांस भक्षण नहीं करते। ये सदा शाकाहार करते हैं, फिर भी इनका शरीर कितना विशाल, बलिष्ठ, और फुर्तीला होता है। मांसाहारी जो जीव हैं उनमें कोई अधिक बल नहीं होता; उनमें हिंसक वृत्ति अवश्य अधिक होती जिसके कारण वे सबके लिये बड़े ही भयकर प्रतीत होते हैं। यदि वर्त्तमान उपलब्ध इतिहास को ही प्रमाण मानें जो प्रायः किसी विशेष दृष्टि बिन्दु से लिखे गए हैं, तो भी उससे यही अर्थ निकलता है कि मनुष्यों में जब सभ्यता का अभाव था, उनकी

वृत्तियां प्रायः राक्षसी थीं, तब वे अधिक मांस का आहार करते थे। ज्यों ज्यों वे सभ्यता की और अग्रसर होते गए उनका मांसाहार कम होता गया और वे अन्नापार्जन की ओर प्रगतिशील हुए। कुछ लोग मांस के पक्ष में यह दलील देते हैं कि मांस द्वारा मनुष्यों को उत्तम प्रोटीन मिलती है अतः मांसाहार उपयुक्त है। इस सम्बन्ध में मैं पाठकों का ध्यान उन पशु-पक्षियों की ओर आकृष्ट करता हूँ जिनका मांस वे उपभोग के लिये बनाते हैं। आज कल जो भी मांस भोजन रूप से मनुष्य उपभोग करता है वह शाकहारी जीवों का होता है। यदि वे जीव अपने अन्दर उक्त उत्तम प्रोटीन को अपने शाकाहार से प्राप्त कर सकते हैं, तो क्या मनुष्य उस उत्तम प्रोटीन को शाकाहार से नहीं प्राप्त कर सकता? अवश्य कर सकता है। मेरे विचार से मानव शरीर के अन्दर पशु शरीर की अपेक्षा अधिक उत्तम प्रोटीन प्रस्तुत करने की क्षमता है। इसका प्रमाण यह है कि उपरोक्त मांसाहार से प्राप्त प्रोटीनों का भी मानव शरीर के अन्दर पुनः परिपाक होता है और इस परिपाक के बाद ही वह मानव शरीरोपयोगी प्रोटीन बनता है। प्रत्येक प्राणी के शरीर में, अपने २ शरीरानुकूल उपादान (प्रोटीनादि), अपने २ आहार से निर्माण करने की भिन्न २ क्षमता होती है। जो प्रोटीन आदि शारीरोपादान शाकाहार से पशु पक्षियों के शरीर के अन्दर निर्मित होते हैं वे पशु पक्षियों के ही अनुकूल होंगे, मानवोपयोगी कदापि नहीं हो सकते। जंगलों में रहने वाले वन्य मनुष्य या राक्षस, मानवयोनि में होने पर भी, मांसाहार के कारण असभ्य एवं राक्षसी वृत्ति के होते हैं। जब

कभी उन्हें अपने समान योनि के जीव अर्थात् सभ्य मनुष्य से मिलने का मौका मिलता है वे उन्हें काटने को दौड़ते हैं। इस का कारण उनकी राक्षसी वृत्ति और विवेक शून्यता है। इस सम्बन्ध में मैं एक प्रत्यक्ष घटना पाठकों के सामने रखता हूँ। लगभग १५-२० वर्ष हुए जब एक बालिका जो जन्म होते ही अपने माता-पिता से किसी कारण वश पृथक् किसी जंगल में छोड़े जाने के कारण, किसी हिंसक पशु की शरण में चली गई थी और विधिवशात् उस बालिका को उस हिंसक पशु ने मारने और भोजन करने के बदले, अपनी रीति से उसका पालन-पोषण किया। उस जंगल के शनैः २ कट जाने के कारण तथा उसके पालक पशु के अन्यत्र चले जाने के कारण, भटकती हुई बालिका जंगली मनुष्यों के हाथ लगी, और वहां के जिला मजिस्ट्रेट के यहां लायी गई। उसे वहां के मजिस्ट्रेट ने जेल के एक पिंजरेदार सेल में बन्द कर दिया और वहां के डाक्टरों की सम्मति से उसे वहाँ सभ्य मानव बनाने का सुप्रबन्ध किया गया। उस लड़की को देखने के लिये जगह २ से लोगों की भीड़ उमड़ने लगी। मैं भी उसे देखने गया। वह लड़की प्रारम्भ में मनुष्यों को देखकर विचित्र तरह की पशु की बोली बोलती और बार २ दांतों को काटने के लिये निकालती थी। आरम्भ में वह कच्चे मांसों के अतिरिक्त प्रायः और कुछ नहीं भक्षण करती थी परन्तु शनैः २ वह फल तथा अन्न की ओर वहां के सुप्रबन्ध से लायी गयी। ज्यों २ वह मांसाहार का त्याग तथा शाकाहार का ग्रहण करती गयी उसकी हिंसक तथा राक्षसी वृत्ति भी कम होती गई। पहले वह

वस्त्र आदि कुछ नहीं पहनती थी। बाद में वह वस्त्र आदि भी पहनने लगी। यह वृत्तान्त कोई कपोल-कल्पित नहीं है।

कैन्सर

कैन्सर (अर्बुद) नामक भयंकर बीमारी के कारणों की सूची में मांस भक्षण आता है। आयुर्वेद में रक्तार्बुद तथा मांसार्बुद, जो कैन्सर के लक्षणों से मिलते-जुलते हैं, स्पष्ट रूप से वर्णित हैं कि "एतद् भवेन्मांस परायणस्य" (सु० नि० ११)। अर्थात् यह रक्तार्बुद रोग मांसभक्षी लोगों को हुआ करता है। आधुनिक विकृति विज्ञान के अनुसार आयुर्वेदिक रक्तार्बद और मांसार्बुद के लक्षणों का जो तुलनात्मक विचार अब तक किया गया है उसको देखकर रक्तार्बुद कैन्सर का एपीथिलियोमा (Epetheleoma) नामक जो प्रकार है वह हो सकता है। और मांसार्बुद कैन्सर का स्कीरस (Scirrhus) नामक प्रकार हो सकता है। भारतवर्ष की अपेक्षा युरोप और अमेरिका में कैन्सर अधिक पाया जाता है और दिन प्रतिदिन इससे पीड़ित होने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। अमेरिका के संयुक्त संस्थानों के लोगों की मृत्यु के कारणों में कैन्सर का नम्बर दूसरा आता है। सम्भवतः आयुर्वेद का उपरोक्त सूत्र ही इसका कारण हो। ये देश मांसपरायण हैं यह निर्विवाद है। इसके अतिरिक्त मांस-भक्षियों में रक्तविकार, (वातरक्त,कुष्ठादि) तथा उदरविकार अत्यधिक पाया जाता है। संहिता ग्रंथों में अनेक स्थलों में ऐसा वर्णन मिलता है कि मांस भक्षण से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। चरक में अतिसार की उत्पत्ति का कारण

मांस भक्षण स्पष्ट रूप से प्रदिपादित है। मांस पचने में गुरू होता है, कारण मनुष्य के आमाशय में मांस के पाकार्थ द्विविध अम्लरसों का स्राव नहीं होता जैसा कि हिंसक जीवों के आमाशय में होता है। जिससे अपचजन्य नाना प्रकार का रोग मांस भक्षण से होने की सम्भावना रहती है। "It is a known fact that the gastric juice secreated by a non-flesh eater differs from that of a mixed feeder, the latter secreates two juices, where as nature provides only one kind to human.being.".-Dr.Renhold M.D.Ph.D.". मांस भक्षण से शरीर में मूत्राम्ल (Uric Acid) अधिक बनता है जो एक प्रकार का विष है। यदि इसका शरीर से उचित निष्कासन न हो तो नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। आमवात, वातरक्त तथा रक्तचापाधिक्य (High blood pressure) आदि रोग मांसाहारी को अधिक हुआ करते हैं। भोजन की ४ कसौटियां हैं— (१) भोजन आयु, बल, कान्ति और बुद्धिवर्धक हो, (२ सुलभ तथा किसी अन्य प्राणी को किसी प्रकार का विघ्न न पहुँचाने वाला हो, (३) अगर्हित कर्मों से उत्पन्न हुआ हो और किसी कष्ट के बिना उत्पन्न हो, (४) मोक्ष प्राप्ति में सहायक हो। मांस-भक्षण से उपरोक्त कार्य्य सिद्ध नहीं होते, अतः मांस भक्षण मानवोचित नहीं है।

कृषि-जीवी या किसान

मानव जीवन के क्रमिक विकास का अनुशीलन तथा मानव-समाज के इतिहास का अध्ययन इस बात की ओर संकेत करता है

कि मनुष्य स्वभाव से दुग्धाहारी तथा फलाहारी है। इतिहास इसका साक्षी है कि मनुष्यों की आदिकाल में जब जन-संख्या इतनी विशाल न थी, पर्याप्त फलफूल, कन्दमूल तथा दूध देने वाले पशु बिना अधिक परिश्रम के प्राप्त हो जाते थे; मनुष्य दूध, फल, मूल, कन्द आदि भोजनों पर ही रहता था। पीछे जब जनसंख्या की वृद्धि होने लगी, तब अन्न पदार्थों के उत्पादन में मनुष्य का उर्वर मस्तिष्क अग्रसर हुआ और पशुपालन के अतिरिक्त कृषि (खेती भी) करने लगा और अपने भोजन के लिये अन्न आदि उत्पादन करने लगा। सब प्रकार के अन्न एक स्थान पर नहीं उत्पन्न होते, अत. भिन्न २ स्थानों में विविध प्रकार के उत्पन्न अन्नों का परस्पर आदान प्रदान कृषि-जीवियों में प्रारम्भ हुआ, जिसने आगे चल कर वाणिज्य का रूप धारण कर लिया। इस प्रकार मनुष्य अपने भोजन में विविधता की पूर्ति करने लगा। इस प्रकार कृषि जीवियों की वृत्ति साधु वृत्ति थी। कोई किसी को किसी प्रकार का कष्ट न देता था। अपने खेतों तथा पशुओं के पालन में वे सदारत रहते थे। यह काल सतयुग का काल था। परस्पर किसी को किसी से द्वेष तथा घृणा न थी। जो जहां था वह वहां देश तथा अपने अनुकूल अन्न पैदा करता था और जब कभी अपने भोजन में कोई हेर-फेर की आवश्यकता होती तो एक स्थान वाले दूसरे स्थान वालों से अदल-बदल कर अपना कार्य शान्तिपूर्वक चला लेते थे। उस समय परस्पर मनोमालिन्य न होने से पूर्ण शान्तिप्रद समाजवाद चलता था। ज्यों २ वैयक्तिक लालसा बढ़ती गई, मनुष्य का स्वार्थ बढ़ता गया और लोग एक दूसरे के स्वार्थ

का अपहरण करने लगे, त्यों-त्यों परस्पर मनोमालिन्य, संघर्ष तथा विद्वेषादि बढ़ते गये।

आधुनिक युग में सुख समृद्धि की वृद्धि के लिये सुधारों के नाम पर बहुतेरे साधनों की निर्मिति, आविष्कार और परिवर्तन हुए हैं; जिनमें मानव वंश के अन्न का भी समावेश है। इसमें किसी भी प्रकार का मनमाना परिवर्त्तन या रद्दोबदल होना देश के लिये भारी हानिप्रद प्रमाणित हुआ है। यह उन भयंकर हानि-परम्पराओं में से एक है जिनके दुष्परिणाम किसी भी कृषि-प्रधान देश को उद्योग-प्रधान होते समय अवश्य भोगने पड़ते हैं। उदाहरणार्थ खेतों में पैदा होने वाली ताजी शाक, सब्जी छोड़, मनुष्य को मशीनों में साफ क्रिया हुआ अन्न या उसका आटा खाकर गुजारा करना पड़ता है। पाश्चात्य देशों को तो इस उत्क्रान्ति का कटु अनुभव मिला है। किसी समय वहां अन्न को बुरी तरह पकाया, उबाला या सेका करते थे। आगे चल कर जब जनसख्या में आशातीत वृद्धि हुई और खेती का परिमाण घटा तो वे अन्यान्य देशों से अन्न पदार्थ मंगाने लगे। उन्नीसवीं शताब्दि में शक्कर अत्यन्त सस्ती हुई और बहुतेरे खाद्य-पदार्थ कल कारखानों में तैयार होने लगे। परिणाम यह हुआ कि वह अन्नपदार्थ डिब्बों में भर भर कर (Tinned) उनका निर्यात दूर दूर के देशों तक होने लगा तथा उन्हें टिकाऊ और सुरक्षित बनाने के लिये उनमें रासायनिक संरक्षक द्रव्य भी मिलाने पड़े। इन सब मर्कट-लीलाओं का परिणाम कितने ही रोगों के रूप में प्रकट हुआ! अब

सौभाग्य है कि लोग शीघ्र ही जाग गए हैं। इन्होंने मानव वंश के आहार का संशोधन और सुधार करना आरम्भ कर दिया है। पोषण सम्बन्धी संशोधन कार्य भी इस समय जोरों से जारी है।

आहार के सम्बन्ध में सम्पूर्ण भूमण्डल पर मनुष्यमात्र की आवश्यकताएं प्रायः एक-सी हैं। उनकी पूर्ति विचार पूर्वक और शास्त्रीय ढंग से करने पर ही मनुष्य आरोग्य सम्पन्न और दीर्घायु बन सकता है। केवल रस-लोलुप होकर पेट को मालगोदाम बनाने से एक ही दो पीढ़ी में पश्चात्ताप के आंसू बहाने की नौबत आ जाती है।

आर्य्य लोगों के आहार विहार बड़े शुचितापूर्ण-सम्पन्न एवं मानवोचित थे। इसका साक्षी प्राचीन इतिहास है। यवनों के पदार्पण से यहां के आहार-विहार में भ्रष्टता प्रारम्भ हुई। यवनों के राजत्व काल में दुर्व्यसन की सीमा न रही। इसका परिणाम यह हुआ कि आर्यों के अन्दर भी ससर्ग दोष आने लगा और उनका आहार-विहार भी बहुत कुछ भ्रष्ट हो गया। आहार-विहार में भ्रष्टता आने का परिणाम यह हुआ कि सबों की बुद्धि मारी गई और आहार-विहार को जिह्वा तथा अन्य इन्द्रियों की तृप्तिमात्र का विषय बना डाला गया।

इस प्रकार आहार-विहार में भ्रष्टता आने का दुष्परिणाम यह हुआ कि हम अपने क्षुद्रेन्द्रियों की उपशान्ति मात्र के लिये यवनों के क्रीत दास बने रहे और आज भी हमारी स्वतन्त्रता-देवी विदेशियों के यहां वास करती है। अप्रत्यक्षतः यह सब

आहर के परिवर्तित होने का दुष्परिणाम था: जिसकी आग अब तक हम आर्यों को झुलसा रही है। इधर ७०-७५ साल स हमारा प्रकृत स्वास्थ्य जो विशेष रूप से गिरता जा रहा है, उसका प्रधान कारण यह है कि हम लोग उत्तरोत्तर शहरवासी होना पसन्द कर रहे हैं, जिससे हमारा सम्बन्ध देहातों से टूट कर हमें उपयुक्त अन्न और आहार के लिये बुरी तरह तरसा रहा है। उसके अभाव में हमारी हालत उत्तरोत्तर गिरती जा रही है। हम कृत्रिम तथा सड़े गले भोजनों को अपनाने लग गए हैं। हम नाना प्रकार की शरीर को नष्ट करने वाली नशीली तथा अनुपादेय वस्तुओं को अपनाने लगे हैं। ऐसी दशा में यदि समय रहते हमने अपने को नहीं संभाला तो कुछ ही दिनों में मानवता का विनाश कर हम अपने को अतीत के गर्भ में पहुँचा देंगे। यदि समय रहते जाग गए तो निश्चय ही, हमें यह अवनति रोकते देर न लगेगी।

हमारा आहार कैसा हो?

आहार की चार कसौटियों का अभी वर्णन किया जा चुका है। हमारा आहार उन कसौटियों पर कसा हुआ संतुलित, सर्वाङ्ग-पूर्ण, सुपच, शुचि, सुन्दर, तथा शिव होना चाहिये।

संतुलित आहार

(अ) उष्णैकं (Caloree) के सम्बन्ध में सातवें अध्याय में प्रकाश डाला गया है। यहां वैयक्तिक तथा सामूहिक उष्णैकं की मर्यादा किस प्रकार निर्धारित करेंगे इस सम्बन्ध में

कहा जायगा। उष्णैकं निकालने की पद्धति—परिवार के मनुष्यों की गणना प्रौढ़ों में करके, कोई खास काम करते हुए जन को कितने उष्णैकं की आवश्यकता होती है निकालो; और पश्चात् काम करते समय उन्हें जितने उष्णैकं लगेंगे, उसका हिसाब निकाल कर, उन उष्णैकों को पहले निकाले हुए उष्णैक में जोड़ दो। अगर मान लिया कि किसी परिवार में क्रमशः ३५ वर्ष की अवस्था का मालिक, ३० वर्ष की अवस्था की मालकिन, चार बालक क्रमशः १२, ८, ४ वर्ष के तथा तीन महीने का दूध पीता बच्चा; मालिक का १८ वर्ष की अवस्था का छोटा भाई, २५ वर्ष की विधवा बहन, उसका २ वर्ष का नन्हा बच्चा, ५५ वर्ष की वृद्धा माता और २५ वर्ष की अवस्था का नवयुवक जो कि मिल कर ११ आदमी हैं; और उनके पोषण के लिये गणना करनी है; तो वह गणना सातवें अध्याय में बताए हुए गुणांक लगा कर करें। उदाहरणार्थ—

सं०	मनुष्य	अवस्था मान	उष्णांक के गुणांक.
१	परिवार का मालिक	३५	१.००
२	लड़का	१२	०.९०
३	बच्चा	४	०.५०
४	छोटा भाई	१८	१.००
५	नौकर	२५	१.००
६	गृहिणी	३०	१.२५
७	दूध पीता बच्चा	३ मास	०.००
८	लड़की	८	०.७०
९	विधवा बहन	२५	०.८३
१०	उसकी लड़की	२	०.४२
११	वृद्धा माता	५५	०.७५
	प्रौढ़ो में गणना		८.३५

परिवार में कुल ११ मनुष्य हैं। दूध पीता बच्चा तो केवल स्तन्य पान करता है इसलिये उसे अन्न खरीद कर नहीं खिलाना पड़ता। अतः उसका गुणांक शून्य होता है। मनुष्य गणना कुल ८.३५ प्रौढ़ो में आती है। एक प्रौढ़ मनुष्य के लिये कम से कम २४०० उष्णांक लगते हैं। अर्थात् इसका हिसाब २४००×८.३५ = २०.०४० होता है। अतः इससे स्पष्ट है कि परिवार के दैनिक भोजन में कम से कम इतने उष्णांक देने वाले पदार्थ अवश्य होने चाहियें।

(२ काम आदि करने के लये अधिक उष्णौक—

स०	मनुष्य	अवस्था	प्रतिघंटे अधिक उष्णौक	काम या किसी विशेष प्रकार के परिश्रमों के लिए प्रायः ८ घंटों के लिए आवश्यक उष्णौक
१	घर में या नौकरी पर सदा काम करने वाला मालिक	३५	७५	६००
२	लड़का	१२	९०	७२०
३	लड़की	४	५०	४००
४	छोटा भाई	१८	१५०	१२००
५	नौकर	२५	१३५	१०८०
६	मालकिन	३०	२५	२००
७	विधवा बहन	२५	५०	४००
८	वृद्धा माता	५५	२५	२००
९	लड़की	८	४०	३२०
१०	लड़की	२	३५	२८०
	कुल उष्णौक			५४००

कुल आहार में कम से कम २०.०४० उष्णौकं और काम करने के लिये ५४०० अधिक उष्णौकं मिला कर २५४४० उष्णौकं परिवार के लिये प्रतिदिन आवश्यक है।

कुछ सारिणी में पूरी संख्या दी जाती है जैसे—

सं०	मनुष्य	अवस्था	उष्णैकं
१	मालिक	३५	२८०० से ३१००
२	लड़का	१२	२३०० से ३०००
३	लड़का	४	१२०० से १५००
४	छोटा भाई	१८	२७०० से ३०००
५	नौकर	२५	३१०० से ३५००
६	मालकिन	३०	३२०० से ३५००
७	विधवा बहन	४५	२३०० से २४००
८	लड़की	८	१६०० से २२००
९	लड़की	२	१०५० से १३५०
१०	वृद्धा माता	५५	१८०० से २३००
११	दूध पीता बच्चा	३ मास	.. ..
	कुल उष्णैकं		२१८५०-२५८५०

२१८५० उष्णैक यह कम से कम और २५८५० अधिक से अधिक संख्या है। स्थूलतया यह प्रमाण पाश्चात्यों के लिये निर्धारित है। हमारे यहां के पुरुषों के लिये, इसमें से १० प्रतिशत और स्त्रियों के लिये १३ प्रतिशत न्यून कर देना चाहिये। कमी की औसत सर्वसाधारण ११॥ प्रतिशत रखने से उक्त परिवार के लिये सम्पूर्ण उष्णैकं का हिसाब २५,४२०-२,९७८=२२,४४२ उष्णैकं होता है। बाजार से सामान खरीदने के पश्चात् उसे साफ

करने, पकाने, रांधने, परोसने और थाली में जूठन जाने की वजह से जो भाग व्यर्थ चला जाता है. उसकी कमी का ध्यान रख कर उक्त हिसाब में १० प्र० श० उष्णांक अधिक लिये जाते हैं। अतः उस हिसाब से बाजार से खरीदे हुए पदार्थों के उष्णांक का हिसाब २२४४२+२२४४=२४६८६ समझना चाहिये।

(आ) उष्णांक का अन्न पदार्थों में रूपान्तर—प्रोटीनों के गुणांक, अवस्था और तौल, शरीर का कद आदि देखकर लेने पड़ते हैं। सरसरी तौर पर हिसाब के लिये प्रति पौण्ड के पीछे १०० ग्राम प्रोटीन और वसा के जोड़े जायं और यह ध्यान रखा जाय कि यह दोनों ३५ से ५० प्रतिशत प्राणिज अन्न (दूध घृत) से प्राप्त होते रहें उक्त कुटुम्ब के लिये ८३५ ग्राम प्रोटीन और उतना ही स्नेह लेना चाहिये।

आरम्भ में एक दिन का हिसाब करना। अपनी शक्ति के अनुसार कनिष्ठ, मध्यम जैसा आहार सह्य हो सके चुन लेना। दूध और यदि मिल सके तो इनका प्राणिज प्रोटीन और वसायुक्त पदार्थ पहिले लिखना, तदुपरन्त फल-फूल और शाक-सब्जियों के आँकड़े निश्चित करने चाहियें। इस प्रकार क्रमशः करते हुए अन्त में पाँचवीं श्रेणी में शर्करा और पिष्ट पदार्थ होते हैं, जिनमें यथा-योग्य घट-बढ़ करके समता कायम रखते हुए कार्बोहाइड्रेट की पूर्त्ति की जाय।

(इ) सप्ताह भर का संग्रह

उक्त संख्यायें एक परिवार की एक दिन की सामग्री बतलाती है। प्रत्येक दिन का सामान नित्यप्रति इष्ट प्रमाण में बाजार

से खरीद करना सम्भव नहीं होता। अतः उन्हें ७ से गुणा कर जो संख्या आये, उतना सामान बाजार से सप्ताह भर के लिये खरीद करना हितावह है। इससे एक तो खर्च कम बैठता है दूसरे भूलें भी नहीं हो पातीं। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण आहार की ब्यौंत-खर्च को देखते हुए बढ़ाई जाने के कारण महीने या साल-भर में कितना खर्च पर बैठता है. इसकी कुछ कल्पना हो जाती है और परिस्थिति अनुकूल हुई तो मनुष्य सालभर का थोक सामान इच्छानुसार, अच्छा सस्ता और ताजा भर कर आर्थिक दृष्टि से काफी बचत सहज ही कर सकता है।

(ई) दैनिक अन्न प्रकार

इतना करने पर व भाण्डार में अन्न का कम से कम एक सप्ताह का संग्रह होने के पश्चात् दैनिक आहार का समुचित बंटवारा करके भोजन तैयार करावें।

उक्तविधियों (भोजन को संतुलित करने के लिये) को देखने से मंझट सा प्रतीत होता है; परन्तु अभ्यास हो जाने से बराबर तौलने की आवश्यकता नहीं पड़ती और सुविधा से ये सब कार्य अभ्यास द्वारा बिना तोले अन्दाज से ही सम्पन्न हो जाते हैं। भूल की परीक्षा करने के लिये बीच २ में कभी तोल कर अपने कार्य की सम्पुष्टि कर लेनी चाहिये। परन्तु आहार-पोषण शास्त्र की दृष्टि सर्वदा रखनी चाहिये। हिसाब रखना तथा परिमित पोषण की आदत डालना हर हालत में आवश्यक है। इससे आरोग्य बना रहता है।

(१) खट लवणों (Calcium) तथा अ, स, ग, नामक जीवन सत्वों (Vitamin) से युक्त पदार्थ आवश्यकता से थोड़ी अधिक मात्रा में लेने का प्रयत्न करना चाहिये।

(२) ब तथा द नामक जीवन सत्वों और योद (Iodine), स्फुर, लोह जैसे खनिजों से युक्त पदार्थों का सेवन आवश्यक प्रमाण में करना चाहिये।

(३) वसा-कार्बोद, वानस्पतिक तथा प्राणिज प्रोटीन तथा सीट्ठीदार पदार्थ आवश्यकतानुरूप ग्रहण करने चाहियें, अधिक नहीं।

इस प्रकार मनुष्य को अपनी आर्थिक साम्पत्तिक परिस्थिति के अनुसार आदर्श आहार पसन्द करके उसमें से प्रत्येक पदार्थ के परिमाण को उक्त रीति से निश्चय कर अपने आहार का आयोजन करना चाहिये। मनुष्य का आहार सर्वरस-प्रधान होना चाहिये। सर्वरस भोजन श्रेष्ठ होता है। परन्तु इन रसों में भी अपनी प्रकृति, देश, काल, वय के अनुसार जो सात्म्य हो उसका आयोजन करें। आहार का आयोजन करते समय प्रकृति-करण-संयोग-राशि देश-काल-उपभोगसंस्थ-उपयोक्ता आदि अष्टविध आहार विधि-विशेषायतन का ध्यान रखना परमावश्य है।

सर्वांग-पूर्ण आहार

खाद्य द्रव्यों के चुनाव कर लेने-पश्चात उनके भिन्न २ अवयवों और उनमें स्थित उपादेय भोज्यांशों का विचार परमावश्यक है। सभी उपयोगी भोज्यांश (प्रोटीनादि) खाद्य द्रव्यों

के किसी एक अवयव में नहीं होते। अतः उनके भिन्न २ अवयवों की उपादेयता का विचार कर जहां तक हो सके सर्वांग (Wholemel) आहार द्रव्य का उपयोग करना श्रेयस्कर है। मनुष्य को सर्वरसाभ्यासी होना चाहिये। सर्वरस आहार श्रेष्ठ कहा गया है। ("सर्वरसं प्रवरं"-चरक)। द्रव्यों के अन्दर उनके भिन्न २ अवयवों में भिन्न २ रसों की स्थिति है-"नैक रसं द्रव्यम्"। आजकल देखने में आता है कि लोग भोज्य द्रव्यों के बहुत से उपादेय अशों को अनभिज्ञता एवं अभ्यास वश फेंक देते हैं, यथा चावल खाने वाले चावल के माण्ड तथा उसके कोण (भूसी) को फेंक देते हैं। गेंहूँ खाने वाले गेंहूँ के चोकर को फेंक देते हैं, यह भारी भूल है। चावल के माण्ड तथा कण में अनेक उपयोगी अंश होते हैं जिनके अभाव मे खाद्य पदार्थ का पूर्ण लाभ होना असम्भव है। चावल के अन्दर जीवन सत्व अ और ब दोनों होते हैं और कुछ खनिज लवण भी होते हैं जो कूटने तथा उसके मण्ड को फेंकने से उससे पृथक् हो जाते हैं। इसी प्रकार गेंहूँ के चोकर में भी अनेक उपादेय तत्व होते हैं। इसलिये अन्न द्रव्यों को यथासाध्य सर्वांग पूर्ण लेना चाहिये।

सुपच-आहार

खाद्य-द्रव्य का सुपच होना परम आवश्यक है। भोजन किए हुए अन्न पदार्थों का हमारे शरीर के अन्दर भिन्न २ स्थलों पर पाक होता है। यह पाक भिन्न २ अवयवस्थित ग्रन्थियों से स्रवित पाचक रसों द्वारा होता है। इन पाचक रसों का कार्य

उपयुक्त रूप से तभी संभव है जब खाद्य पदार्थ अनुकूल हो। ऐसे पदार्थों का जो कायाग्नि या जाठराग्नि (पाचक-रस) को मन्द करने वाले हों अर्थात् उनके पचाने की शक्ति के बाहर हों भोजन करने का कोई लाभ नहीं होता है। भोजन शरीर-पोषण के लिये किया जाता है। शरीर का पोषण तभी सम्भव है जब भुक्त-पदार्थ का आहार-रस बने हैं। आहार रस बनने के लिये खाद्य-द्रव्यों का ऐसा होना, जिस पर पाचक रसों की सम्पूर्ण क्रिया उचित रूप से हो सके, आवश्यक है। जब तक आहार-रस नहीं बनता, उसका शोषण नहीं हो सकता। आहार रस, शोषण के बिना रक्त प्रवाह तथा रस प्रवाह में नहीं पहुंच सकता। बिना रस प्रवाह तथा रक्त-प्रवाह में पहुंचे अन्नरस या आहाररस का शरीर के अन्दर जाना न जाना बराबर है। रस प्रवाह या रक्त-प्रवाह द्वारा ही शरीर के भिन्न धातुओं (Cells) का पोषण होता है। भुक्तान्न परिपक्व होकर अपने भिन्न २ अशों से शरीर को दो प्रकार से लाभ पहुँचता, है। (१) अपने प्रोटीन, आदि कुछ अंशों से शरीर के धातुओं क निर्माण द्वारा तथा (२) वसादि अंशों से ऊष्मा या शक्ति-निर्माण द्वारा। मानव शरीर के कार्यों को सुव्यवस्थित तथा अक्षुण्ण रखने के लिये. ऐसे आहार का होना परमावश्यक है जो धातुओं के उचित पोषक तत्व-सम्पन्न हो और जीनके अन्दर शरीर में शक्ति (उष्मा) उत्पन्न करने की क्षमता हो। बहुत से ऐसे द्रव्य संसार में हैं जिनके अन्दर विश्लेषणात्मक दृष्टि से अनेक रासायनिक तत्व भरे पड़े हैं पर वे हमारे लिये उपयोगी नहीं। जैसे-लोहादि अनेक धतुओं की आवश्यकता रक्त निर्माण के लिये

होती है पर हम लोहादि का उपयोग बिना उसे भस्म आदि बनाए, नहीं कर सकते। इसी प्रकार अनेक वानस्पतिक तथा खनिज पदार्थ हैं जिनका उपयोग उसी रूप में नहीं कर सकते।

शुचि-आहार

हमारा आहार शुचि अर्थात् पवित्र होना चाहिये। तात्पर्य्य यह कि आहार स्वच्छ, ताजा, सुपक्क,किसी भी प्रकार की गन्दगी से रहित होना चाहिये। आहार द्रव्य जहां उत्पन्न होते हैं वे वहां की धूल, मिट्टी आदि अनेक पदार्थों से आश्लिष्ट हो जाते हैं। अतः आहार द्रव्य को जल आदि से सुप्रक्षालित कर स्वच्छ कर लेना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो, आहार-द्रव्य पक्क या अपक्क ताजा लेना विशेष लाभ प्रद होता है। पर्युषित (बासी) हो जाने पर उनके बहुत से गुणदांश नष्ट हो जाते हैं। उनमें सड़ान्द उत्पन्न होनी प्रारम्भ हो जाती है; जो शरीर के अन्दर जाकर नाना प्रकार की व्याधियों को उत्पन्न कर सकती है। कोई भी आहार द्रव्य, चाहे वह अन्न हो, फल हो, फूल हो, शाक हो, या प्राणिज-द्रव्य हो (घृत, तैल आदि) सुपक्क अर्थात काल पक्क, सूर्यताप पक्व या अग्नि ताप पक्व जैसा उचित हो होना चाहिये। अन्न या फल फूल भी जब तक पूर्ण रसवीर्य नहीं होते उनके अन्दर सभी गुणदांश प्राप्त नहीं होते। बहुत से पदार्थों को धूप में पकाना पड़ता है और बहुत से पदार्थों को अग्नि पर पकाना पड़ता है। अतः जैसे उचित हो उन्हें सुपक्क कर लेना चाहिये। बिना सुपक्क किए ये सुपच भी नहीं होते। आहार द्रव्य सड़ा, गला, अदग्ध अतिदग्ध, पूति, पर्युषित

क्रिमिजग्ध, अनुपयोगी पदार्थों से संलिष्ट, अपूर्ण रसवीर्य आदि दोषों से रहित होना चाहिये।

सुन्दर-आहार

आहार का सुन्दर होना अर्थात् देखने में मन को प्रसन्न करने वाला (मनोज्ञ) होना भी परमावश्यक है। उचित आहार या स्वाभाविक आहार की प्रथम कसौटी यह है कि उसके देखने से ही लाला स्राव (लार टपकना) होने लगे। ऐसे आहार जिन्हें देखने से मन में घृणा उत्पन्न हो, कदापि भक्षण नहीं करने चाहियें। मानव शरीर में मन बहुत बड़ा अधिकारी है। आत्मा और शरीर को सदा सम्बद्ध रखने वाला मन ही है अतः मन के अनुकूल आहार-विहार-का होना परमावश्यक है। मनोऽनुकूल भोजन न होने से वह कभी नहीं पचता। मनोघ्न भोजन से वान्ति, भ्रान्ति आदि अनेक विकार उत्पन्न होते हैं। भोजन तन्मय होकर करना चाहिये-('तन्मना भुञ्जीत")। भोजन में तन्मयता तभी उत्पन्न हो सकती है जब वह मन को प्रसन्न करने वाला हो। यह साधारण अनुभव की बात है कि जब मनुष्य भोजन करने जाता है और उसके सामने ऐसा भोज्य-पदार्थ आता है जो देखने में सुन्दर हो, सुन्दर ढंग से रखा हुआ हो, भोजन करने का स्थान सुन्दर हो, भोज्य पदार्थ से मन को प्रसन्न करने वाली तथा रुचि को बढ़ाने वाली सुगन्ध आ रही हो; तो मनुष्य तन्मय होकर प्रसन्नता से उस भोजन को करता है। उसको उससे तृप्ति होती है और तब उसकी इन्द्रियाँ प्रफुल्लित हो जाती हैं।

शिव-आहार

आहार या भोजन का शिव होना (कल्याणकारी होना) भी आवश्यक है। क्योंकि आहार ही से मनुष्य को जीवन-शक्ति प्राप्त होती है। इसी से उसके शरीर का पोषण होता है और इसी की बदौलत वह उन महान् शक्तियों को प्राप्त करता है जिनसे मानव-जीवन की महत्ता संसार में प्रस्थापित है। इसके अभाव में कोई जीवधारी अपना अस्तित्व सुदीर्घकाल तक कभी नहीं बनाए रख सकता; और न कोई जीवन में उन्नति ही कर सकता है। मनुष्य के सर्वांगीण विकास, स्वास्थ्य और सम्पन्नता का एकमात्र कारण उसका सर्वांगपूर्ण आहार है। इसलिये आहार के सम्बन्ध में उसके सभी विधि-विशेषायतनों की जानकारी परमावश्यक है। आहार के विधि-विशेष आयतनों की छानबीन से उपभोग किया हुआ आहार सभी वाञ्छित फलों को देने वाला होता है। आहार को शिव या कल्याणकारी बनाने के लिये निम्न आठ विधि-विशेषायतनों पर ध्यान रखना परमावश्यक है।

(१) प्रकृति—प्रकृति स्वभाव को कहते हैं। प्रत्येक आहार-द्रव्य के अन्दर स्वभाव से ही गुर्वादि गुण, उनके अन्दर स्थित भूतांश तथा अर्वाचीन मतानुसार प्रोटीनादि आहार-तत्त्व के कारण होते हैं। अतः मनुष्य को भोजन करते समय इन तत्त्वों तथा गुणों का विचार करना चाहिये। जैसे, उड़द स्वभाव से ही गुरु और मूंग स्वभाव से ही लघु होती है।

(२) करण—द्रव्यों के अन्दर संस्कार आदि से जो गुणान्तर उत्पन्न हो जाता है उसका भी विचार भोजन करने के पहले कर लेना चाहिये। आहार द्रव्यों में जल और अग्नि के संन्निकर्ष से, प्रक्षालन आदि शुचि-विधानों से, मंथन से, देश अर्थात् स्थान के सम्पर्क से, कालवश (ऋतु के कारण से), भावना आदि से, कालप्रकर्ष से, पात्र आदि के दोष से अनेक परिवर्त्तन (गुणों मे) हो जाते हैं अतः इनका विचार करना उचित है। उदाहरणार्थ— जैसे चावल जल-अग्नि के सन्निकर्ष से तथा प्रक्षालन करने से हलका (पचने में) हो जाता है। धान (व्रीहि) गुरु होने पर भी, उसकी खील लघु होती है। इसी प्रकार मंथन क्रिया से दधि का तक्र विशेष उपयोगी बन जाता है इत्यादि।

(३) संयोग—बहुत से आहार द्रव्यों के एक साथ मिलने से उनके गुण में अन्तर हो जाता है। जैसे मधु और घी बराबर परिमाण में मिलने से उसमें विष-क्रिया उत्पन्न हो जाती है। अतः भोजन करते समय इसका विचार होना कि किस द्रव्य का किस के साथ उपयोग करने से क्या प्रभाव हो जाता है, परमावश्यक है।

(४) राशि—यह दो प्रकार की होती है। (१) सर्वग्रह और (२) परिग्रह। सर्वग्रह राशि का अर्थ है सब आहार द्रव्य का मिल कर परिमाण और परिग्रह राशि का अर्थ है पृथक् २ आहार द्रव्य का परिमाण। मनुष्य को आहार करते समय यह विचार करना चाहिये कि वह कितना आहार पचा सकता है। अर्थात् उसके अन्दर कितना आहार द्रव्य पचाने की क्षमता है। इस विचार के

लिये उसे दो बातों का ध्यान रखना होगा। (१) उपयुक्त सभी आहार द्रव्यों की सम्मिलित कितनी राशि (परिमाण) वह खा सकता है जो बिना किसी कष्ट के समय पर पच जाय। (२) और आहार द्रव्य में कौन-सा पदार्थ कितना लेना उसके लिये उपयुक्त होगा। इसे पृथक् २ आहार द्रव्यों के गुर्वादि गुणों की दृष्टि से विचारना चाहिये।

(५) देश—आहार द्रव्य किस स्थान पर उत्पन्न हुआ है, वहा की जलवायु कैसी है, वह जगल, आनुप या साधारण देश है; उस देश का उस आहार द्रव्य पर क्या प्रभाव हुआ है, उसके उपभोग से शरीर पर क्या गुण दोष होगा—आदि का विचार करना चाहिये।

(६) काल—यह नित्यग और आवस्थिक भेद से दो प्रकार का होता है। ऋतु आदि (नित्यग) का प्रभाव द्रव्यों पर देखना चाहिये। आहार द्रव्य ऋत्वनुकूल है या नहीं यह विचार करना चाहिये। अवस्थाविशेष से आहार द्रव्य के विचार को आवस्थिक काल विचार कहते हैं। आहार द्रव्य कच्चा है, अर्ध पक्व है, अभी तैयार है या नहीं, आपूर्ण रसवीर्य है या नहीं इत्यादि बातों का विचार करना चाहिए।

(७) उपयोग सस्था—कौन-सा आहार द्रव्य किस प्रकार लेना चाहिये आदि नियम का ध्यान रखना आवश्यक है। भोजन कब करें, कैसे करें, जीर्णाजीर्ण आदि का विचार, खाते समय तन्मय होकर, अजल्पन, अहसन, न जल्दी से, न देर से, आदि भोजन करने के नियमों का ध्यान रखना चाहिये।

(८) उपभोक्ता-भोजन करने वाले पुरुष को यह दृष्टि में रख कर कि अमुक भोजन उसके लिये सात्म्य है, अतः ग्राह्य है, अमुक असात्म्य या अपथ्य है इससे अग्राह्य है; अमुक आहार द्रव्य उसकी प्रवृत्ति के अनुकूल है, अमुक द्रव्य उसके अनुकूल नहीं है आदि बातों का विचार करने को उपभोक्ता विधिविशेषायतन कहते हैं।

अन्न घटकों की दृष्टि से उपयोगी अन्न के उत्पादन के लिये खेत, खाद, और उत्पादन के तरीकों में आवश्यक सुधार और प्रचार, प्रत्येक राष्ट्र को अपने यहां के भिन्न २ प्रान्तों के अन्न उत्पन्न करने वाली जमीनों का, अन्न के प्रकार तथा उत्पादन क्षमता की दृष्टि से बटवारा कर लेना चाहिये। सब तरह के अन्न सब प्रान्तों में नहीं होते। प्रत्येक प्रान्त में वहां के जलवायु के अनुकूल भिन्न २ खाद्य-अन्न को उत्पन्न करने की क्षमता होती है। इस प्रकार जमीनों का बटवारा कर, जो अन्न जहां अधिक से अधिक उत्पन्न हो सकता हो, उनके लिये वहीं प्रबन्ध करना उचित है। उत्पादन की राशि के साथ २ उनके गुणोत्कर्ष पर भी ध्यान देना चाहिये। बहुत से ऐसे स्थल मिलेंगे जहां अन्न अधिक राशि में उत्पन्न होता है परन्तु उसमें अन्यस्थल की अपेक्षा गुणदोष न्यून होंगे। ऐसी अवस्था में अधिक राशि में उत्पन्न करने वाले खेत में ऐसे खाद आदि

"तत्र खलु इमान्यष्टौ आहारविधि विशेषायतनानि भवन्ति। तद्यथा-प्रकृति-करण-संयोग-राशि-देश-काल-उपयोगसंस्था-उपभोक्त्रष्टकानि भवन्ति ॥" (चरक वि० १)

का प्रबन्ध करना होगा, जिससे उनके गुणदांश में वृद्धि हो, और अधिक गुणदांश वाले खेत में राशि बढ़ाने का प्रयत्न करना पड़ेगा इस कार्य को सम्यक् रूपेण सम्पन्न करने के लिये खेत की समय पर जुताई, उनमें उपयुक्त खाद का समय पर देना, ठीक समय पर बीज डालना, उचित सिंचाई का प्रबन्ध करना, समय पर निकौनी होना इत्यादि बातों पर ध्यान देना चाहिये। इन सब कार्यों को करने के बाद, उपज में तथा उत्पन्न अन्न के गुणों में क्या वृद्धि-ह्रास हुआ, इसका ब्यौरा तैयार करना और उसमें कृषि-वित् मनुष्यों के परामर्श से आवश्यक सुधार करते रहना होगा। देश की जलवायु के अनुकूल खाद्य अन्नों में उपयुक्त पोषक पदार्थ के न मिलने से नाना प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न होती है। जैसे आहार में पलाश (Potasium) की कमी तथा हाइड्रोसियानिक एसिड की उत्पत्ति के कारण नशक्षोभ की बीमारी. विविध जीवन-सत्वों की कमी से नाना प्रकार के बेरीबेरी, पलेग्रा, स्कर्वी आदि रोग, योद (Iodine) की कमी से गलगण्ड आदि, खट (Calcium) की कमी से अस्थि शोथ तथा दन्त-विकृति इत्यादि रोग होते हैं।

उपरोक्त कार्य के लिये विभिन्न संस्थाओं, विद्यार्थी गृहों, विद्यार्थियों तथा अन्य समाज समूह के अनेक वर्ग निर्धारित कर, उनकी असुविधाओं, संशयों और प्रश्नों के समाधान कारक उत्तर खोजने की चेष्टा करनी चाहिये और ऐसे प्रयत्न जो अन्य जगह हुए हों, उनसे अपने प्रयत्नों की तुलना कर अपने देश के अनुकूल निर्णय निकाले जाने चाहियें। साथ ही प्रत्येक स्थान पर वहां पैदा

होने वाले अन्नों का पोषण की दृष्टि से क्या महत्व है, आहार-वैकल्य के कारण होने वाले रोगों के निराकरण का क्या उपाय है तथा ऐसे आहार से उत्पन्न बीमारी की क्या चिकित्सा है इसका विचार भी आवश्यक है। यह कार्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता, बल्कि इस कार्य से होने वाले लाभ को प्रान्तीय सरल भाषाओं में, प्रकाशन का भी प्रबन्ध होना चाहिये जिससे इसका पूर्ण प्रचार हो सके।

उपरोक्त सशोधनों का विचार करते समय हमें अपने विचारों को उदार रखना होगा। सभी प्राचीन बातें ठीक हैं और सभी नई बातें त्याज्य हैं इस विचार को हटाना होगा क्योंकि—

"पुराणमित्येव न साधु सर्व न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढ़ः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः॥"

(कालिदास)

उपलब्ध सभी विचारों का सकलन कर उनसे तथ्य का ग्रहण करना होगा। जो रूढ़ि के दास, नई बातों को हौआ समझने वाले, तथा पुरानी सभी-सभी बातों को जंगली और नई बातों को ईश्वर वाक्य मानने वाले, अज्ञानी, अन्ध-विश्वासी, पुरुष और स्त्रियां हैं, उनके भ्रम को दूर करना होगा। व्यक्ति तथा समाज को ऐसे मनुष्यों के चंगुलों से, जो स्वार्थ साधन के लिये अनेक अवांछित और तथ्यहीन बातों का प्रचार करते हैं, बचाना होगा। ये स्वार्थ साधक लोग अपने व्यावसायिक लाभ के लिये शास्त्रीय निर्णयों के विपरीत बातें बना कर लोगों को अनुचित मार्ग पर ले

जाते हैं। आजकल सिनेमा आदि में अनेक इसी तरह के विज्ञापन निकलते रहते हैं। इन पर रोक होनी चाहिये और इनके स्थान पर शास्त्रीय आहार विधियाँ तथा पोषण करने वाले अन्नों के उत्पादन की विधियों का विज्ञापन होना चाहिये। गाँव गाँव में स्थान २ पर इन विधियों के प्रचारार्थ पोस्टर लगाना चाहिये।

रोग निवारण तथा रोगोन्मूलन के लिये शुद्ध एवं परिमित आहार आवश्यक है—इसकी सर्वसाधारण को जानकारी होनी चाहिये। इसके लिये अनेक नियम उपनियमों की आवश्यकता होगी, शिक्षा लेनी और देनी पड़ेगी तथा कतिपय स्वार्थसाधक लोगों के युक्तिवादों का खण्डन करना पड़ेगा। समाज को यदि सुदृढ़ बनाना है तो हमें चाहिये कि हम प्रारम्भ से ही आहार सम्बन्धी सतर्कता धारण करें। प्रत्येक व्यक्ति में यह विश्वास जमा देना चाहिये कि अयोग्य आहार से न केवल मनुष्य अपितु उसका सारा परिवार, समाज और राष्ट्र तक अधःपतन की ओर अग्रसर होता है। अतः सबको अपने भोजन्न की ओर अत्यन्त सतर्क रहना चाहिये। संसार की गति और उद्यम-व्यवसाय में आज इतना परिवर्त्तन हुआ है कि अपनी निजी आवश्यकता की पूर्त्ति के लिये भी मनुष्य को अन्न पैदा करना या अड़ोसी पड़ोसियों से लेना असम्भव सा हो गया है। आजकल अन्न पदार्थ बहुत दूरसे मँगवाने पड़ते हैं और भोक्ता के हाथ में पड़ने तक, उसके जो अनन्त रूपान्तर होते हैं; उन्हें समझना कठिन हो जाता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि आवश्यक पदार्थ के न मिलने

पर सामाजिक बन्धन के सहारे नियम बना कर इस पर उचित नियंत्रण रखा जाय।

भारतवर्ष की वर्त्तमान-कालीन आर्थिक और राष्ट्रीय परिस्थिति में शरीर-पोषण के लिये सर्वसाधारण को उपयुक्त अन्न का मिलना कठिन सा मालूम हो रहा है। पोषण सम्बन्धी शिक्षा का प्रचार करने से सम्भव है कि आज जो अन्न प्रस्तुत है उसका लाभ कुछ अधिक प्रमाण में उठाया जा सके और हम यह शिक्षा देने में समर्थ हो सकें कि जो द्रव्य भाग हम अन्यान्य कार्यों मे केवल प्रीत्यर्थ (विलासार्थ) खच कर बैठते हैं उसका विनियोग अपने पोषण के लिये करें। किन्तु फिर भी इससे हमारे उद्देश्य के पूर्ण रूप से सफल होने की आशा नहीं है। क्योंकि हमें सर्वांग परिपूर्ण आरोग्य लाभ तभी हो सकता है जब कि देश के राष्ट्राधिकारी, पोषण सम्बन्धी शिक्षा के प्रचार के साथ साथ अन्न का संरक्षण करने, कृषि को समुचित रूप देने, अन्न आयात निर्यात आदि प्रश्नों की जिम्मेवारी अपने सिर पर लें। इससे सर्वसाधारण को यह पता लग सकेगा कि इस व्यवस्था से किस प्रकार आरोग्य लाभ हो सकता है और आरोग्य का क्या अर्थ है।

पोषण सम्बन्धी प्रश्न कितना महत्वपूर्ण है यह अभी तक विशेषरूप से सर्वसाधारण के अनुभव में नहीं आ सका है। इसमें व्यक्ति या समाज का कहां तक हित है इसकी कल्पना करना सर्वसाधारण की बुद्धि के परे है। मानव संस्कृति और राष्ट्रोन्नति की नींव पोषण पर डाली जाय यह कहने के लिये, आज भी बड़े

धैर्य की आवश्यकता है। आरोग्य के चरम सीमा की कल्पना करना सम्भव नहीं। वहीं सुदिन समझना चाहिये जिस दिन व्यक्ति तथा समाज की यह धारणा बन जाय कि उपयुक्त और परिमित आहार से उत्कृष्ट कार्य करने की शक्ति प्राप्त होती है और जीवन आनन्दमय व्यतीत होता है।

"आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः, सत्व शुद्धौ ध्रुवास्थितिः।" (गीता)

"नरो हिताहार विहार सेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥"

(चरक)

इति

परिशिष्ट

आदर्श आहार में भिन्न २ घटकों का योग्य परिमाण

घटक	प्रतिदिन हर मनुष्य के लिये, ग्राम
प्रोटीन (प्रथिन)	८० से १०० ग्राम
प्राणिज प्रोटीन	३५ ग्राम
मेद	५० से कम नहीं; १००-१२० तक
कार्बोहाइड्रेट	४०० से ४७० ग्राम
खनिज द्रव्य	
स्फुराम्ल ($H^3 Po^4$)	३-४ ग्राम
लवणाम्ल (H C L)	६-८ "
गन्धकाम्ल (H_2SO_4)	२-२½ "
पलाशक्षार (K_2O)	२-३ "
समुद्रक्षार (Na_2O)	४-६ "
खट (Ca)	$\frac{2}{5}$-१ "
मज (Mg)	$\frac{3}{10}$-½ "
लौह (Fe)	१५ मिलिग्राम

उष्णौक—(Caloree) मनुष्य को तलभूत चयापचय के लिये १७०० उष्णौकं लगते हैं व स्त्रियों को १४८० उष्णौकं लगते हैं।

कुल-चयापचय—३३ प्रतिशत तलभूत चयापचय से अधिक। व सादा चहल पहल १७००+५७०=२२७०; ८ घण्टे काम करने के लिये ६४० उष्णौकं। कुल में से प्रतिशत १०-१५ उष्णौक प्रोटीनों से मिलना चाहिये; २०-३५ प्र.श. मेद पदार्थों से; व ५५-६६ प्र.श. कार्बोहाइड्रेट से मिलना चाहिये।

१०० उष्णांक देने वाले अन्न पदार्थों का वजन

(१)	औंस	(२)	औंस	फल कन्द	औंस	(५) सूखे फल	औंस
दूध स्त्री का	५ ५	आलू	२ ८	भटा (बैंगन)	१२ ५	(६) हरा शाक	——
दूध गाय का	५ ५	गाजर	१० ०	कुम्हड़ा	६ २५	गोभी फूल	११ १
दूध भैंस का	३ ३	चुकन्दर	११ ०	प्याज	७१-	" पत्र	१४ २
दूध बकरी का	५ ०	(३)	औंस	लहसुन	२५	(७) एक दल अन्न	
दूध की मलाई	१ ८	नींबू, नारंगी	६ ६	मटर हरे	१२५	चावल हाथ कुटे	१ ०
दधि	५ ५	टमाटर	१४ ७	केला	६ १	चावल मशीन "	० ८६
मठा, छाछ	१० ०	(४) फल, भाजी, कन्द	औंस	अंगूर	५ ८	चावल अधकचे उबले	० ८६
					५० २	चावल की भूसी	० ८१
दूध का चूर्ण	० ६६	ककड़ी	३३ ३	अनार			
डब्बे का दूध	६ ६	कुम्हड़ा का	१४ २	जायफल	८ ३	गेहूँ	० ६८
		लौकी	३३ ३			बाजरा	० ६१

१०० उष्णांक देने वाले अन्न पदार्थोंका वजन।

नाम अन्न	औंस	नाम अन्न	औंस	नाम अन्न	औंस
एकदल अन्न		(६) द्विदल अन्न		(१०) शक्कर और पिष्ट	० ८६
नाचनी	० ६१	तूअर	१ ०	शक्कर	० ६२
ज्वार	० ६५	चना	१ ०४	गुड	१ ०२
मक्का	१ ०४	मसूर	१ ०३	मधु	१ ३
कोदो	१ ४	मग	१ ०३	साबूदाना	
राजगीरा	१ ५	चौलाई	१ ०३		
वरई	१ ५	कोथी	१ ०		
(८) स्नेह पदार्थ		मटर	२ ५		
तैल, घी	० ३६	मगफली	० ६४		
नारियल	० १६	सायाबीन	० ८४		

१. दूध वर्ग

एक औंस अन्न पदार्थों में के अलग अलग घटकों का ग्राम में परिमाण।

अन्न पदार्थ	प्रति औंस में ग्राम			प्रत्येक औंस में मिलिग्राम			प्रत्येकऔंस मेउष्णांक
	प्रोटीन	मेद	कार्बोदक	खट	स्फुर	लौह	
दूध (स्त्री का)	०.४२	१.५	०.७५	१०.०	४.५	—	१८
दूध (गाय का)	०.९४	१.०७	१.३६	३६.०	२७.०	०.७०	१८
दूध (भैंस का)	१.३५	२.१८	१.२४	६०.०	३७.५	—	३०
दूध (बकरी का)	१.२१	१.१३	१.२१	३५.०	३७.०	३०.६	२०
दही	०.४०	१.००	०.८०	३६.०	२६.०	०.२२	१८
छांछ	०.८५	०.१४	१.३६	०.०	०.०	०.६	१०
चीज	७.३५	८.८८	०.५०	२२०.०	१५६.०	—	१११
क्रीम	०.७०	५.२४	१.२७	—	—	—	५५

एक औंस अन्न पदार्थों के में के अलग अलग घटकों का ग्राम में परिमाण।

अन्न पदार्थ	प्रति औंस में ग्राम			प्रत्येक औंस में मिलिग्राम			प्रत्येक औंस में उष्णौक
	प्रोटीन	मेद	कार्बोदक	खट	स्फुर	लौह	
दूध(मक्खन निकाला हुआ)	०.९६	०.०८	१.४४	—	—	—	१०
दूध का चूर्ण (अखण्ड)	११.४०	६.०१	१५.००	४११.०	२९८.०	०.४०	१३६
" मक्खन निकाले हुए का	१०.६०	०.०३	१४.४८	३८४.०	२८३.०	०.३६	१०२.१६
दूध औंटा हुआ(बन्द)डब्बा	२.४६	२ ३५	१५.२१	—	—	—	९२

२ आलू वर्ग

आलू	०.७०	०.०४	८.१५	४.२	१०.२	०.२०	३६
शकरकन्दी	०.३६	०.०६	६ ३०	५.१	१५.०	०.२३	३६.३
अरबी	०.८७	०.०३	६.६०	११.४	४२.०	६०.०	३०.६
सुरण जिमीकन्द	०.५१	०.०६	२.३१	—	—	—	२८

३. नींबू वर्ग

पदार्थ	प्रति औंस मे ग्राम			प्रति औंस मे मिलिग्राम			प्रत्येक औंस मे उष्णौकं
	प्रोटीन	मेद	कार्बोद्क	खट	स्फुर	लौह	
नींबू (कागजी)	०·४५	·०७	३·३०	२७·०	६·३	०·०८	१७·७
नींबू (खट्टे)	०·१४	·१४	०·६०	—	—	—	५·०
नारंगी	०·६	०·०७	३·५४	०३·६	६ ३	०·५१	१५·०
सतरे	० २५	०·०३	२·६६	१३·८	६ ६	०·०२	१२·०
पनस (कटहल)	०·१७	०·०१	१·८०	७·६	७ ६	०·०१	१२·५६
टमाटर	०·३०	०·०२	१ ५०	७·४	५ ४	०·०२	६·१

४. शाक, कन्द, फल वर्ग (फल-शाक)

पदार्थ	प्रति औंस में ग्राम			प्रत्येक औंस में मिलिग्राम			प्रत्येक औंस में उष्णांक
	प्रोटीन	मेद	कार्बोदक	खट	स्फुर	लौह	
कच्चे केले	०·४२	०·०७	४·०	१·५	८·१	०·१८	१६·८
करैले	०·८४	०·२६	२·६०	१३·५	४·२५	२·६६	१७·७
बैंगन	७·३६	० ०७८	०·६०	७·२	१६·२	०·३६	६·६
ककड़ी	०·१३	०·०१८	०·८४	३·६	७·५	०·४५	४·०
कुन्दुरू	०·३१	०·०३	१·०३	१०·६	८·६	०·४२	५·७
तुरई	०·१५	०·०३	१·०१	१०·५	१२·०	५ २	५·२
चिचिंडे	०·१३	०·०६	१·३४	१३·५	७ २	०·३६	६·७
भिण्डी	०·०६	२·३१	०·२२	२८·२	२३·४	०·४६	१२·६
कद्दू (लाल)	०·३६	०·०२	१·५६	२·७	६·०	०·२०	८·२

४ शाक, कन्द, फल वर्ग (फल-शाक)

पदार्थ	प्रति औंस मे ग्राम			प्रत्येक औंस मे मिलिग्राम			प्रत्येक औंसमें उष्णांक
	प्रोटीन	मेद	कार्बोदक	खट	स्फुर	लौह	
कुम्हड़ा	०·११	०·१०	०·६१	७·१	४·८	०·१२	४·२
लौकी	०·०४	०·०४	०·८१	४·२	०·८	०·१६	३ ६
फरांसवीन	०·५१	०·०३	१·३६	१४·४	७·५	०·५०	७·१
बाल पापड़ी	१·२८	०·३०	२·८५	१२·८	१५·६	०·४४	१४·३
मटर (हरे)	१·८५	०·१७	४·७५	—	—	—	२८·०
मटर (सूखे)	२·०१	०·०३	५·६०	५·२	२२·१	०·४२	३०·५
ग्वार, मोठ(हरे	१·०३	००·४	३·०५	३६·४	१४·२	१·६४	१६·०
सोंजने की फली	१ ६०	०·५१	४·०५	१२·६०	२१·०	२·१	२८८

आ (कन्द)

पदार्थ	प्रति औंस में ग्राम			प्रत्येक औंस में मिलिग्राम			प्रत्येक औंस में उष्णांक
	प्रोटीन	मेद	कार्बोदक	खट	स्फुट	लौह	
गाजर	०'२७	०'०२	३'१	२४'०	९'०	०'४५	१४'२
मूली	०'२८	०'०३	०'९६	—	—	—	५'०
नोला कोल	०'२६	०'१६	३'३०	—	—	—	१६'०
चुकन्दर	०'४८	०'१५	३'९	५७'०	१७'१	०'३	१८'६
प्याज	०'३७	०'०३	३'०६	५'२०	१३'८	०'१९	१४'०
लहसुन	०'९२	०'०३	७'९	—	—	—	४०'०

फल (वर्ग)

पदार्थ	प्रति औंस मे ग्राम			प्रत्येक औंस मे मिली ग्राम			प्रत्येक औंसमें उष्णांक
	प्रोटीन	मेद	कार्बोदक	खट	स्फुर	लौह	
केले	०'४५	०'०३	२'२६	०'४	१७'०	०'१२	११.
आम	०'१८	०'०२	३'४८	२'१	६'०	०'०७	१५'७
केदी	०'१६	०'०३	२'३६	३'६	५१ ०	१'३२	११'७
सेव	०'०६	०'०६	३'५	—	—	—	१५'०
जामफल	०'४२	०'०६	४'२	३'६	१'२०	०'३	१६'५
पीच	०'२०	०'०३	२'७	—	—	—	१२'०
लीची	०'८४	०'०७	१'६	—	—	—	१२'०
अजीर	०'४०	०'०६	५'१	१६'५	७'८	०'३३	२२'५
अनानास	०'११	०'०६	२'७५	—	—	—	१२'०

फल (वर्ग)

पदार्थ	प्रति औंस में ग्राम			प्रत्येक औंस में मिली ग्राम			प्रत्येक औंस में उष्णांक
	प्रोटीन	मेद	कार्बोदक	खट	स्फुर	लौह	
रामफल	०·३९	०·०४	५·९८	३·९	२·५	०·१७	१२·६२
ताडफल	०·१७	—	१·८५	१·४	५·९	०·१७	७·५८
स्ट्रोबेरी	०·२१	०·०७	२·७६	७·४	७·४	०·४९	१२·५१
जामुन	०·१९	०·०३	५·५६	४·४	१०	०·२८	२३·५०
तरबूज	०·०३	०·०४	१·१	०·३	२·४	०·०४	५·१
खरबूजा	०·११	०·०६	१·९	—	—	—	९·०
पपीता	०·१३	०·०९	२·८	३·९	२·७	०·१२	१२·०
कटहल	०·५४	०·०३	५·१	६·६	८·४	०·१३	२३·७
कटहल(बीज रहित)	०·१८	०·१३	१०·८	१४·०	३६·४	०·०४	५१·६

३. फल वर्ग

पदार्थ	प्रति औंस में ग्राम			प्रति औंस में मिलिग्राम			प्रत्येक औंस में उष्णौकं
	प्रोटीन	मेद	कार्बोदक	खट	स्फुर	लौह	
कपित्थ	२·१७	०·१६	४·२७	३७·४	२८·५	०·१७	२७·३१
अंगूर	०·१७	०·०३	३·६३	७·५	५·७	०·१२	१७
अनार	०·४८	००·१	४·३	२·७	१६·८	०·०८	१६.५
(सूखे फल)							
अंजीर (सूखे)	०·५६	०·१४	१५·६६	—	—	—	६६·०
खजूर	०·६	०·०४	२०·१	२०·१	२२·८	३·१	८४·६
मुनका	०·६२	०·०६	१७·३२	—	—	—	७३·०

६. (छिलकेदार फल)

अन्न पदार्थ	प्रति औंस मे ग्राम			प्रत्येक औंस में मिलिग्राम			
	प्रोटीन	मेद	कार्बोदक	खट	स्फुर	लौह	प्रत्येक औंस में उष्णौक
बादाम	२·२५	१५.६६	४.३०	६७.५	१४७.	१.०२	१८२.०
पिश्ते	५.६	१५.३	४.५	३६.६	२००.०	३.३५	१७७.१
अखरोट	४.६	१६.२	३.३	२७.०	१४०.०	१.४	२०५.०
काजू	६.३	१३.८	६.६	१५.६	१३४.०	१ ४५	१७६.७
शाक-भाजी							
माठ	१·५	०.१५	१.७	१५०.०	३०·०	६·३	१४·२
मेंथी	१.४	०.२५	२ ६	१४१·०	१४·१	५·१	१६.८
लाल अंबाडी	०·५१	०.३	३·०	५४·०	११·४	१·६२	१६·८
अगासिया, हदगा	२.४	०.४२	३·४	३०·८	२१·५	०·८५	२६·४

साग-भाजी

पदार्थ	प्रति औंस में ग्राम			प्रत्येक औंस में मिलिग्राम			प्रत्येकऔंस मेंउष्णौक
	प्रोटीन	मेद	कार्बोदक	खट	स्फुर	लौह	
गोभी	०·३६	०·०३	१·२७	४.५	०·६	०·२१	७.०
फूल गोभी	१.०५	०·१२	१ ५६	१०.२	१८·३	०.३७	११.७
केले का फूल	०.४३	०·०६	१·५	१०.२	१४·४	०.०३	८.१
अरबी के पत्ते	१.६४	०·२७	२·५	१०·४	३२·२	७.८७	१६.१
कोथमीर	०·६६	०·१६	१·६	३६·०	१७·४	२.६	१३.५
पोदीना	१·०८	०·१७	३·०	५·७	२२·४	४.२	१६.२
हरी मिरच	०·५८	०·१७	१·८	६·०	२४·०	०.३६	१२.०
कढ़ी नीम	१·७	०·२८	४·५	२२·८	१४·२	०.८६	२८.०
कडुवा नीम	२.३	०·२८	६·४	१४·२	२२·८	४.८	३६.६
बांस के अङ्कुर	१·१	०·०२	२.२	४·८	२६·४	०.०३	१३.६

शूक धान्य वर्ग

पदार्थ	प्रतिऔंस में ग्राम			प्रत्येक औंस में मिलिग्राम			प्रत्येकऔंसमेंउष्णौकं
	प्रोटीन	मेद	कार्बोदक	खट	स्फुर	लौह	.
चावल मशीन का कुटा	१'७६	०'१३	२६'०६	२'१	३१'०	०'३	११३
चावल बिन कुटा	२'३	०'०८५	२२'३	२'१	५०'०	०'७	६६
चावल अर्धपक्व	१'८४	०'२२	२६'११	२'१	४४'०	०'७	११४
चावल भूसी	३.३	३'६	२१'२	६०'०	६०'०	१७.४	१३२
चिउड़ा	१.७८	०'२६	२३'१४	४'३	५६'७	०.२	०४'५
मुर मुरे	२'०२	०'०३	१६'६८	५'४	४३'२	०'२	८६'१
चावल महीन	२'०४	१'२	२०'२	—	—	—	६६
गेहूँ चोकर समेत	३'६	०'५४	२०'३५	२६'६	६०'२	१'६	१०२

शूक धान्य वर्ग

पदार्थ	प्रति औंस में ग्राम			प्रत्येक औंस में मिलिग्राम			प्रत्येकऔंसमेंउष्णांक
	प्रोटीन	मेद	कार्बोदक	खट	स्कुर	लौह	
गेहूँ (चोकरसहित)	३·१४	०·३७	२१·५४	६·६	२७·०	०·३	१०२
गेहूँ रवा	४·२०	०·६८	१४·२०	—	—	—	८०
डबल रोटी	२·००	०·३३	१४·८	—	—	—	७०
ज्वार	२·६	१·१७	१६·७	८·१	८४·६	१·६	१०१
मक्का (पीला)	२·११	०·४८	२०·८	१·५	३०·०	०·२१	६६
बाजरा	३·६४	१·३२	१६·४	१५·०	१·०५	२·६	१०५
नाचनी, रागी, मडुआ	५·७८	०·४६	२१·६५	१००·२	८५·४	१·६	१०६
राजगीरी	४.५१	०·६	२३·०	—	—	—	११६

पदार्थ	प्रति औंस में ग्राम			प्रत्येक औंस में मिलिग्राम			प्रत्येक औंस में उष्णांक
	प्रोटीन	मेद	कार्बोदक	खट	स्फूर	लौह	
कोदो	१.८	०.६	२१.०	—	—	—	६६
कंगुनी	३.००	१.२	२०.४	—	—	—	१०२
सावां	२.२४	०.३५	१७७	१०.८	६४.८	१.३	८३.२
ओट	३.३४	२.४३	१६.८	—	—	—	११५
यव	२.६७	०.६२	२०.६	—	—	—	१००

शमी धान्य वर्ग

दाल तूअर	६.६	.०५१	१७.१	३६.०	७६.२	२.४	६६
" चना	५.७	१.३	१५.३	५४.०	७०.०	२.८	६६
" मसूर	६.५	०.६६	१६.२	३६	७५.०	.०५८	१००
" चौलाई	७.२	.०१८	१६.७	२१.६	१४५.५	११.४	६४

पदार्थ (पिष्ट)	प्रति औंस में ग्राम			प्रति औंस में मिलिग्राम			प्रत्येक औंस में उष्णांक
	प्रोटीन	मेद	कार्बोदक	खट	स्फुर	लौह	
अरारोट	०·०५	०·०२	२४·६	२·७	५·१	०·३	१००
साबूदाना	२·१८	०·०४	२२·०	—	—	—	७६
सिंघाड़ा	३·६१	०·१६	३६·२०	१·६	११·८	०·६	६०.

(मसाले का वर्ग)

राई	६·६	११·३	६·६	१४६·७	२१·०	५.२	१६२·०
हल्दी	१·८	१·५	२·७	४२·०	८५·०	५·५	१०४·५
मिर्च (सूखी)	४·८	१·८	६·०	४८·०	१११·०	०.६	७३·०

पदार्थ	प्रति औंस मे ग्राम			प्रत्येक औंस में मिलिग्राम			प्रत्येक औंस में उष्णांक
	प्रोटीन	मेद	कार्बोदक	खट	स्फुर	लौह	
इमली	०.९	०·०४	२०·१	५१·०	३३·०	३·२	८४·९
हींग	१·११	०·३१	१९·१२	१९·६	१२·८	६·२	८४·६
धनियां	४·२	०·३	१०·८	१८९·०	१०·९	५·४	६३·६
जीरा	५·०८	०·१६	१४·२८	२८६·४	१३६·८	८·८२	८१·९४
अजवायन	४·३३	५·०८	१०·८८	३९९·७	८६·०	४·९४	१०६·४६
काली मिर्च	३·३	२·०	१५·९	१३८·०	६०·०	५ १	९१·५
लौंग	१·५	२·७	१४·१	२२१·०	२८·०	१·४७	८७·६
इलायची	३·०	०·६१	१२·६	६·०	४२·०	१·५	६९·०
जावित्री	१·८५	७·९५	१३·४१	५०·८	२८·५	३·४२	१२५·५३

पदार्थ	प्रति औंस मे ग्राम			प्रत्येक औंस मे मिली ग्राम			प्रत्येक औंसमें उष्णांक
	प्रोटीन	मेद	कार्बोदक	खट	स्फुर	लौह	
आर्द्रक	०'६	० २७	३.६	४'८	१८'६	०'७५	२०'०
पान	०.६	०.२४	१'०८	६८'०	१३'०	१'७४	१३.२
चाय, काफी	०	०	०	—	—	—	०
अचार	०.३१	०.११	१'१३	—	—	—	७

अन्न पदार्थों में जीवन सत्व का साधारण परिणाम ।

संकेत–
+ = जीवन सत्व है
++ = अधिक है
+++ अत्यधिक है
० = जाच की पर सत्व नहीं ।
— = अभी जाच नहीं की गई

पदार्थ (दुग्ध वर्ग)	जीवन सत्व (Vitamin) अ (a)	ड (d)	ई (e)	ब१ (b 1)	ब (b 2)	ग (g)	स (c)
दूध (स्त्री का)	+	०—+	—	+	+	०	०—+
दूध (गाय का)	+	०—+	+	+	++	—	+
दूध (भैंस का)	+++	+	—	—	—	+	+
दूध (भेड़ का)	+	—	—	—	—	+	+
दही	++	—	—	—	—	+	+
मठा	+	—	—	—	—	+	०—+
पनीर	+	—	—	—	—	०	०

पदार्थ	अ (a)	ड (d)	ई (e)	ब१ (b 1)	ब२ (b 2)	ग (g)	स (c)
मक्खन	+++	+	—	—	—	—	—
दूध (डीब्बा बन्द)	+	—	—	+	—	—	—
शाक वर्ग—(कन्द, मूल, फल और पत्र)							
आलू	+	-	-	++	+	—	+++
शकर कन्दी	+	-	-	—	—	+	+
करैला	०—+	-	-	+	—	—	—
बैंगन	-	-	-	+	+	—	+
ककड़ी	०-+	-	-	—	—	—	++
तोरी	०—+	-	-	—	+	—	-
चिचिंडा	०—+	-	-	—	—	—	+
कद्दू	०—+	-	-	+		—	-
फरासबीन	०—+	-	-	—	—	—	+

शाक वर्ग—(कन्द, मूल, फल और पत्र)

पदार्थ	अ (A)	द (D)	ई (E)	ब१ (B)	ब२ (B)	ग (G)	स (C)
सोंजने की फली	—	—	—	—	—	—	++
गाजर	+	—	—	++	+	—	+
चुकुन्दर	०-+	—	—	—	—	+	++
प्याज	०-+	—	—	+	+	—	++
लहसुन	०-+	—	—	—	—	++	+
केले	+	०-+	++	+	—	+	++
आम	++	—	—	—	—	—	+++
आम (कच्चा)	+	—	—	—	—	—	०
जामफल	—	—	—	—	—	+	+
अखीर	+	—	—	—	—	—	—
पपीता	+	+	—	—	—	+	++

शाक वर्ग—(कन्द, मूल, फल और पत्र)

पदार्थ	अ (a)	द (d)	ई (e)	ब1 (b 1)	ब (b 2)	ग (g)	स (c)
खरबूजा	—	—	—	—	—	—	+
अगूर	+	—	—	—	—	+	+++
अनार	—	—	-	—	—	+	+
मोसम्बी	+	—	-	+	+	+	++
खजूर	—	—	-	—	—	+	o
नींबू	o	—	-	—	—	—	++
संतरे	—	—	-	++	+	+	+++
खट मीठा नींबू	+	—	-	—	—	+	+++
खटमीठेनींबूकी छाल	o-+	—	-	—	—	—	÷+
टमाटर	o-+	—	-	+	—	—	++
माठ	+	—	-	+	+	—	+++

शाक वर्ग—(कन्द, मूल, फल और पत्र)

पदार्थ	जीवन सत्व (Vitamin)						
	अ (a)	द (d)	ई (e)	ब१ (b 1)	ब२ (b 2)	ग (g)	स (c)
मेथी	+	—	—	—	—	—	—
गोभी गांठ	+	—	+	++	++	—	+++
फूल गोभी	—	—	—	—	—	+	+++
कोथमीर	+	—	—	—	++	—	+++
चावल (कुटे)	o	—	+	o	o	—	o
चावल (बिनकुटे)	+	—	—	++	—	—	o
चावल (उबले हुए)	—	—	—	++	—	—	—

शाक वर्ग—(कन्द, मूल, फल और पत्र)

पदार्थ	अ (A)	द (D)	इ (E)	ब१ (B1)	ब२	ग (G)	क (C)
चावल के अंकुर	—	—	—	+++	—	--	—
चावल का चोकर	—	—	—	+++	—	—	—
गेहूँ चोकरसहित	+	—	+	+	+	—	o
गेहूँ (बिना चोकर)	o	—	—	o	o	--	o
ज्वार	++	—	--	--	—	--	o
बाजरा	+	—	—	++	—	—+	—
मक्का	+-++	—	+++	+++	+	—	o
दाल तुअर	o--+	--	-	++	o—+	-	—

पदार्थ	अ (A)	द (D)	इ (E)	ब१ (B१)	ब२	ग (G)	क (C)
दाल चना	+++	—	—	+	o	—	o
दाल मसूर	+	—	—	++	—	++	+
दाल चौलाई	o—+	—	—	—	o—+	—	—
दाल अंकुरसहित	o—+	—	—	++	—o+	—	++
दाल पावटा	—	—	—	—	o	o	—
दाल उड़द	o—+	—	—	+	++	—	—
दाल हुलगा	++	—	—	—	o	—	—
दाल मूंग	++	—	—	++	++	—	—
सोयाबीन	+	—	+	+	+	+	o
मूंगफली के दाने	+	—	—	—	—	++	o
नारियल	+	—	—	+	—	+	—

पदार्थ	अ	द	ई	ब१	ब२	ग	क (C)
बादाम	+	—	+	—	—	०	०
चर्बी	+	—					
कॉडलीवर तैल	+++	+++	—	—	—	—	—
लार्ड	० +	०	०	—	—	—	०
नारियल का तैल	अल्प	अल्प	०	—	—	०	०
घी	+++	+	—	—	—	—	—
मीठा तैल	०	०	०	—	—	—	—
लाल ताड़ फल-का तैल	+++	०	—	—	—	—	—
गन्ने का रस	—	—	—	+	—	—	+++
इमली	—	—	—	—	—	—	+
काली मिर्च	++	—	—	—	—	+	÷++

प्रति दिन के आहार में खनिज मूल तत्त्वों का मिलिग्राम में निश्चित परिमाण।

हर*	७१००	खट--७००
सामुद्र--	४६००	मग्न--३४०
पलास--	३४००	लौह--१४
स्फुर--	१४००	ताम्र--३

*हर-Chlorine, सामुद्र-Sodium, पलास-Potashium, स्फुर-Phosphorus, खट-Calcium, मग्न-Mangenese,।

द्रव—द्रव्य (आहारोपयोगी जलवर्ग)

अन्तरिक्ष जल और भूमिगत जल

यह दोनों जल एकान्ततः पथ्य है। प्रकृति में जो भी जल उपलब्ध होता हैं उसमें वर्षा के जल के समान विशुद्ध और पथ्यकर दूसरा जल नहीं है। इसी से चरक में "आन्तरिक्ष मुदकानाम्" अर्थात् जलों में आन्तरिक्ष जल सर्वोत्तम है ऐसा कहा है। इसमें चूना और मैग्नेशियम के लवण नहीं होते, जिससे यह अत्यन्त मृदु और हल्का होता है। इसमें रोगोत्पादक जीवाणु नहीं होते। इन दो कारणों से अन्तरिक्ष जल स्वास्थ्य के लिये सदैव हितकर होता है। अन्त-

नदी-गंगादि, नद-सिन्धु शोणादि, सरोवर-मानसादि, तड़ाग-तालाब, वापी-बावड़ी, चौण्ड्य-अवद्ध, कूप।

रिक्ष जल के गुण धर्म सारी दुनियां मे एक से ही हुआ करते हैं, परन्तु भूमिगत जल के गुण धर्म प्रत्येक स्थान मे भिन्न २ हुआ करते हैं। "अन्तरिक्ष जल अव्यक्तरस, अमृत के समान जीवन के लिये हितकर है, तृप्तिकर, शरीर धारण करने वाला, सुख उत्पन्न करने वाला, श्रम, क्लम, प्यास, मद, मूर्च्छा, तन्द्रा, निद्रा तथा दाह को शान्त करने वाला और निरपवाद पथ्य है।" (सु० सू० ४५)। यही जल पृथ्वी पर गिर कर नदी, नद, सरोवर, तडाग, वापी, कूप, चौंड्य, प्रस्रवण (झरना), उद्भि (कुण्ड) विकिर (बालू खोदने से निकलने वाला जल), केदार तथा पल्वल*इत्यादि स्थानों मे स्थित हुआ जल स्थान गुण के अनुसार किसी न किसी रस को प्राप्त होता है। वस्तुतः अन्तरिक्ष जल और भूमिगत जल दोनों एक ही हैं। आधुनिक भौतिक विज्ञान में दोनों ही प्रकार का पानी रासायनिक यौगिक है जिसमें दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग ऑक्सीजन होता है। परन्तु भूमिगत जल में भूमि की जाति के अनुसार भिन्न २ पदार्थ मिलने से जल के गुणों में भी बहुत भिन्नता हो जाती हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि जल मे अन्य पदार्थों को विलीन करने की विशेष क्षमता होती है, जिससे जिस भूमि में जल स्थित होता है उस भूमि के कई पदार्थ जल में द्रवित हो जाते हैं और जल के गुण धर्मों में हेर फेर हो जाता है। इसके अतिरिक्त भूमिगत जल में फर्क होने का दूसरा कारण यह है कि अन्तरिक्ष जल के वायुमण्डल में से होकर भूमि पर गिरते समय उसमें हवा के कई वायुरूप पदार्थ, दूसरे ठोस अवलम्बनस्थ सूक्ष्मांश, धूलि के कण इत्यादि पदार्थ मिल जाते हैं।

सामान्यतः एक लीटर (६० तोले) वर्षा जल में २५ सी० सी० (२ तोला) वायुरूप पदार्थ होते हैं जिसमे ६४ प्रतिशत नाईट्रोजन, ४ प्रतिशत ऑक्सिजन और २० प्रतिशत कार्बनडायक्साइड होता है। समुद्र समीपवर्ती नगरों के वर्षाजल मे नमक भी मिलता है। बड़े २ व्यापारी नगरों में, जहां कल कारखाने बहुत होते हैं, उनसे निकले हुए जहरीले पदार्थ वर्षाजल मे मिले हुए रहते हैं। वर्षा ऋतु के प्रारम्भ मे वायु मण्डल इन अशुद्धियों से भरा रहता है इसलिये उस समय का वर्षाजल सेवन करने योग्य नहीं होता। अतः यदि वर्षाजल साक्षात् पीने के लिये इकट्ठा करना हो तो इन बातों पर ध्यान देकर इकट्ठा करना चाहिये।

भूमिगत जलों के रस भेद

"पृथिव्यादि महाभूतों के पञ्चीकरण से उत्पन्न हुए जल के रस के भेद भूमिगत महाभूतों के उत्कर्ष या अपकर्ष के अनुसार हुआ करते हैं। उनमें से पृथ्वी के गुण अधिक होने वाली भूमि मे अम्ल या खारा जल होता है। जल के गुण अधिक होने वाली भूमि में मधुर जल होता है। अग्नि के गुण अधिक होने वाली भूमि मे कटु और तिक्त रस का जल होता है। वायु गुण विशिष्ट भूमि में कषाय रस का जल होता है और आकाश गुण भूयिष्ट भूमि में अव्यक्त रस का जल होता है। यह जल अव्यक्त रस वाला होने के कारण इतर जल की अपेक्षा प्रधान है अतः अन्तरिक्ष जल के अभाव में यह जल काम देता है।" (सु सू. ४५)

अन्तरिक्ष जल के भेद

अन्तरिक्ष जल चार प्रकार का होता है—(१) धारं, (२) कारं (ओले से प्राप्त जल), (३) तौषार (ओस से प्राप्त जल), (४) हैमं (बर्फ से प्राप्त जल)। इनमें पहला धारा में बरसा हुआ जल धार जल कहलाता है। यह हलका होने के कारण प्रधान तथा श्रेष्ठ है। यह पुनः दो प्रकार का होता है गांग और सामुद्र। इनमें से गांग जल प्रायः आश्विन के महीने में बरसता है। इसकी परीक्षा है। जो न सड़ा हुआ है या जिस का वर्ण न बदला हो ऐसे पकाये हुए शालि चावलों के पिण्ड बना कर चांदी के पात्र में रख कर मेघ बरसते समय बाहर रख दें। वह यदि एक मुहूर्त्त (४८ मिनट) बरसते पानी में वैसा ही (अविवर्ण और अकुथित) रहे तो जानना चाहिए गांग जल बरसता है और यदि वर्ण बदल जाय और पिण्ड मे कोथ पैदा हो जाय तो समझना चाहिए कि सामुद्र जल बरसता है; यह ग्रहण करने योग्य नहीं है। गांग जल अन्तरिक्ष जल में प्रधान है इसे आश्विन मास में सग्रह करना चाहिए। इसका उपयोग सर्वकाल में कर सकते हैं। इसे सोने चांदी या मिट्टी के पात्र में सचय करना चाहिए। इसके अभाव में आकाश गुण भूमिष्ट पृथिवी से निकला हुआ जल ग्रहण करें। यह भूमि-जल ७ प्रकार का होता है। जैसे (१) कौप (कुए का जल) (२) नादेय (नदी का जल) (३) सारस (सरोवर का जल) (४) तड़ाग (तालाब का जल) (५) प्रस्रवण (झरने का जल) (६) उद्भि (जमीन से स्वयं निकलने वाला जल) (७) चौण्ट्य (कच्चे

कुंए का जल)। अन्तरिक्ष जल को संग्रह करने के लिये आज कल एक विशेष प्रकार का यंत्र निकला हुआ है जिसे रौबेंट्स या जीव्स रेनवाटर सेपरेटर कहते हैं। उपरोक्त जलों में से वर्षा ऋतु में अन्तरिक्ष अथवा औद्भिग जल सेवन करना चाहिए। शरत् ऋतु में सब प्रकार का जल और हेमन्त ऋतु मे सरोवर या तालाब का जल पीना चाहिए। वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतु मे कुए तथा झरने का जल पीना चाहिए। प्रावृड ऋतु मे चौण्टय (कच्चे कुए) का जल और वर्षा से जो दूषित नही हुआ हो ऐसा सब प्रकार का जल पीना चाहिए।

जल की अशुद्धियाँ

कीट, मूत्रादि जल की अशुद्धियाँ है। यह तीन प्रकार की होती हैं। (१) वनस्पतिज (२) खनिज या पार्थिव और (३) प्राणि प्रथम प्रकार की अशुद्धियाँ वनस्पतियों के सूखे पत्ते तथा सूखे पेड़ आदि के पानी में सड़ जाने से होती है। दूसरे प्रकार की अशुद्धियाँ जिन २ स्थानो से जल आता है या जिन स्थानों में कुआँ तालाब आदि खोदा जाता है उन स्थानों की अन्तर्गत प्रकृति पर निर्भर करती है। इस अशुद्धता से जल के बाह्य रूप में विशेष फर्क नही पड़ता। इस मे लोहा, यशद, खटिक मग्नेशियम, अभ्रक इत्यादि

---

१ तत्र वर्षास्वान्तरिक्षमौद्भिदं वा सेवेत, महागुणत्वात्; शरदि सर्वम् प्रसन्नत्वात्; हेमन्ते सारसं ताडागं वा; वसन्ते कौपं प्रास्रवणं वा; ग्रीष्मेऽप्येवं; प्रावृषि चौण्ट्यमनभिवृष्टं सर्वं चेति ॥ (सु. सू. ४५-७)

खनिज पदार्थ होते हैं। तीसरे प्रकार की अशुद्धि स्वास्थ्य-हानि की दृष्टि से सब से महत्व पूर्ण है। इस से अनेक सक्रामक रोग उत्पन्न होते हैं। अशुद्धता प्राणियों के मल मूत्र का जल के साथ सम्पर्क होने से उत्पन्न होती है। व्याधित मनुष्यों के मल मूत्र मे अनेक प्रकार के रोगों के जीवाणु उपास्थित रहते हैं जो जल के साथ मिल कर दूसरे स्वस्थ मनुष्यों के शरीर में प्रवेश कर नाना प्रकार ? रोग उत्पन्न करते है। नवीन खोज के अनुसार वानस्प तज अशुद्धि से दस्त, मरोड़, खनिज अशुद्धि से अग्निमान्द्य, मलावरोध, दस्त तथा गलगण्ड; प्राणिज अशुद्धि से विशूचिका, आंत्रिक ज्वर, तथा भिन्न २ प्रकार के क्रीमि रोग गण्डूपद (Roud worm) दभकुसुमा (Thread worm,) पृथु, ब्रध्न, अकुंशमुखक्रमि (Hook worm,)-स्नायुक रोग उत्पन्न होते हैं।

इनके अतिरिक्त जो जल काई हठतृण (जल कुम्भी) पद्म इत्यादि के पत्तों से व्याप्त होता है, जिससे चन्द्र और और सूर्य की किरणों का तथा वायु का स्पर्श नहीं होता, जो गन्ध वर्ण और रस युक्त होता है वह जल दूषित होता है। ये दोष ६ प्रकार के होते हैं — (१) स्पर्श दोष (२) रूप दोष, (३) रस दोष, (४) गन्ध दोष, (५ वीर्य दोष, (६) विपाक दोष। इनमें खरता, पिच्छिलता, उष्णता और दन्त ग्राहिता स्पर्श दोष के अन्तर्गत आते हैं। पंक, सिकता और शैवाल के संसर्ग से उनके वर्ण का दर्शन या अन्य दोष के कारण नील पीतादि अनेक वर्णों का दर्शन रूप-दोष के अन्तर्गत आता है। किसी भी प्रकार के रस की प्रकटता

रस का दोष कहलाता है। बुरी गन्ध आना गन्ध-दोष है। यदि उपयोग करने से तृष्णा, भारीपन, शूल, कफप्रसेक इत्यादि विकार उत्पन्न हों तो वीर्य दोष कहलाता हैं। जिसके सेवन से अन्न देर से पचे और पेट में विष्टम्भ (मलावरोध, वायु का गुड़गुड़ाना) हो तो विपाक दोष समझना चाहिए। ये दोष अन्तरिक्ष जल में नहीं होते।

दूषित जल के सेवन से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, अतः उन रोगों से बचने के लिये जल को शुद्ध करना परमावश्यक है। जल में जो अवलंबनस्थ सूक्ष्मांश, विद्रुत् पदार्थ तथा रोगों के जीवाणु उपस्थित होते है उन्हें जल से अलग करने की विधि को प्रसादन या विशुद्धि (Purification) कहते हैं। यह प्रसादन की विधियाँ संक्षेपतः तीन प्रकार से प्रदर्शित हैं इन में पहली उत्क्वथन की विधि सर्वोत्तम है और सर्व सुलभ है। यह वैज्ञानिक दृष्टि से भी उत्तम समझी जाती है, क्योंकि जो विधि जलस्थित रोगोत्पादक जीवाणुओं का नाश करती है वही उत्तम

४ कीट मूत्र पुरीषाण्ड शव कोथ प्रदूषितम्। तृणपर्णोत्करयुत कलुषं विषसयुतम् ॥

१. 'योऽवगाहेत वर्षासु पिबेद्वापि नवमं जलम्। स बाह्याभ्यन्तरान् रोगान् प्राप्नुयात्क्षिप्रमेव तु ॥

तत्र यत् पङ्कशैवालहठतृण पद्मपत्र प्रभृतिभिरवच्छन्नं शशि सूर्य किरणानिलैनाभियुष्ठ गन्धवर्ण रसोपसृष्ठ च तद्व्यापन्नमिति विधात। (सु सू. -४३)

कहलाती है। पानी उबलने के पश्चात् उस में स्थित हुए विकारी जीवाणु तथा कृमि नष्ट हो जाते हैं; उसमे विलीन हुए एमोनिया आदि सर्व वायुरूप पदार्थ निकल जाते है और खटिकादि अन्य मैल तल मे निक्षिप्त हो जाते है। संक्षेप मे उबालने से स्वास्थ्य-हानिकारक जल के प्राय: सब विकार दूर हो जाते है। केवल जल यदि बहुत मटीला हो तो वह निर्मल नहीं होता। सूर्य प्रकाश मे जल तपाने की दूसरी विधि बहुत व्यवहारिक नहीं; तथापि यह निसन्देह सिद्ध हुआ है कि सूर्य किरणों मे रोगों के जीवाणु को नाश करने की शक्ति है। प्रकृति में नैसर्गिक जल को शुद्ध करने में सूर्य किरणें बहुत सहायक होती है। तप्त पिंडों से जल निर्वापित करने की तीसरी विधि स्वस्थ मनुष्यों के पीने के लिये प्रचलित नहीं। इसका उपयोग रुग्णावस्था में तृषाहरण के लिये होता है। अधुनिक काल मे जल प्रसादन की विधियों मे बहुत कुछ सुधार हुआ है। वे विधियां निम्न प्रकार है:— (१) भौतिक विधि-- (अ) तिर्यक् पातन (Distillation) (अ) उत्क्वथन, (३) नील-लोहित किरण(Utra Voilet rays (४) रसायनिक विधि-(अ) प्रक्षेपन (Precepitation) (आ) जन्तु नाशन (३) यान्त्रिक निथारन (Mechanical filteration) (इनकी विधियो स्वास्थ्य ग्रन्थों मे देखें)

मैले जल को निर्मल करने के लिये ७ वस्तुएं।

(१) कतक (निर्मली) (२) गोमेदक (एक प्रकार की मणि) (३) विस ग्रन्थि (कमल की जड़) (४) शैवाल मूल

(५) वस्त्र (६) मुक्ता और (७) स्फटिक मणि। वस्त्र के अतिरिक्त इन पदार्थों को जल में डालने से जल का मैल तल में निक्षिप्त हो जाता है।

जलपात्र रखने के लिये ५ वस्तुएं।

(१) फलक (२) त्र्यष्टक (अष्टकोणी) तिपाई (३) मुञ्ज वलय (मुञ्ज नामक घास का बना हुआ कंकण) (४) उदक मञ्जिका Platform) (५ शिक्य (मुञ्ज के बने हुए सिकहरा)

जल को शीतल करने की ७ पद्धतियां

(१) प्रवातस्थापन (चौड़े मुख वाले पात्र में जल रख कर हवा में रखना) (२) उदक प्रक्षेपन (३) यष्टिका भ्रामणं (लकड़ी से पानी हिलाना) (४) व्यजनं (पंखा देना) (५) वस्त्रोद्धारन (भीगे कपड़े में उदक पात्र को लपेट कर रखना) (६) बालुका प्रक्षेपन (जल से भरे पात्र को आकंठ बालु में गाड़ कर रखना) (७) शिक्या वलंबनम् (शिकहर पर रख कर हिलाते रहना)।

स्थान भेद से जल के गुण दोष

नदी का जल—वातल, रूक्ष, दीपक, हल्का और लेखन (शरीर को पतला करने वाला) है। यदि वह गाढ़ा और मीठा हो तो अभिष्यन्दी, भारी और कफकारक होता है।

सरोबर जल—तृषणाहर, बलकारक, कषाय, मधुर, और हल्का होता है।

ताडागजल—वातल, मीठा, कषाय और विपाक में कटु होता है।

वापी जल--वातहर, कफहर, खारा, कटु और पित्त कर होता है।

कूए का जल--खारा, पित्तकर, कफहर, दीपक, और हल्का होता है।

चुण्टी का जल—अग्निकारक, रूक्ष मीठा, और कफ करने वाला नहीं होता।

झरने का जल—कफहर, दीपक, हृदय के लिये हितकर और हलका है।

औद्भिद जल--मीठा, पित्तशामक और अविदाही होता है।

विकिर जल--कटु, खारा, कफहर, हलका और दीपन होता है।

केदार का जल--मीठा, विपाक में भारी, और दोष कारक होता है।

पल्वल जल—भी उक्त गुण दोष युक्त होता है।

सामुद्र जल--दुर्गन्धयुक्त, खारा, और सर्व दोष कारक होता है।

आनुपदेश जल--अनेक दोष युक्त, अभिष्यन्दी, और उपयोग की दृष्टि से निन्द्य होता है। जाँगलदेश का जल-पूर्वोक्त स्पर्श आदि दोषों से रहित और प्रशस्त होता है। साधारण देश का जल-विपाक में अविदाहि तृषाशामक, प्रशस्त आह्लादक है, दीपन, मीठा, ठंडा और हलका होता है।

उष्ण जल --कफरोग, मेदोरोग, वात रोग, और आमदोष का नाश करने वाला होता है। यह दीपक, मूत्र शोधक, श्वास कास, और ज्वर में हितकर एवं सदा पथ्य है। जो औटाया हुआ जल वेग रहित, फेन रहित निर्मल, हलका और चतुर्थांशावशिष्ट हो वही गुण होता है।

नारिकेलोदक--"स्निग्ध, मीठा, ठंडा हृदय को आह्लाद देने वाला दीपन, मूत्र मार्ग विशोधक, वृष्य, पित्त और पिपासा को शान्त करने वाला, होता है।" नारियल का जल बड़ा गुणकारी है। यह जल अत्यन्त विशुद्ध होता है जो तृषितों की प्यास और थके मांदे की थकावट दूर करने के लिये अपना सानी नहीं रखता। यह पचने में अत्यन्त हलका है और आंत में पूरा रूप से शोषित हो जाता है। अम्लपित्त के लिये यह सर्वोत्तम पथ्य है। ज्वर और विशूचिका में रोगी की तृषा शान्त करने के लिये इसका उपयोग होता है। यह मूत्र शोधक है अतः पथरी, मूत्रकृच्छ, प्रमेह, सुजाक, इत्यादि मूत्र रोग में अत्यन्त लाभ करता है। इसमें--९२'३२ जल, ०'६९ प्रोटीन, ६'२० कार्बोदक और ०'२६ क्षार होता है। इसमें स्नेह जातीय कोई पदार्थ नहीं होता।

इति जल वर्ग

(दुग्ध वर्ग)

यद्यपि आयुर्वेद में ओषधार्थ अनेक स्थावर तथा जंगम दूध का व्यवहार होता है पर पीने के लिये निम्न आठ प्रकार के प्राणियोंका दूध प्रयुक्त होता है अतः उन्हीं का गुण दोष यहां बताया जायगा।

१. गो दुग्ध २. बकरी का दूध ३. भैंस का दूध, ४. ऊंटनी का दूध, ५. भेड़ का दूध, ६. घोड़ी का दूध, ७. हथनी का दूध और ८. स्त्री का दूध।

(१) गोदुग्ध –अल्पाभिष्यन्दि, स्निग्ध, भारी, रसायन, रक्तपित्तनाशक, शीतल, मीठा, विपाक में मधुर, जीवनीय, तथा वात और पित्त का परम नाश करने वाला है।

(२) बकरी का दूध--गुण में गौ के दूध के समान, विशेषकर राजयक्ष्मा के रोगी के लिये हितकर, दीपन हल्का, संग्राही होता हैं। तथा श्वास, कास, और रक्तपित्त को दूर करता है। बकरियों का दूध शरीर छोटा होने के कारण; कटु-तिक्त पत्तों के सेवन करने से; थोड़ा जल पीने से और व्यायाम करने से सब व्याधियों का हरण करने वाला होता हैं।

(३) भैंस का दूध--अधिक अभिष्यन्दि, मधुर, जठराग्नि को मन्द करने वाला निद्रोत्पादक, शीतल और गोदुग्ध की अपेक्षा अधिक स्निग्ध तथा गुरु होता है

(४) ऊंटनी का दूध--रूक्ष, गरम, किञ्चित् खारा, मधुर और हलका होता है। शोथ गुल्म, उदर रोग, अर्श, कृमि, और विष का नाशक है,

(५) भेड़ का दूध--मधुर, स्निग्ध, भारी, पित्त और कफकारक तथा केवल वात के रोगी पर पथ्यकर होता है।

(६) एक शफ वाले चतुष्पादों (घोड़ी, गधी) का दूध-उष्ण, बलकारक, हाथ पैरों में वायु का नाशक, रस में मधुर तथा अम्ल, रूक्ष अनुरस में लवण और हलका होता है।

(७) हथिनी का दूध--मधुर वृष्य, अनुरस में कषाय, भारी, स्निग्ध, शरीर को स्थिर करने वाला शीतल नेत्र के लिये हित और बलवर्धक होता है,

(८) स्त्री का दूध- मधुर, अनुरस में कषाय, शीतल नस्य तथा आश्च्योतन के लिये पथ्यकर, जीवनीय, हलका और दीपन होता है।

—:०:—

दूध	कुल ठोस	प्रोटीन	वसा	शर्करा	क्षार	गुरुता
१. गौ	१२.६–१४.५	३.४–४	३.०–३.८५	४.५–५.२	०.४५–०.६५	१.०२६–१.०:५
२. बकरी	१५.५–१६.५	५.८–७.५	५.२–८.६	४.५–५.०	०.६ १.३	१.०३५–१.०४२
३. भेड़	१२.६–१३.२	३.६–६.२	३.२–३.६५	४.०–५.३	०.६–१.८२	१.०३–१.०३६
४. भैंस	१८–२२.५	५.३–६.१५	६.५–८.७५	५.०–५.४	०.७–०.६५	१.०३८–१.०४
५. घोड़ी	६.५–११.२	२.१–२.५५	०.६–१.८	६.० ८.५	०.३–०.४	१.०३१–१.०३८
६. गधी	६.१६–६.५३	१.६–२.०	१.३–१.५	६.२७–६.८	०.४–०.४८	१.०२३–१.०३५
७. स्त्री	११.५–१३.५	१.०–१.६१	२.०–३.६५	५.८–६.५	० १५–०.२५	१.०३–१.३४
८. हथिनी	२०–२१.६	१०.३–१३.४	१२.५ १५.६	७.१–१०.३	१.२–२.७	१.२–१.७५

नोट—रात्रि में चन्द्र के (शीतल) गुण होने से तथा (चलने फिरने का) व्यायाम न होने से (पशुओं का) प्रभात का दूध भारी, विष्टम्भी और शीतल होता है। दिन में सूर्य की किरणों से अभितप्त होने से (चलने फिरने का) व्यायाम होने से तथा शुद्ध वायु के सेवन से सन्ध्या के समय का दूध वायु को अनुलोमन करने वाला श्रमनाशक और नेत्रों के लिये हितकर होता है। स्त्री के दूध के अतिरिक्त अन्य सब प्रकार के दूधों को गरम करके पीना श्रेयस्कर है।

धारोष्ण दूध

"अमृत के समान गुणदायक होता है। और इसके विपरीत बहुत देर का निकाला ठंडा विष के समान अवगुणदायक होता है। और वही अधिक औटाया हुआ ठंडा दूध भारी और शरीर पुष्टिकर होता है।" (सु० सू० ४५) वास्तव में धारोष्ण अमृत के समान गुणकारक है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु यह दूध अपने स्वच्छ हाथों से स्वच्छ बर्तन में स्वस्थ गौ या अन्य प्राणी के स्वच्छ स्तनों से निकाल कर गाढ़े स्वच्छ कपड़े से छान कर गरम गरम पीना चाहिये। इससे दूध में किसी प्रकार का विषम परिवर्तन नहीं होता, उसमें धूलि तथा जीवाणु प्रविष्ट नहीं होते, शरीर की उष्णता के बराबर गरम होने से सुपच होता है और उसके अन्दर के सभी शरीर पोषकांश उपस्थित रहते हैं तथा उसके अन्दर के जीवनतत्व नैसर्गिक रूप में प्राप्त होते

हैं। वस्तुतः यह दूध तो प्राणियों के बच्चों को, जो सीधे स्तन से पीते हैं, उन्हें ही प्राप्त होता है। माता का या धात्री का दूध बालक सीधा स्तन से ही पान करता है इसलिये उस दूध में धारोष्ण दूध के पूर्ण गुण लाभ होते हैं। इस कारण से स्त्री दूध का सेवन कच्चा ही करने का विधान है। यदि उत्तम धारोष्ण दूध न मिले तो दूध को अच्छी तरह उबाल कर पीना हितकर है। कच्चा ठंडा दूध पीना ठीक नहीं। कारण यह है कि कच्चे ठंडे दूध में बाह्य वायुमण्डल के अनेक विकार प्रविष्ट हो जाते हैं जिनके कारण कई प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। अतः जं वाणुजन्य रोगों से बचने के लिये दूध उबाल कर पीना श्रेयष्कर है परन्तु उबालने से उसके अन्दर निम्न परिवर्तन होते हैं जिससे उसकी पौष्टिकता कम हो जाती है और वह पचने में गरिष्ट हो जाता है उबालने से दूध का जलांश कम हो जाता हैं, दुग्धशर्करा का कुछ अंश जल कर दूध का रंग भूरा हो जाता है, उसके प्रोटीन विघटित हो जाते हैं। फास्फोरस जो पहले सेन्द्रिय अवस्था में होता है वह निरिन्द्रिय हो जाता है, चूना तथा मैग्नीशियम के लवण प्रक्षेपित हो जाते हैं और सब से विशेष महत्व का कर्म दूध के फर्मेन्ट तथा जीवन सत्व का कुछ अंश नष्ट हो जाता है।

इति दुग्धवर्ग

दधि वर्ग

"दही समान्यतया मधुर, अमल और अति अम्ल (तीन प्रकार का) होता है। वह अनुरस में कषाय, स्निग्ध और

उष्ण वीर्य है। पीनस, विषम ज्वर, अतिसार, आरोचक, मूत्र-कृच्छ्र और शरीर की कृशता, इनका नाश करता है, शुक्र को बढ़ाता है, प्राणशक्ति की वृद्धि करता है और मांगलिक है।

(सु० सू० ४५)

ल्याक्टिक अम्ल (Lactic Acid) तैयार करने वाले जीवाणुओं की क्रिया (Lacticfermnting microbes) दूध पर होने से दही बनता है। ये जीवाणु दूध में संधान (Fermentation) उत्पन्न करके दुग्ध शर्करा का अधिकांश भाग लैक्टिक अम्ल में परिवर्तित करते हैं। इस अम्ल के कारण दूध के मेद और प्रोटीन जम जाते है और दही बनता है। पौष्टिकता की दृष्टि से दूध के सभी उपादान दही में भी मिलते हैं, केवल दुग्ध शर्करा के स्थान में दुग्धाम्ल जनक जीवाणु होते हैं। इनके कारण दूध की अपेक्षा दही में निम्न गुण विशेष रूप से दिखाई पड़ते हैं दही के क्षीराम्ल-जीवाणु अन्य रोगोत्पादक जीवाणुओं को नष्ट करते हैं। 'किटा साटा' नामक जापानी शास्त्रज्ञ की राय है कि दही का ३ प्र० श० ल्याक्टिक अम्ल पांच घण्टे में विशूचिका (हैजा) के जीवाणुओं का नाश कर देता है। दही आंत्र में मल के सड़ान को अधिक रोकती है। 'मेचनीकाफ' नामक वैज्ञानिक ने प्रयोग द्वारा यह प्रमाणित किया है कि यथाविधि दही के सेवन से आंत्र में होने वाले जीवाणु (Proteolytic Bacilli) अधिकांश नष्ट हो जाते हैं तथा उनका विष भी नष्ट हो जाता है। अतः दही का

विधिवत् उपयोग अनेक रोगों से तथा जराव्याधि से रक्षा करता है इस लिये दही का दैनिक आहार में नित्य प्रयोग आवश्यक है।

मधुर दही का गुण

महा अभिष्यन्दि, कफ और मेद को बढ़ाने वाला है।

अम्ल दही का गुण

कफ और पित्त को बढ़ाता है।

अत्यम्ल दही

रक्त को दूषित करता है।

ठीक ठीक नहीं जमा हुई दही शरीर से मलमूत्र का उत्सर्ग ठीक जारी करने वाला और त्रिदोष का प्रकोप करने वाला होता है।

गौ का दही

स्निग्ध, विपाक में मधुर, दीपन, बलवर्धक, वातनाशक, पवित्र और रुचिकर होता है।

बकरी का दही

कफ पित्तनाशक, हलकी, वात और क्षयनाशक अर्श, श्वास और कास में हितकर तथा जठराग्नि का दीप्त करने वाली है।

भैंस का दही

विपाक में मधुर, वृष्य, वात और पित्त का शामक, कफ कारक और विशेष रूप से स्निग्ध होता है। उक्त सभी दहियों में गुण की दृष्टि से गौ का दही सर्वश्रेष्ठ है। दही के ऊपर का भाग

(सर) भारी वृष्य, वात और अग्नि नाशक, कफशुक्र वर्धक होता है। दही का स्नेहरहित भाग रूक्ष, ग्राही विष्टम्भी, वातकारक, दीपन, हलका, कषाय रस युक्त और रुचिकर होता है।

नोट—शरद् ग्रीष्म तथा वसन्त, इन तीन ऋतुओं में दही अधिक खाना अनुचित है। परन्तु हेमन्त, शिशिर और वर्षा ऋतु में दही खाना प्रशस्त है।

मस्तु–दही का पानी

तृषा और थकावट को दूर करता है, हल्का है, स्रोतोविशोधक है, (किञ्चित) अम्ल, कषाय और मधुर होता है, वृष्य नहीं हैं। कफ और वात नाशक है। आह्लादक, तृप्तिकारक, मल को शीघ्र भेदन करने वाला, बल बढ़ाने वाला और रुचि वर्धक होता है।

तक्र रस

रस में मधुर तथा अम्ल, अनुरस में कषाय, उष्णवीर्य, हल्का रूक्ष और जठराग्नि को दीप्त करने वाला है। कृत्रिम विष, शोथ, अतिसार, ग्रहणी, पाण्डुरोग, अर्श, प्लीहोदर, गुल्म, अरुचि, विषमज्वर, तृष्णा, वमन, जी मिचलाना, शूल मेदोवृद्धि, कफ और वात इनको हरण करता है। विपाक में मधुर है, हृदय के लिये हितकर है। मूत्र कृच्छ्र तथा अधिक स्निग्ध सेवन करने से होने वाली विपत्तियों को दूर करता है। (सु० सू० ४५)

घोल

मंथनादि द्वारा जिसमें से मक्खन निकाला है, जिस में आधा पानी मिलाया है, जो न बहुत गाढ़ा है न पतला और रस में

जो मधुर अम्ल और कषाय है वही 'तक्र' होता है। जिस में से मक्खन नहीं निकाला है, जिस में पानी नहीं डाला है और जो दही केवल मथनी से मथ दिया है उसे घोल कहते हैं।

नोट--मधुर तक्र कफ प्रकोपक और पित्तशामक है। खट्टा तक्र-वातनाशक और पित्त को बढ़ाने वाला होता है। वात प्रकोप में खट्टा तक्र सेंधा नमक डाल कर पीना चाहिये, पित्त प्रकोप में मधुर तक्र चीनी के साथ पीना चाहिये; और कफ प्रकोप में त्रिकटु (सोंठ-पिप्पल-मिर्च) तथा यवक्षार के साथ पीना चाहिये।

तक्रकूर्चिका

ग्राही, वातल, रूक्ष और पचने में कठिन होती है। दधि और तक्र कूर्चिका से उत्पन्न हुआ मण्ड तक्र से भी हलका होता है। (दही या तक्र के साथ गरम करके फटे हुए दूध का ठोस भाग कूर्चिका या तक्र कूर्चिका कहलाता है और तरल भाग मण्ड कहलाता है।)

किलाट[१]

भारी, वायु नाशक, पुंस्त्व और निद्रा देने वाला होता है।

पीयूष और मोरट[२]

मधुर, पुष्टिकर और वृष्य होते हैं।

१ ("नष्ट दुग्धस्य पक्वस्य पिण्डः प्रोक्तः किलाटकः।'

२ "क्षीरं सद्यः प्रसूतायाः पीयूषमिति सञ्ज्ञितम्।
सप्तरात्रात्परं क्षीरम प्रसन्नन्तु मोरटः।")

नवनीत

ताजा मक्खन हलका, शरीर को कोमल करने वाला, मधुर, कषाय और किञ्चित् अम्ल, शीतल, मेधा जनक, अग्नि-दीपक, हृद्य, ग्राही, वात और पित नाशक, वृष्य, अविदाही राजयक्ष्मा, कास, व्रण, तृषता, अर्श और अर्दित को दूर करने वाला होता है।" खाद्य द्रव्यों में मक्खन, सबसे अधिक हलका पदार्थ है और उसका सम्पूर्ण पचन और शोषण आंतों में हो जाता है। इस में ७८ से ८४ प्र० श० स्नेह, १२ से १४ प्र० श० पानी, १-३ प्र० श० प्रोटीन, और ० से ७ प्रतिशत खनिज होते हैं। इसके अतिरिक्त दूध के जीवन सत्व भी इस में उपस्थित रहते हैं।

नोट- कच्चे दूध से निकला हुआ मक्खन श्रेष्ट है। यह अति स्निग्ध, अति मधुर, अति शीतल, सुकुमार करने वाला, नेत्र के लिये हि कारी भारी रक्त पित्त तथा नेत्र रोगों का नाशक और प्रसादन करने वाला है।

मन्तानिका (मलाई)

वातनाशक तृप्ति करने वाली, बल बढ़ाने वाली, वीर्यवर्द्धिनी, स्निग्ध, रुचिकर, मधुर, विपाक में मधुर रक्त पित्त को प्रसादन करने वाली और गुरु होती है।

नोट – ये तक्रादि (दूध के) प्रकार, गौ के ही श्रेष्ठ होते हैं।

(घृत वर्ग)

सामान्यतया घृत मधुर, सौम्य, मृदु, ईषत्अभिष्यन्द शीत वीर्य, शरीर में चिकनाई उत्पन्न करने वाला, उदावर्त-उन्माद-अपस्मार-शूल-ज्वर-आनाह-वात और पित्त, इनका शमन करने वाला, जाठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाला, स्मृति-मति-मेधा-कान्ति-स्वर-लावण्य-सौकुमार्य, ओज तेज और बल को करनेवाला आयु बढ़ाने वाला, वृष्य, पवित्र, वय को स्थिर करने वाला, गुरु, नेत्र के लिये हितकारी, कफ वर्धक, पाप और अलक्ष्मी का नाश करने वाला, विष नाशक तथा राक्षस भय हरने वाला होता है।" (सु० सू० ४५) मक्खन को गरम करके घी बनाते हैं। इसमें मेद (Fat १०० ०/०) शत प्रतिशत होता है।

गोघृत

विपाक में मधुर, शीतल वात पित्त और विष नाशक, नेत्र के लिये हितकर वस्तुओं में सर्व श्रेष्ठ, बल कारक, और सर्व प्रकार के घी से गुणों में श्रेष्ठ है।

भैंस का घृत

मधुर, रक्तपित्तनाशक, पचने में भारी, कफ कारक, वात और पित्त शामक तथा शीतल है।

ऊंटनी का घृत

विपाक में कटु, शोथ कृमि और विष नाशक, अग्निदीपक, आमवातहर, तथा कुष्ठ, गुल्म, और उदर रोग का नाशक होता है।

भेड़ का घृत

पचने में हलका, पित्त का प्रकोपक नहीं, कफ, वायु, योनि-रोग, शोथ और कम्प में हितकर है।

एक खुर वाले प्राणियों के घृत

पचने में हलके, उष्ण वीर्य, कषाय, कफनाशक, अग्निदीपक और मूत्र की राशि कम करने वाले हैं।

स्त्री दुग्ध का घृत

नेत्र के लिये सर्वोत्तम अमृत के समान, देह और जठराग्नि की वृद्धि करने वाला, पचने में हलका, और विष को हरने वाला है।

हथिनी का घृत

कषाय, मल और मूत्र का अवरोधक तिक्त अग्निदीपक, हलका है और कफ, कुष्ठ, विष और कृमि का नाश करने वाला है।

नोट- आभ्यन्तर व्यवहार के लिये नया घी एक वर्ष तक प्रयोग में लाना चाहिये। पुराना घृत यद्यपि अधिक गुण वाला होता है पर उसका व्यवहार-वस्ति, नस्य, नेत्र पूरण तथा अभ्यग में ही विहित है, खाने के लिये नहीं।

तैल वर्ग

तिल प्रभृति बीजों से निःसृत स्नेह को तैल कहते हैं। यह सब प्रकार का तैल वायु नाशक होता है। तिल तैल इनमें विशेष रूप से वायु नाशक है।

तिल तैल

यह ईषत् कषाय युक्त मधुर रस, उष्ण वीर्य शीतल पर्श, पुष्टिकर किन्तु अवस्था वश वृषता कारक है। यह सूक्ष्म स्रोतों में प्रवेश करने वाला (सूक्ष्म) व्यवायी, रक्त पित्त जनक, मल मूत्ररोधक वातघ्न द्रव्यों में उत्कृष्ट परन्तु श्लेष्मवर्धक नहीं है। यह बलकर और मर्दन करने से केशों तथा चक्षु के लिये हितकर मेदा और अग्नि को बढ़ाने वाला है। द्रव्य विशेष के संयोग से या संस्कार से सर्वरोग नाशक एव शिरः शूल, कर्ण शूल, योनिशूल तथा आमवातादि में लाभप्रद है। वस्ति क्रिया के लिये, पानार्थ, अन्न पदार्थ के संस्कार के लिये, कर्ण पूरण में, नेत्र पूरण में, परिषेक अवगाह तथा अभ्यंग के लिये प्रशस्त है।

सर्षप तैल

कटु रस, कटु विपाक, लघु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य रक्त पित्त प्रकोपक एव कफ, शुक्र, वायु, कण्डू कोठ, अर्श, शिरोरोग, कर्णरोग कृमि और कुष्ठरोग नाशक है। यह मेद का नाश कर कृशता को उत्पन्न करता है और अग्नि वर्धक है।

राजिका सर्षपतैल

पीत और रक्त के भेद से सर्षप दो प्रकार का होता है। इस में लाल (राई) सर्षप का तैल अधिक तीक्ष्ण होने से इसके सेवन से मूत्रकृच्छ्र हो जाता है।

एरण्ड तैल

तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, पिच्छिल, गुरु, पुष्टिकर, चमड़े के लिये हितकर, वयःस्थापक, मेधा, कान्ति,तथा बलको बढ़ाने वाला, कषाययुक्त-मधुर-तिक्त-कटु-रस, मधुर विपाक, सूक्ष्म, आमगंधि योनिदोष तथा शुक्र दोषनाशक एवं गुल्म. विषम ज्वर, हृद्रोग,पृष्ठ शूल, गुह्यादि स्थान की वेदना, वातोदर, आनाह, अष्ठीला, कटिग्रह, वायु, रक्त, मलबद्धता, व्रण, शोथ, अपचि,विद्रधिको शान्त करने वाला है। यह विशेष कर आमवात रोग के लिये महौषध है।

नारिकेल तैल

वाजीकरण, गुरु, क्षीण धातुओं को पुष्ट करने वाला, वायु या पित्त, एवं नष्ट शुक्र, प्रमेह, श्वास, कास, यक्ष्मा, मेदो लाभ तथा वात रोग में उपकारक है।

अलसी का तैल

मधुराम्लरस, कटुपाक, उष्ण वीर्य, वायु के लिये हितकर तथा रक्त पित्त प्रकोपक है। यह आग्नेय, स्निग्ध, गुरु, बलकारक, चक्षु के लिये अहितकर, मलवर्धक, ग्राही, और त्वग्दोषनाशक है, (भाव)।

बादाम रोगन

मृदुविरेचक, वाजीकरण, शिरोरोग नाशक, वातपित्त, के लिये उपकारी, दाह निवारक, लावण्य वर्धक, प्रमेह नाशक, और शीतवीर्य है।

कुसुम्भ तैल

अम्लरस, उष्ण वीर्य, कटु विपाक, गुरु, अत्यन्त विदाही, दृष्टि के लिये अहितकर, और रक्त पित्त एवं कफ का प्रकोपक है।

तुवरक तैल

(चावल मोगरा तैल)--तीक्ष्ण, उष्ण वीर्य, लघुपाक, ग्राही, कफ तथा रक्त दोष को नष्ट करने वाला, अग्निवर्धक विषनाशक, एवं कुष्ठ. कण्डू, कोढ़ कृमि, मेदोदोष वा व्रण शोथ को दूर करने वाला है।

मधु वर्ग

मधु शर्करा युक्त खाद्य पदार्थ है जिसे मधुमक्खियाँ फूलों की मिठास को ग्रहण करके अपने छत्तों में एकत्र करती हैं। मधु में द्राक्षाशर्करा या ग्लुकोज अधिक राशि में (औसत ७५%) होता है। इसके अतिरिक्त इस में इक्षु शर्करा (Dextrose) पुष्प शर्करा (Levulose) प्रोटीड्स, गोंद, मोम रजन द्रव्य, फार्मिकएसिड, सुगंधि द्रव्य, पिष्ट पदार्थों (Starch) का पचन करने वाला पाचक [illegible] (Diastatic ferment) जल तथा पुष्प पराग भी होते हैं। संक्षेप में मनुष्य शरीर में मिलने वाले तथा मनुष्य शरीर के लिये हितकर प्रायः सभी उपादान न्यूनाधिक मात्रा में मधु में मिलते हैं। शर्करा कई प्रकार की होती है। मधु में जो शर्करा होती है वह अत्यन्त सुपच, अविदाही उत्तेजक, पोषक, बल्य और हृद्य होती है। इस लिये अग्निमान्द्य, ज्वर, वमन तृषा, अम्लावस्था (Acidosis), विषमय अवस्था (Toxaemia)

मधुमेह श्रान्तावस्था, हृदय दौर्बल्य, हृदयावसाद (Collaps) इत्यादि अवस्थाओं में मधु बहुत ही लाभदायक प्रतीत हुआ है हृदय के लिये मधु शर्करा सम्मति प्रधान औषधि सिद्ध हुई है और रुग्णावस्था में हृदय के दौर्बल्य को दूर करने के लिये इसका उपयोग अर्वाचीन चिकित्सक भी करने लगे हैं। मधु में जो अम्ल होते हैं उनके कारण वह कास श्वासादि श्वास संस्थान के रोगों में अपूर्व लाभ पहुंचाता है। संखिया, अंजन, (Antimony) विरुत्थ, क्लोरोफार्म, कार्बन टेट्राक्लोराइड, आदि विषैले पदार्थों का विष नाश करने की शक्ति मधुशर्करा में है। पाश्चात्य वैद्यक में भी मधुशर्करा के उपयोग दिन प्रतिदिन बढ़ रहे हैं। इनको देख कर आयुर्वेद में वर्णित मधु के गुणों में लोगों की आस्था अत्यधिक हो गई है। आशा है कुछ दिनों मे ही जो उच्च स्थान मधु को आयुर्वेद में प्राप्त है वही स्थान पाश्चात्य चिकित्सा मे भी इसे मिल जायगा। असली मधु मे सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा देखने से पुष्प पराग अवश्य दिखाई पड़ते हैं।

मधु का आयुर्वेदोक्त गुण

रस में मधुर, अनुरस मे कषाय रूक्ष, शीतल, अग्नि दीपन, शरीर की कांति और बल बढ़ाने वाला, हल्का सौकुमार्यकर, लेखन, हृदय के लिये हितकर, वाजीकरण, अस्थिसंधानक, व्रणरोपण, ग्राही, नेत्रों को प्रसन्न करने वाला, शरीर के सूक्ष्म मार्गों में प्रवेश करने वाला, पित्त, कफ मेद, प्रमेह, हिक्का श्वास, कास, अतिसार, वमन, तृष्णा, कृमि और विष इनको शांत करने वाला, आहार देने वाला, और त्रिदोष प्रशमन है। यह हल्का होने से कफ को शांत करता है।" (सु० सू० ४५)

मधु आठ प्रकार का होता है।

(१) पौत्तिक, (२) भ्रामर (३) क्षौद्र, (४) माक्षिक (५) छात्र, (६) आर्घ्य, (७) औद्दालक, (८) दाल।

१. पौत्तिक

यह विषाक्त मक्खियों द्वारा संगृहीत होता है, अतः यह उष्णवीर्य, रूक्ष, वायु, रक्त वा पित्त को बढ़ाने वाला, वामक, विदाही वा मदकारक होता है।

२. भ्रामर

यह पिच्छिल एवं अति मधुर रस युक्त होने से गुरु होता है।

३. क्षौद्र

शीतवीर्य, लघुपाक, और शरीर को कृश करने वाला है।

४. माक्षिक मधु

क्षौद्र की अपेक्षा लघु, रूक्ष एवं श्वासआदिरोग में विशेष उपकारक है

५. छात्र मधु

मधुर पाक, गुरु, शीतल, पिच्छिल, एवं रक्त पित्त, श्वित्र, मेह व कृमि नाशक है।

६. आर्घ्यमधु

तिक्त कषाय रस, कटुपाक, चक्षु के लिये विशेष हितकारी, बल-कारक, कफपित्त नाशक, किन्तु वायुवर्धक है।

७.उद्दालक

कषायाम्लरस, रुचिकर, स्वरपरिष्कारक, पित्तवर्धक, कटुविपाक, कुष्ठ और विषनाशक हैं।

८.दाल मधु

यह पत्र विशेष का मधु होता है। यह रूक्ष, वमन तथा मेह नाशक है।

नोट—पुष्पों के रसों से इसकी उत्पत्ति होने से इस में प्रचुर परिमाण में जीवनीय तत्व भी (Vitamin) होते हैं। इस में एक और गुणकी विशेषता होती है कि यह आमाशय में ही परिशोषित हो जाता है। यही कारण है कि आयुर्वेद के बहुसंख्यक औषधियों का अनुपान मधु होता है। यह स्थौल्य रोग का नाश करता है और मधुर होने पर भी मधुमेह में अहितकर नहीं। पौत्तिक मधु का वर्ण घी के समान होता है। भ्रामर मधु सफेद स्फटिक के समान होता है। क्षौद्र मधु का रंग कपिल होता है। माक्षिक मधु का वर्ण तैल सदृश होता है। छात्र मधु कपिल पीत वर्ण के बर्रों द्वारा छत्तों से संगृहीत होता है। यह हिमालय के बनों में अधिक होता है। आर्घ्यमधु यह महुआ के निर्यास से भ्रमरों द्वारा निर्मित होता है। औद्दालिक—वल्मीक मध्यस्थ स्वल्प काय कीटों द्वारा कपिल वर्ण का मधु तैयार होता है। दालमधु पुष्पों से श्रवित मधु जो पत्तों पर ठहर जाता है उसे दालमधु कहते हैं।

नये तथा पुराने मधु के गुण भेद

नूतन मधु—पुष्टिकर, मलभेदक, किन्तु अधिक श्लेष्महर नहीं होता। पुरातन मधु—मलरोधक, कृशता कारक, अर्थात् मेद को घटाने वाला होता है। पुरातन मधु त्रिदोष नाशक है। मधु नाना द्रव्यात्मक होने से योगवाही होता है। मधु चीनी और गुड़ एक वर्ष से अधिक के होने पर पुरातन हो जाते है (भाव)

(इति मधु वर्ग.)

इक्षु वर्ग

सब प्रकार के ईख (गन्ने) का रस विपाक में मधुर, गुरु शीतल, स्निग्ध, बलकर, वृष्य, मूत्रल रक्तपित्तप्रशमक, कृमि और कफकारक होते हैं (सुश्रुत) ये कई प्रकार के होते हैं। जैसे-पौण्ड्रक, भीरुक, वंशक, श्वेतपोरक, कान्तार तापसेक्षु, काष्ठेक्षु, सूचिपत्रकी, नेपाल, दीर्घ पत्रक, नीलपरक और कोपकारां ये गन्ने की बारह प्रधान जातियां प्राचीन ग्रन्थों मे वर्णित हैं। इनमे श्वेत पोरक, और काष्टेक्षु, शत पोरक और काण्डेक्षुऐसा नाम भी मिलता है इनके अतिरिक्त आज कल खाद तथा विज्ञान बल से और भी गन्ने की अनेक जातियां बनाई गई है जिन मे शर्करा की मात्रा अधिक होती है।

पौण्ड्रक तथा भीरूक

दोनों शीतल, मधुर, स्निग्ध, कफकर, सर, अविदाही, गुरु और वृष्य होते हैं इन्हें देहात में पुण्डार और भूइलि कहते हैं।

वंशक इक्षु

उपरोक्त दोनों के तुल्य परन्तु किञ्चित् खारा होता है। इसे बिहार प्रान्त मे बाँसगेडा कहते हैं।

श्वेत पोरक या शतपोरक इक्षु

वंशक के समान गुण वाला, किञ्चित् उष्ण, और वातनाशक होता है।

कान्तार और तापसेक्षु

दोनों वंशक के समान गुण वाले होते हैं।

काष्ठेक्षु या काण्डेक्षु

भी इन्हीं के समान गुण युक्त पर वात प्रकोपक होता है।

सूची पत्र, नीलपोर, नेपाल, और दीर्घ पत्रक

ये भी वातवर्धक, कफ पित्त के नाशक, कसैले और विदाही होते हैं।

कोषकार इक्षु

गुरु, शीत, रक्त पित्त, और क्षय का नाश करने वाला है।

नोट—गन्ना मूल की तरफ अति मधुर, बीच मे मधुर, और अग्र भाग तथा गाठो मे कुछ खारा (लवण रस युक्त) होता है दातों से खाकर निकाला हुआ गन्ने का रस अविदाही कफ कारक, वातपित्तनाशक, मुख को प्रसन्न करने वाला, तथा वृष्य

होता है। परन्तु यन्त्र से निकाला हुआ रस भारी, विदाही, विष्टम्भी (पेट में गुड़गुड़ाहट पैदा करने वाला) होता है। अग्नि पर पकाया हुआ रस भारी, मृदुविरेचन, स्निग्ध, तीक्ष्ण, वात तथा कफनाशक होता है।

फाणित

(राब या काकवी) भारी मधुर, अभिष्यन्दी, पुष्टिकर होता है, पर वृष्य नहीं और त्रिदोष प्रकोपक है। (पकाइक्षु रस गाढ़ा हो जाने पर फाणित कहलाता है। (भावमिश्र के मत से यह मूत्रल तथा शुक्र वर्धक होता है तथा वात पित्त और थकावट को दूर करता है।)

मत्स्यण्डी

पक्व इक्षु रस जब अधिक गाढ़ा हो जाता है तो उसे मत्स्यण्डी कहते हैं। बंगाल में इसे 'सार गुड़' कहते हैं। मछली के अंडे के समान छोटे २ दाने के सदृश टुकड़े इसके हो जाने से इसका नाम मत्स्यण्डी पड़ा। यह मल का भेदन करने वाला, बलकारी, लघु, पित्त और वायु नाशक, मधुर, बृंहण, वृष्य, और रक्त दोष को दूर करता है।

गुड़

साधारणतः इक्षु रसको पकाने पर जब वह गाढ़ा ढेले के समान हो जाता है तो उसे गुड़ कहते हैं। यह गुरु, स्निग्ध, वृष्य, बलकर, वायुनाशक, मूत्र शोधक, पित्त का अविरोधी, एवं मेद, कफ वा कृमि उत्पादक है।

खण्ड या खांड

(भ्राल चीनी) मधुर, वृष्य, नेत्र के लिये हितकारी. पुष्टिकर, शीतवीर्य स्निध, बलकर वमननिवारक, वा वातपित्त नाशक है।

शर्करा या सिता

खाँड को और परिष्कृत करने से वह जब श्वेत वर्ण का हो जाता है तो उसे शकरा, सिता, या चीनी कहते है। यह सुमधुर रुचिकर शीतवीर्य, शुक्रजनक, एव वायु पित्त, रक्त, दाह, मूर्च्छा, कृमि और ज्वर मे उपकारी है।

मितोपला या मिशरी

उक्त चीनी को जल और अधिक स्वच्छ कर जब उपलाकृति पाक करलेते है तो उसे सितोपला कहते है। सुश्रुत ने इसे चारहित तथा मधुरादि अन्य गुणों को इसमे अधिक बताया है।

नवीन गुड़

सुपथ्य परन्तु कफ, श्वास, कास, कृमि, वा अग्नि वर्धक है [परन्तु खर्जूर रस से उत्पन्न नया गुड़ भी मधु के समान तरल, सुगन्धि युक्त स्वादु, तथा अत्यन्त रुचि कारक है। यह बङ्गाल मे अत्य धिकमिलता है।]

पुरातन गुड़

एक वर्ष के बाद गुड़ पुराना हो जाता है। यह लघु मधुर, अनभिष्यन्दी, अग्निवर्धक, पुष्टिकर, शुक्रवर्धक, रक्तशोधक, एवं पथ्यतम है।

मधु शर्करा

विशुद्ध मधु जम कर जब शक्कर के समान हो जाय तो उसे मधु शर्करा कहते हैं इस में Glucose तथा Dextrose के समान गुण होता है यह रूक्ष ईषत् कषाय रस,शीतवीर्य, गुरुपाक एवं, कफ, पित्त कृमि, अतिसार, तृष्णा, दाह वा रक्तदोष नाशक है ।

यवास शर्करा

मधुर, कषाय, अनुरस में तिक्त, श्लेष्म नाशक, और मृदु विरेचक होती है। इसे अग्रेजी में मन्ना [Manna] कहते हैं। यवास Alhagı manberum नामक क्षुप से जो निर्यास निकलता है वही यवास शर्करा या तुरंनबीन है। इस में कई प्रकार की शर्कराएं (Cane sugar, mannite etc) मिली होती हैं।

बीट शर्करा

यवद्वीप से आने वाले बीट कन्द से उत्पन्न साधारण चीनी के समान शर्करा को बीट शर्करा कहते हैं। यह चीनी के समान गुनकारी है. किन्तु उतनी पुष्टिकर नहीं है।

महुवे के फूलों से बनी हुई राव रूक्ष, वात और पित्त कारक, कफ नाशक, विपाक में मधुर, कषाय और मूत्रल होती है ;

(मद्य वर्ग)

जिस द्रव पदार्थ के सेवन करने से शरीर में मद (नशा) उत्पन्न हो उसे 'मद्य' कहते हैं। सीधु, मैरेय, सुरा, मदिरा, कादम्बरी वारुणी, आसव, अरिष्ट आदि इसके अनेक प्रकार हैं। आज कल

बाजार में एकमात्र. पोर्ट. विस्की, बियर. सेम्पीयन. जिजर आदि अनेक अग्रेजी मद्य उपलब्ध होते हैं। प्रत्येक प्रकार के मद्य के विशेष गुण धर्म उस मद्य के प्रधान द्रव्य के गुण धर्म पर, उसमें पड़ने वाले भिन्न २ द्रव्यों पर तथा उस से उत्पन्न होने वाले अलकोहल (Alcohal) की राशि पर निर्भर होते हैं। साधारणतया मद्य में लवण के अतिरिक्त शेष पांच रस होते हैं परन्तु अम्ल रस की उत्कृष्टता होने से शास्त्रों में उसे अम्ल कहा है। अन्य चारों रसों को अनुरस में ग्रहण किया गया है। सब प्रकार का मद्य पित्तकारक रुचि उत्पन्न करने वाला. अग्निदीपक. विरेचक, कफ वात नाशक, हृदय तथा मन दोनों के लिये हितकर, मूत्रशोधक. पचने में हल्का. दाह उत्पन्न करने वाला गरम, तीक्ष्ण, अल्प मात्रा में ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजित करने वाला, सविबन्ध को तोड़ने वाला, मल मूत्र को को खुल कर लाने वाला होता है।

दाख का मद्य

मधुर. रूक्ष, अनुरस में कषाय, हल्का. विपाक में हल्का, मृदुरेचक, शोष और विषम ज्वर में लाभ कारी है। यह अविदाही और मधुर रसोत्पन्न होने से रक्त पित्त में भी सदा लाभ करता है।

खजूर का मद्य

छुहारे से बनाया हुआ मद्य द्राक्षा के मद्य से गुण में थोड़ा हल्का, कषाय और मधुर रस युक्त हुआ, सुगन्धित और इन्द्रिय शोधन है।

सुरा

ग्वांसी, बवासीर, ग्रहणी, मूत्राघात, और वात इनका नाशक और स्तन्य तथा रक्त के क्षय में हित कर, शरीर पुष्टिकर तथा अग्नि दीपक है।

प्रसन्ना

(सुरा मण्ड) वमन, अरुचि, हृदय तथा कुक्षि की वेदना और शूल, कफ, वात, बवासीर, मलावरोध और अफारा इनको नष्ट करती है।

श्वेता

श्वेत वर्ण की सुरा कास, अर्श, ग्रहणी, श्वास, और प्रति श्याय, इनका नाश करती है और मूत्र, कफ स्तन्य, रक्त, और मांस इनकी वृद्धि करती है।

यव सुरा

पित्त कारक, अल्प कफ करने वाली, रूक्ष और वात प्रकोपक होती है।

मधुलिका

विष्टम्भ करने वाली, भारी, और कफकारक होती है।

अक्षिकी

अल्पकफकारक, वृष्य, और पाचक होती है।

कोइल-(यवसक्तुकृत) त्रिदोष कारक, भेदी अवृष्य और रुचिकारक होती है ।

जगल

(मद्य के नीचे का भाग) ग्राही रूच, उष्ण पाचक तृषा-नाशक कफहारक, शोथनाशक, प्रवाहिका मलावरोध, अर्श, वात और शोथ इनका नाशक है ।

बक्कम

(सुराकल्क) विष्टम्भी वात पक अग्निदीपक, मलमूत्र को कर विशद, अल्प नशा करने वाला और भारी होता है ।

सीधुः

गुड की सीधु कषाय मधुर, पाचन और दीपन होती है। शर्करा सीधु-मधुर, रुचिकर, दीपन, मूत्र शोधक, वातनाशक, विपाक में मधुर हृदय के लिये हितकर और इन्द्रिय प्रबोधक होती है । गन्ने के पकरस की सिधु-बलकारक वर्ण बढाने वाली, मृदुरेचक शोथ नाशक, अग्निदीपक, हृद्य, रुचिकारक कफ और अर्श के लिये हितकर होती है । गन्ने के कच्चे रस की सीधु शरीर को कृश करने वाली, शोथ और उदर रोग नाशक कांति बढाने वाली, आहार का पाचन करने वाली स्वर के लिये हितकर मलावरोध को दूर करने वाली और अर्श के लिये हितकर होती है । बहेडे की सीधु पाण्डु रोग नाशक, व्रण के लिये हितकर, संग्राही, हल्की कषाय, और मधुर, पित्त नाशक, और रक्त प्रसादन करने वाली होती है । जामुन की सीधु मूत्रकी राशि कम करने वाली (संग्राही) कषाय और वात प्रकोपक होती है ।

आसव

गुरासव, तीक्ष्ण मन को आनन्द दायक, मूत्रल कफ और वात हर, मुख को प्रिय, अधिक काल तक मद्य उत्पन्न करने वाला और वात नाशक होता है।

मधु का आसव

छर्दी, मेह, कुष्ठ, और विष नाशक, तिक्त, कषाय, शोथ नाशक, तीक्ष्ण, मधुर और वात न करने वाला होता है।

मैरेय

तीक्ष्ण, कषाय, मदकारक, अर्श, कफ और वातहर मधुर तथा गुरु होता है।

इक्षुरसासव

बलकर, पित्त नाशक शरीर का वर्ण बढ़ाने वाला और हृद्य होता है।

महुवे के पुष्पों का आसव

दाह पैदा करता है, जाठराग्नि और बलका बढ़ाने वाला, रूक्ष, कषाय, कफ नाशक, और वात तथा पित्त का प्रकोप करने वाला है।

अरिष्ट

अभया आदि द्रव्यों का सयोग होने के कारण तथा अनेक सस्कार होने के कारण अधिक गुणकारक होता है. अनेक व्याधियों का नाशक होता है और वातादि दोषों का शांत करने वाला है।

यह दीपक विशेषतया कफ और वात नाशक मूत्र रेचक पित्त का थोडा हरण करने वाला शूल आध्मान प्लीहवृद्धि ज्वर अजीर्ण और अर्श के लिये हितकर है

नवीन मद्य

(एक वर्ष से कम पुराना) अभिष्यन्दी भारी वात पित्त प्रकोपक अप्रिय गन्धयुक्त योग्य रस रहित मन को प्रिय न होने वाला और विदाह जनक है।

पुराना मद्य

पुराना मद्य अग्निदीपक मनको प्रिय होने वाला रुचिकारक कृमिनाशक स्रोतोविशोधक तथा वात और कफहर होता है।

नोट—भिन्न २ प्रकार के आसव और मद्य के इतर गुण तथा कम वृत्तमान् उनमें उपस्थित होने वाले द्रव्य तथा उन पर किये हुए संस्कार उनको रेचक आदि गुण से समझ लेना चाहिये जो मद्य गाढा दाह करने वाला दुर्गन्ध युक्त विरस कृमियुक्त भारी दिलको न पसन्द होने वाला नाना तीक्ष्ण गरम खराब पात्र में रखा हुआ मात्रा से कम औषधियों से बना या बासी जलवत् निर्मल पिच्छिल तथा पात्र के तल में थोडा बचा हुआ ऐसा मद्य सर्वथा वर्ज्य है। इसका ग्रहण नहीं करना चाहिये।

रस और वीर्य की दृष्टि से भिन्न २ प्रकार के मद्य का वीर्य जठराग्नि के साथ मिल कर हृदय में प्राप्त हो जाता है और वहां से ऊर्ध्वगामी धमनियों से होकर अपने सूक्ष्म तीक्ष्ण उष्ण और

विकाशीगुणा के कारण इन्द्रियों और चित्त को विचाभिन कर के शीघ्र ही मनुष्य का मदयुक्त करता है। मद्य की तीन अवस्था होती हैं। जैसे (१) हर्ष अवस्था (Stage of excitement) (२) प्रलापावस्था (Stage of delirium) और (३) विसञ्ज्ञावस्था (Stage of Narcosis)। इन्हीं अवस्थाओं को क्रमशः पूर्व मध्य और पश्चिमावस्था भी कहते हैं। संसार में प्राय: सबलोग अपना व्यवहार-आभ्यन्तरीय प्रकृति को रोक कर ईर्द और बाह्य समाज की दृष्टि से किया करते हैं। मद्य सेवन करने पर बाह्य जगत् का सबन्ध का बधन कुछ नष्ट प्राय होजता है और मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार सर्व व्यवहार किया करता है। इसी कारण से चरक संहिता में मद्य का प्रकृति 'दर्शक' का विशेषण दिया है। (चरक चि० २४) वैज्ञानिक स्रोत से भी यह सिद्ध हुआ है कि प्रकृति भेद के अनुसार मद्य के मद में भी भेद होता है। In fact the effects depend upon the nature of the environment and on the inherent mentality of the individual and would Produce quite diverse symptoms on different persons & different effects on the same individual under different conditions. Owing to a certain degree of freedom from restraint, the person will be talkative, boisterous, sentimental or melancholic according to the individual peculiarities. (Ghose's materia medica)

इति मद्य वर्ग

(शाक वर्ग)

पत्र, पुष्प, फल, नाल, कन्द, और छत्ता ये ६ प्रकार के शाक होते हैं। ये यथक्रम से उत्तरोत्तर गुरु (पचने में भारी) होते हैं। यहां शाक शब्द से सब प्रकार की तरकारियों (सब्जियों) का ग्रहण किया गया है।

शाकों के गुण दोष—सब प्रकार के शाक प्राय: दीपन-पाचनादि गुण सम्पन्न रुचि कर वा धातु पुष्टिजनक है। परन्तु कोई २ शाक दोष युक्त होता है। चरक में शाक को गुरु, रूक्ष और विष्टम्भ के साथ पचने वाला कहा गया है। यह पत्र शाक का वर्णन प्रतीत होता है।

पत्रशाक—

पत्र शाकों में वास्तुक (बथुआ) सर्व श्रेष्ठ है। यह सफेद और रक्त के भेद से दो प्रकार का होता है। सुश्रुत के मत से यह कटु विपाक, क्षार युक्त, रुचिकारक, ईषत् भेदक, कृमि नाशक, मेधा, अग्नि बलवर्धक एव त्रिदोषघ्न है। इस शाक के बीज से एक प्रकार का तेल निकलता है जिसे Oil ot chenopodium कहते हैं, जो अद्वितीय क्रिमि नाशक है।

चौलाई

(तण्डुलीयक)—मधुररस, मधुर विपाक, शीत वीर्य, रूक्ष, एव रक्त पित्त वा विष नाशक है। यह शाक लाल और श्वेत (हरे) के भेद से दो प्रकार का होता है। पुनः यह चौलाई दो प्रकार की

सकंटक (कांटेयुक्त) और अकटक (बिना कांटेवाली) होती हैं। कांटे वाली चौलाई का विशेष कर प्रवाहिका (Dysentry) में अधिक व्यवहार होता है।

पालक

(पालंक्य) —गुरुपाक, शीतवीर्य, वायु या श्लेष्मकर, मल भेदक, विष्टंभी एवं मदगन्ध, श्वास, रक्त पित्त या विष दोष नाशक है। शाक प्रिय लोग इसका पंचाङ्ग भक्षण करते हैं परन्तु इसका मूल दुर्जर और गुरु होता है।

उपोदिका

(पोई) मधुर रस, मधुर विपाक, स्निग्ध, शीतवीर्य, मलभेदक बलकर, वृष्य, श्लेष्मकर, एवं वायु पित्त और मदनाशक है। लोग इसके पत्र फल और नाल का उपयोग करते हैं।

काल शाक

अग्निदीपक, कटुरस, मलभेदक, रुचिकर, शीतवीर्य, मेधाजनक, वायु वर्धक एवं विष दोष, कफ वा शोथ नाशक है।

पटुशाक

इसे नाड़िका या नाड़ि शाक भी कहते हैं। यह स्निग्ध, शीतवीर्य, पिच्छिल, विष्टम्भी, वातवर्धक, धातुपोषक, शुक्र वर्धक एवं दाह, तृषा, थकावट और रक्तपित्त को नाश करने वाला है।

कर्लमी शाक

मधुर रस, स्नन्य और शुक्र वर्धक है।

चाङ्गेरी शाक

रुचिकर, अग्निदीपक, खट्टी, रूक्ष, उष्ण वीर्य, पित्त वर्धक एवं कफ वायु, ग्रहणी अर्श, कुष्ट वा अतिसार नाशक है।

सुनिष्षणक

(सुसुना)--यह आनुपदेश मे होता है। यह चाङ्गेरी के पत्तों के समान चार दल वाला होता है। यह मधुर, लघुपाक, शीत-वीर्य, ग्राही, अग्निदीपक त्रिदोषघ्न, निद्राजनक, वृष्य, रुचिकरक, तथा ज्वर और मेह को दूर करनेवाला है।

चने के पत्र का शाक

अम्लरस, रुचिकर, दुर्जर कफ वा वायुवर्धक, विष्टम्भी पित्तघ्न, और दन्त शोथनाशक है।

कलायपत्र

(मटर)—शाक तिक्त रस, लघुपाक, मल भेदक, वा त्रिदोष नाशक है।

सपत्र पत्र शाक

मधुर-कटु-लवण रस युक्त, अम्ल विपाक, गुरु, उष्ण वीर्य, रूक्ष, क्षारयुक्त, विदाही, तीक्ष्ण, तथा मल और मूत्र को बढ़ने वाला एवं त्रिदोष वर्धक है। यह शाकों में निकृष्ट माना गया है।

गोभी

यह तीन प्रकार की होती है। बन्द गोभी (पत्रकपि), फूल गोभी (पुष्प कपि) और कन्द गोभी। पत्र गोभी—मधुर रस, शीत वीर्य, गुरुपाक सुगन्धि, रुचिकर, वात वर्धक, मल बधक, किञ्चित् विष्टम्भी होता है। *

पुष्प शाक

अगस्त, कदली, शिग्रु, शोभाजन कोविदार कूष्माण्ड, शन, फूलगोभी, आदि पुष्प शाकों की भी सब्जियां बनायी जाती है।

अगस्त पुष्प

कषाय-तिक्त रस, कटुपाक, शीत वीर्य, त्रिदोषघ्न, एवं चातुर्थक ज्वर नक्तान्ध और पीनस रोग का नाश करता है।

कदली पुष्प

कषाय-मधुर रस, स्निग्ध गुरुपाक, शीतवीर्य, वातपित्तघ्न और रक्तपित्त तथा क्षय रोग के लिये हितकारी है।

शोभाञ्जन पुष्प

सहजना के फूल, कटुरस, तीक्ष्ण, उष्ण वीर्य है। वायु, कफ, स्नायु शोथ, कृमि, विद्रधि, प्लीहा, और गुल्म रोगी के लिये हितकर है।

नोट—इनके अतिरिक्त निम्ब, पटोल, गुडूची, पुनर्नवा पित्तपापड़ा, ब्राह्मी द्रोणपुष्पी, हिलमोचिका आदि के पत्तों का भी शाक आवश्यकता अनुसार बीमारों को देने के लिये बनाते हैं।

कुष्माण्ड पुष्प

पीले कुष्माण्ड का फूल या उजले कुष्माण्ड का फूल वात-वर्धक और गुरुपाक है।

फूल गोभी

इसे बंगाल मे पुष्पकर्णी कहते हैं। अंगरेजी मे (Cauli-flower) कहते हैं। यह सुगन्धित, मधुररस गुरुपाक, हृद्य, रुचिकर, पित्तनाशक, ईषत् विष्टम्भी और मल भेदक है।

फल शाक

(त्रपुष वर्ग)

इसमें त्रपुष, एर्वारुक, कर्कारु, तुम्बी, कुष्माण्ड, प्रभृति फल-पुष्प आकृति से तुल्य प्राय होते हैं और ये एक जातीय हैं। अर्वाचीन वानस्पतिक विज्ञान के अनुसार ये (Cucur vitacae) वर्ग के हैं। ये त्रपुष वर्गीय फल साधारणतः ईषत् तिक्त व मधुर हृद्य, बलकर, कफ वर्धक रक्त पित्त नाशक, रुचिकर और सारक है। इनमें त्रपुष (खीरा) एर्वारुक (फूट) और कर्कारु (ककड़ी) विशेषकर मधुर गुरु, विष्टम्भी, शीतल, मुखप्रिय, और रूक्ष होते हैं। कॉकड़ विशेषकर मूत्रल और सुपक्व एर्वारुक (फूंट) दाह, तृष्णा व क्लान्ति नाशक हैं।

तुम्बो फल (अलाबु, लौकी या घीया)

हृद्य, पित्त श्लेष्म नाशक, गुरु, वृष्य, रूचिकर, और धातु पोषक है। इसकी एक तिक्त जात होती है जिसे कटु तुम्बी (तिक्तलौकी) कहते हैं। यह शीतल, अहृद्य, पित्तनाशक, कटु-

विपाक, कासघ्न, विषघ्न, एवं वात पैत्तिक ज्वर में उपकारी होती है। यह वमन तथा उत्क्लेद जनक है। इसकी सब्जी नहीं बनती।

कुष्माण्ड फल

यह श्वेत और पीत या रक्त के भेद से दो प्रकार का होता है। श्वेत को पेठा और रक्त को कुम्हड़ा कहते हैं। दोनों प्रकार का कुष्माण्ड फल बृहण और वृष्य होता है। उनमें श्वेत कुष्माण्ड रक्तपित्तघ्न, क्षार युक्त, अग्निदीपक, वस्तिशोधक, त्रिदोष नाशक एवं पित्त विकार में हितकर है। पीत या रक्त कुष्माण्ड—मधुररस, वा बलकर, किन्तु किञ्चित विष्टम्भकर होता है। यह फल विदेशी है पर अब सर्वत्र भारत में मिलता है।

चिचिण्डा

वात पित्तनाशक, सुपथ्य, बलकर व रूचिकर है। यह क्षय रोगियों के लिये विशेष हितकर है किन्तु परवल की अपेक्षा यह कम गुणकारी है।

कर्कोटक (खेंखसा)

कटुपाक, अग्निदीपक, मलनिःसारक, एवं विवमिषा (वमन करने की इच्छा कराने वाला); अरूचि, श्वास, कास व ज्वर नाशक है।

कारवेल्ल (करेला)

तिक्त रस, लघु पाक, शीत वीर्य, मलभेदक, त्रिदोषनाशक, एवं ज्वर, रक्तदोष, पाण्डु, मेह व कृमि रोग नाशक है।

कोषातकी (तोरी, नेनुआ)

स्निग्ध, रक्तपित्त व वायुनाशक है।

राज कोषातकी (झिगुनी)

मधुर रस, शीतवीर्य, कफ व वायु वर्धक, पित्तनाशक, अग्निदीपक, एवं श्वास, कास, ज्वर व कृमिनाशक है। (तिक्त कोषातकी प्रायः विरेचक होती है इसकी सब्जी नहीं बनती)।

पटोल (परवल)

पाचक, हृद्य, वृष्य, लघु, अग्निदीपक, स्निग्ध, उष्ण वीर्य, एवं कास, रक्तदोष, ज्वर, त्रिदोष वा कृमि नाशक है। (इसकी जड़ तीव्र विरेचक, नाल श्लेष्म नाशक पत्रपित्तनाशक और फल त्रिदोषनाशक है) इसमें भी एक तिक्त जाति की होती है जो शाक में वर्जित है।

बिम्बी फल (कुन्दुरु)

मधुर रस, शीत वीर्य, गुरुपाक, रुचिकर, वातनाशक, रक्तपित्तघ्न, स्तम्भन, लेखन, एवं किञ्चित् मलमूत्र रोधक वा आध्मानकारक है। इसका पत्र प्रायः पटोल पत्र के समान गुण वाला होता है। इसकी जड़ तथा नाल मधु मेह में हितकारी है।

शिम्बी (सेमफल)

यह द्विदल वर्ग की चीज है। अतः इसका वर्णन द्विदल वर्ग में होगा।

शोभाञ्जन फल (सहंजना)

कषाय-मधुररस, अग्निदीपक, शुक्रवर्धक एवं कफ, वायु, शूल, कुष्ठ, क्षय, श्वास, वमन, व गुल्म रोग में हितकारी है अत्यन्त पुष्ट और कठोर फलों को छोड़ देना चाहिये।

वृन्ताक (बैंगन)

मधुररस, तीक्ष्णोष्णवीर्य, कटुपाक, पित्त का अविरोधक लघु, अग्निदीपक, शुक्रवर्धक एवं ज्वर, वायु व कफनाशक है। इसकी कई जातियाँ हैं। बैंगनी रंग के बड़े २ बैंगन अधिक गुणकारी तथा छोटे २ अण्डे के समान सफेद रंग के बैंगन कम गुणकारी होते हैं। अर्श रोग में छोटे बैंगन अच्छे होते हैं। कच्चा बैंगन कफ व पित्तनाशक होता है और पका हुआ बैंगन गुरु और पित्त को बढ़ाने वाला होता है।

अम्ल वृन्ताक

(टमाटर)—यह पकने पर पर लाल पीला रंग का हो जाता है। यह मधुराम्लरस, बैंगन के समान गोल २ होता है। यह यद्यपि विदेश से आया हुआ है पर अब सर्वत्र भारत में सुलभ है। यह वातनाशक अनति पित्त कर, और जीवनीय-वस्तु-बहुल फल शाक है। इसका पक्व फल रस दाह तृष्णा, क्लान्ति-नाशक, धातु समूह का तर्पक जीवनीयगुणयुक्त पदार्थ है।

भिण्डी

रुचिकर, मलभेदक शीतवीर्य, वायु वर्धक, एवं पित्त कफ व अश्मरी नाशक है। कच्ची भिण्डी बल्य, शुक्रल और तृष्णा नाशक है।

पपीता

यह भी विदेशी फल है। यह भी भारत में सर्वत्र सुलभ और सर्व-प्रिय हो रहा है। यह अपक्वावस्था में फल शाक (सब्जी के लिये) में व्यवहृत होता है यह अग्निदीपक, पाचक, स्निग्ध, शीतवीर्य, मृदु मधुर-रस, व रोगियों के लिये परम हितकारी है। पका हुआ फल गुरु, सुमधुर, और कोष्ठ को शुद्ध करने वाला है। इसके अन्दर पेपेन (Papain) नामक पाचक पदार्थ होता है।

अम्रातक (अमड़ा)

अमड़ा-अमल रस, गुरु, उष्णवीर्य, रुचिकर, भेदक और वात नाशक है। यह पकने पर कषाय मधुर रस, शीतवीर्य, तर्पक, श्लेष्मकर, स्निग्ध वृष्य, विष्टम्भी, बृहण, गुरु, बलकर एवं वायु पित्त, क्षत, दाह रक्त दोष निवारक होता है।

पनस (कटहल)

अपक्व कटहल की सब्जी बनती है-यह मधुर रस, गुरुपाक विष्टम्भी, बलकर, वृष्य, रुचिकर एवं वायु कफ व मेदोधातु वर्धक है। पकने पर इसके बीज की सब्जी बनती है। यह आलू के समान गुण युक्त गुरु मलरोधक मूत्रकारक होता है। इसक मज्जा वृष्य एवं कफ नाशक होती है।

नालशाक

कूष्माण्ड तुम्बी डान्टक व सर्षप प्रभृति का नाल तथा अन्य अनेक प्रकार के शाकों के कोमल नाल सब्जी के लिये व्यवहार में आते हैं अतः उन्हें नाल शाक कहते हैं।

कूष्माण्ड व तुम्बी नालशाक

मधुर रस, रूचिकर, मल वर्धक, लघुपाक, व शीतवीर्य होता है।

डान्टक नाल शाक

यह रक्त और श्वेत भेद से दो प्रकार का होता है यह मधुर रस, धातुपोषक, गुरूपाक और शीतवीर्य है।

सर्षप नाल शाक

तीक्ष्णोष्णवीर्य, रूचिकर एवं वायु कफ, व्रण कण्डू कृमि दद्रुव कुष्ठ नाशक है।

कमल नाल

शीतवीर्य, मधुर कषाय रस, एवं वायु व कफवर्धक है।

कन्दशाक

कन्दशाक अनेक प्रकार के होते हैं। इन्हें तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। १. सूरणवर्ग २. आलुक वर्ग ३. मूलक वर्ग।

सूरणवर्ग

इस में सूरण (ओल या जिमीकन्द) अरूक (कच्चू, कचालू, कन्दा) और माण कन्द हैं। ओल या सूरण-अग्नि दीपक, रूक्ष, कण्डूजनक, कषायरस, विष्टम्भी, विशद, रूचिकर, लघु, एवं कफ व अर्शनाशक है। यह रक्तपित्त, मूत्रकृच्छ्र एवं अश्मरी जनक है।

आरुक (कच्चू)

इसे अरबी या कन्दा भी कहते हैं। अरबी छोटी और कन्दा बड़ा होता है। यह बलकर, स्निग्ध, पिच्छिल, व मधुररस है। यह आंव पैदा करती है।

मान कन्द

इसे दीर्घ कन्द तथा महापत्र भी कहते हैं। यह शोथ नाशक, शीतवीर्य, रूक्ष, लघु, एवं पुष्टिकर है। कण्ठ में कण्डू उत्पन्न करने से वर्जनीय है।

आलुक वर्ग

इस मे गजालु, पिण्डालु और मध्वालु या शकरकन्द ये प्रधान हैं। ये तीनों श्वेत और रक्त भेद से दो प्रकार के होते हैं। सब प्रकार के आलु साधारणतः मधुर, गुरु, शीतवीर्य, विष्टम्भी, मलवर्धक, व मूत्रकारक, रूक्ष, सुपाच्य, रक्तपित्तनाशक, कफवात वर्धक, बलकारक, शुक्रवर्धक व स्तन्यवर्धक हैं।

गोल आलू

मधुररस, पुष्टिकारक, बलकर, वृष्य सुजर, (किन्तु उत्तम रीति से सिद्ध नहीं होने से दुर्जर) पित्त नाशक व स्तन्यवर्धक है।

कमल कन्द

कषायमधुर रस, शीतल, विपाक में मधुर, पित्तशमन व वायु प्रकोपक है।

वाराह कन्द

यह रेशे से भरा हुआ वृहत् कन्द है। यह कटुरस कटु-विपाक, बलकारक, रसायन, वृष्य, मेदनाशक, क्रिमिघ्न, कुष्ठघ्न और कफघ्न है।

कदली कन्द

शीतल, बल्य, केशों के लिये हितकर, अम्लपित्त नाशक, अग्निवर्धक, दाहनाशक, मधुरस और रुचिकारक है।

मूलक वर्ग

मूली—यह दो प्रकार की होती है एक छोटी (क्षुद्र मूलक) और दूसरी बड़ी गजदन्त के समान। इसे नेपाली मूली भी कहते हैं।

छोटी मूली

कटु रस, उष्णवीर्य, रुचिकर, लघु पाचक त्रिदोषघ्न, स्वर-प्रसादक एवं ज्वर श्वास, नासिका रोग, कण्ठरोग के लिये हितकर है।

बड़ी मूली

गुरु, विष्टम्भी और दुर्जर होती है।

गाजर

मधुर, तिक्तरस तीक्ष्णोष्णवीर्य, अग्निदीपक, लघु, संग्राही एवं रक्तपित्त, अर्श, ग्रहणी और कफवातनाशक है।

बीट कन्द

चुकन्दर– यह रक्त वर्ण का सुन्दर कन्द होता है। यह मधुर रस, प्रचुर शर्करा युक्त, विष्टम्भी और दुष्पच है।

शलगम

यह चुकन्दर के समान गुण वाला होता है।

गांठ गोभी

सुगन्धि, मधुर रस, गुरुपाक, पुष्टिकर, किञ्चित् वातवर्धक और मल वृद्धि कारक है।

रसोनादि वर्ग

रसोन

लहसुन—स्निग्ध, उष्ण वीर्य, तीक्ष्ण, मधुर कटुरस युक्त, पिच्छिल, गुरू, सारक, बलकर, वृष्य, मेधाकर, स्वरवर्धक, वर्णकर, चक्षुष्य, भग्नास्थिसंधानकर, वायु व कफ नाशक, एवं हृद्रोग, जीर्ण ज्वर, कुक्षिशूल, विबन्ध, गुल्म, अरूचि, कास, शोथ, अर्श, कुष्ठ, अग्निमान्द्य कृमि, वायुरोग व श्वास रोग में उपकारी है।

पलाण्डु या प्याज

कटुरस, ईषत् उष्ण वीर्य, तीक्ष्ण, गुरुपाक, किञ्चत् पित्त कफ व अग्नि वर्धक है। इस में सफेद रंग का प्याज (क्षीर पलाण्डु) मधुर गुरुपाक, स्निग्ध, पिच्छिल, रुचिकर, धातुओं को स्थिर करने वाला बल वर्धक, मेधा जनक, कफ वर्धक, पुष्टिकर एवं रक्त पित्त के रोगी के लिये हितकर है।

कसेरू

यह छोटे और बड़े दो प्रकार के होते हैं। बड़े को 'राज कसेरू' और छोटे को 'चिचोर' कहते हैं। दोनों प्रकार के कसेरू शीत वीर्य ईषत् कषाय व मधुर रस युक्त, गुरु, ग्राही, शुक्रवर्धक एवं रक्त पित्त दाह तथा नेत्र रोग नाशक है। यह कच्चा ही खाया जाता है।

हारितक वर्ग

पुदीना धनियां, सोया, सुल्फा, सालाद, सिलेरी प्रभृति नाना प्रकार के शाक कच्चे ही भोजन के व्यवहार में आते हैं। अतः ये कच्चे ही भोजन-पदार्थों में व्यवहृत होते हैं। ये चारों शाक रुचिकर, उष्ण वीर्य, कटुरस, पित्त कर, शूल नाशक, वातघ्न एवं किञ्चित् अग्नि दीपक व पाचक हैं।

सालाद व सिलेरी नामक दोनों विदेशी शाक कच्चे ही भोजन में व्यवहृत होते हैं। ये ईसत् लवण युक्त, मधुरस व जीवनीय गुण युक्त एवं मांसभक्षी लोगों के लिये अत्यन्त प्रिय व मुख की शुद्धि करने वाले हैं।

संस्वेदज शाक

छाता, फोंकड़ प्रभृति— इसे अंग्रेजी में मशरूम Mushroom) कहते हैं। यह फूई (Fumgus) जातीय पदार्थ है। यह भूमि, गोमयराशि, काष्ठ व वृक्षादि के ऊपर उत्पन्न होते हैं। इसे भूमिच्छत्र, शिलीन्ध्र, छत्राक आदि नाम देते हैं सब प्रकार के

सस्वेदज शाक शीत वीर्य, त्रिदोष जनक, पिच्छिल व गुरुपाक होते हैं। कोई २ वमन अतिसार, व कफ रोग को उत्पन्न करने वाला होता है। ये संस्वेदज शाक पवित्र स्थान में उत्पन्न हुए या काष्ठ या वृक्ष पर उत्पन्न हुए विशेष दोष कारक नहीं होते। इनके अतिरिक्त सब प्रकार के सस्वेदज शाक दोषकारक होते हैं। इन में कोई कोई तो विपाक व प्राण नाशक होते हैं।

वर्जनीय शाक

पत्रशाक— कर्कश, जीर्ण, कीटादि-दुष्ट, अदेशज (ऊसर व श्मशानादि देशज), अकाल जात, पत्रशाक सर्वथा परित्याज्य है। नालशाक के सम्बन्ध में भी यही नियम जानना चाहिये।

फल शाक

विशुष्क, कृमियुक्त, विकृत या कठिन, वर्जनीय हैं। पुष्पशाक के सम्बन्ध में भी ये ही नियम लागू हैं।

कन्द शाक

अत्यन्त कच्चा, अकालोत्पन्न, जीर्ण, व्याधियुक्त, कीटजुष्ट वर्ज्य हैं। जिस शाक को बोने से वह अंकुरित न हो वह परित्याज्य है।

(इति शाक वर्ग)

आहारोपयोगी वर्ग

आर्द्रक, मरिच, हिंगु, धनियां, जीरा, (तीनों प्रकार का) हरिद्रा, लालमिर्च, दालचीनी इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, मौरी, मेंपी, सर्षप, राई, पिप्पली, केशर चाभ, लशुन, प्याज, लवण, अम्लवर्ग, पोस्तबीज (दाना) और तिल प्रभृति ये सभी द्रव्य आहार पदार्थ (भोजन) को स्वादिष्ट एवं सुगन्धित बनाने के लिये व्यवहृत होते हैं। इन्हें 'आहारोपयोगी वर्ग' में परिगणित किया गया है। ये सभी आहारोपयोगी द्रव्य प्रायः अग्निदीपक पाचक,कटुरस, उष्णवीर्य, सारक कफ व वात नाशक किन्तु विदाही पित्तकर होते हैं। अतः इन्हें अधिक सेवन नहीं करना चाहिये। उचित मात्रा में व्यवहार करने से ये भोज्य पदार्थ को सुस्वादु तथा सुरभित करते हैं। इनका अनुचित व्यवहार भोजन द्रव्य के गुणों को नष्ट करता है और शरीर के अन्दर विदाह आदि अनेक पित्त विकार उत्पन्न करता है।

आर्द्रक, अदरक या आदि

यह भेदक गुरुपाक तीक्ष्णोष्ण वीर्य अग्नि दीपक, कटुरस मधुर विपाक, रूक्ष व कटु, वायु नाशक है। इसे शुष्क कर लेने पर सोंठ हो जाता है। भोजन के पहले अदरक और लवण भक्षण करने से अग्नि दीप्त होती है और रूचि बढ़ती है तथा कण्ठ और जिह्वा शुद्ध होती है।

नोट—कुष्ठ, पाण्डु, रक्त पित्त, व्रण, ज्वर और दाह के रोगी के लिये अद्रक सेवन निषिद्ध है तथा ग्रीष्म व शरत् काल में आर्द्रक नहीं खाना चाहिये।

मरिच (गोल मरिच)

कटुरस, तीक्ष्णोष्ण वीर्य, अग्निदीपक, रूक्ष, कफवात नाशक, पित्तकर, एवं श्वास शूल. व कृमिनाशक है। (कच्ची अवस्था में यह मधुर विपाक, नात्युष्ण वीर्य, गुरुपाक, पित्तविरोधी, शुष्क मरिच की अपेक्षा तीक्ष्ण गुण युक्त और कफनिःसारक होती है)।

महा मरिच या लाल मिर्च

यह अमेरिका के चिल्ली प्रदेश से आई है अतः इसका नाम (Chilly) चिल्ली है। यह कटुरस, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, रुचिकर, विदाही, लघुपाक, पित्तकर, एवं शूल, अर्श, व रक्तपित्त रोग में सर्वथा परित्याज्य है।

हिंगु

उष्णवीर्य. पाचक, रूचिकर, तीक्ष्ण, वातकफनाशक, पित्तकर, और शूल, गुल्म उदर विकार, आनाह, व कृमिरोग नाशक है। यह एक प्रकार के वृक्ष का गोन्द है।

धनियाँ

कषाय-तिक्त-कटुरस, मधुर विपाक, उष्णवीर्य, ग्राही, स्निग्ध, लघु, अवृष्य, मूत्रकारक, अग्निदीपक, पाचक, रूचिकर, त्रिदोष-नाशक, और ज्वर तृषा, दाह, वमन, श्वास-कास-अर्श व

कृमिरोग नाशक है। कचा धनियां उक्त गुण युक्त सुस्वादु और विशेषकर पित्त नाशक है।

जीरक

यह तीन प्रकार का होता है—सफेद जीरा, स्याह जीरा और काला जीरा। तीनों प्रकार का जीरा रूक्ष, कटु, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, लघुपाक, धारक, पित्तवर्धक, मेधाजनक, गर्भाशय शोधक, ज्वरघ्न पाचक, बलकर, शुक्रवर्धक, रुचिकर, कफनाशक, नेत्र के लिये हितकारी है। ये वायु, उदराघ्मान, आनाह, गुल्म, वमन व अतिसार को नाश करते हैं। इनमें स्याह जीरा विशेष सुगन्धि युक्त व उदर शोधक है। काला जीरा को हिन्दी में मंगरैल कहते हैं।

हरिद्रा

तिक्त कटुरस, रूक्ष, उष्णवीर्य, वर्णप्रसाधक, एवं कफपित्त त्वग्दोष, मेद, रक्तदोष, शोथ पाण्डु व व्रण नाशक है।

दारुचीनी

मधुर तिक्त रस, सुरभि, शुक्रवर्धक, बलकर, एवं वायुपित्त मुखशोष व तृष्णा नाशक है।

इलायची

यह दो प्रकार की होती है बड़ी और छोटी।

बड़ी इलायची—कटुरस, कटुविपाक, अग्निवर्धक, लघुपाक, रूक्ष, उष्णवीर्य एवं कफ रक्तपित्त, कण्डू, श्वास, तृष्णा, उत्क्लेद, विषदोष, वातपित्त रोग, मुखरोग, वमन व कास रोग निवारक है।

छोटी इलायची—ईषत् तिक्तरस, शीतवीर्य, एवं वायु, कफ, श्वास, कास, अर्श व मूत्रकृच्छ्र नाशक है।

तेजपत्र

मधुररस तीक्ष्णोष्णवीर्य, पिच्छिल, लघुपाक, रूक्ष व वातनाशक एवं अर्श हृल्लास अरुचि व पीनस रोगनाशक है।

नागकेशर

कषायरस, उष्णवीर्य, रूक्ष, लघु, आम पाचक, एवं ज्वर तृष्णा, घर्म, वमि, वमनेच्छा, शरीर की दुर्गन्धि, कुष्ठ, विसर्प, कफ, पित्त व विषनाशक है।

सौंफ

लघु, तीक्ष्णवीर्य, पित्तकर, अग्निदीपक, कटु, उष्ण, वात श्लेष्मघ्न, एवं ज्वर, व्रण, शूल व नेत्र रोग के लिये हितकारी है।

सोया

सौंफ के समान गुण वाला है। विशेषकर यह योनि शूल, अग्निमान्द्य, मलबद्धता, कृमि, शुक्र, कास, वमन, वायु व कफ-नाशक एवं हृद्य, रूक्ष, उष्णवीर्य और पाचक है।

मेथिका

वायु श्लेष्म व वात व्याधि नाशक है।

सर्षप

कटुतिक्त रम, कटु विपाक, स्निग्ध, तीक्ष्णोष्णवीर्य, कफ व वायुनाशक, रक्त पित्तकारक, अग्निवर्धक रक्षोघ्न एवं कण्डू, कुष्ठ, कोठ व कृमि रोग कारक है। रक्त तथा गौड़ दोनों प्रकार का सर्षप समान गुण वाला है। परन्तु गौड़ सर्षप श्रेष्ठ है।

राई

यह लाल और काली दो प्रकार की होती है। यह कफ पित्तनाशक, तीक्ष्णोष्णवीर्य, रक्त पित्तकर, किञ्चित् रूक्ष, अग्नि-वर्धक एव कण्डू, कुष्ठ, कोठ व कृमि रोग के लिये उपकारी है। काली राई विशेष तीक्ष्ण होती है।

पिप्पली

कटुरस, मधुर विपाक, अनुष्ण वीर्य, स्निग्ध, लघु, वृष्य अग्निदीपक रसायन, वात श्लेष्म नाशक व ईषत् रेचक एव श्वास-कास-उदर रोग, ज्वर कुष्ठ-प्रमेह-गुल्म-अर्श, प्लीहा-शूल व आमवात रोग में उपकारी है

केशर

कटुतिक्त रस, स्निग्ध, वर्णकर, त्रिदोषघ्न एवं शिरोरोग, व्रण, कृमि, व मि व व्यङ्ग रोगनाशक है।

लवंग

कटुतिक्त रस, लघु, नेत्र के लिये हितकारी, शीतवीर्य, अग्निप्रदीपक, पाचक, रुचिकारक, एव कफ, तृष्णा, वमन, रक्तपित्त, आध्मान, शूल, कास, श्वास, हिक्का, व क्षय रोग के लिये हितकारी है।

लवण

सैंधव-सामुद्र-विड्-सौवर्चल-रोमक-उद्भिद् प्रभृति लवण उत्तरोत्तर उष्ण, वातनाशक एव कफ व पित्तकारक है। पूर्व २ क्रम से ये अधिकतर स्निग्ध स्वादु एव मलमूत्र निःसारक हैं।

सैंधव लवण

मधुर रस, स्निग्ध रुचिकर, लघु, हृद्य, उत्तम, अग्निदीपक, शीतवीर्य, वृष्य, नेत्र के लिये हितकारी व त्रिदोषनाशक है। सामुद्र लवण—मधुर विपाक, नातिशीतोष्णवीर्य, ईषत् स्निग्ध, अविदाही, मलभेदक, ईषत पित्तकर एवं शूलनाशक है। विट्-लवण—रुचिकर, तीक्ष्ण उष्णवीर्य, अग्निवर्धक, चारयुक्त, वायु निःसारक एवं शूल व हृद्य रोग नाशक है। सौवर्चल—लघु, उष्णवीर्य, कटु, अपिच्छिल, हृद्य, सुगन्धि, रुचिकर, एवं गुल्म शूल व विबन्ध रोग में हितकर है। रोमक—तीक्ष्णवीर्य, अत्युष्ण, लघु, कटुविपाक, सूक्ष्म, वातनाशक मूत्रल, एवं सर्व शरीर में प्रवेशशील है।

पोस्त बीज

दाना—यह बल कारक, वृष्य, गुरुपाक, कफकर व वात नाशक है।

तिल

कटु तिक्त-मधुर-कषाय रस, गुरुपाक, बलकर, कटुविपाक, स्निग्धोष्ण वीर्य, त्रिदोष नाशक, केश और त्वचा के लिये हितकारी

शीतस्पर्श, स्तन्य-वर्धक, व्रण व दन्त रोग के लिये हितकारी, ईषत् मूत्रकारक, ग्राही, अग्निवर्धक और बुद्धि जनक है। कृष्ण (काला) तिल श्रेष्ठ होता है।

इति

फल वर्ग

इस वर्ग में उन फलों का वर्णन होगा जो बिना पकाये (अग्नि पर) भक्षण किये जाते हैं और जो प्राणी मात्र के लिये प्राण शक्ति को बढ़ाने वाले और मधुर, ईषत् अम्ल रस युक्त, पुष्टि-प्रद एवं रसना को तृप्त करने वाले हैं। इस में आम्र जम्बु, कदली, बिल्व, पनस, पीलू, जामरूल, नारिकेल, दाडिम, नारंग. मृद्वीका, वाताम (बादाम), अभिषुक, कालिन्दक, खर्जूर, ताल खर्बुज, शृंगाटक, पपीतु, सेव सीताफल, अमृत फल, विकङ्कत, अमरूद परूषक, अनानास, लीची, लौकाट, राजजम्बु प्रभृति नाना प्रादेशिक फल एव तिंतिडी बदर, कर्मरंग, कपित्थ, नींबू लकुच, बहुवार, अम्लवेतस, आम्रातक, अम्ल दाडिम, करमर्द प्रभृति अम्ल फल सम्मिलित होंगे।

आम (आम्र)

कच्चा आम (अत्यन्त कच्चा) कषायाम्ल रस, रुचिकर, वायु एवं पित्त वर्धक। तरुण आम—अत्यन्त अम्ल, रूक्ष, एवं रक्त दोष और त्रिदोष वर्धक है। आम की गुठली और छिलका निकाल कर धूप से शुष्क कर लेने से वह अमचूर या खटाई कहलाता है। यह मधुरअम्ल कषाय रस, मल भेदक, एवं वायु व कफ नाशक है। पके

हुए आम-ईषत् कषाय युक्त, मधुर रस, स्निग्ध शीतवीर्य, गुरुपाक, वृष्य, अग्नि वर्धक, बल कर, सुखप्रद, वर्ण प्रसाधक, हृदयग्राही, वातनाशक, पित्त विरोधी एवं श्लेष्म और शुक्रवर्धक है।

वृक्षपकआम्र – गुरु एव विशेष कर वायुनाशक है।

नोट—अधिक आम सेवन करने से अग्निमान्द्य, विषम ज्वर रक्त दुष्टि, बद्ध गुदोदर और चक्षु रोग उत्पन्न होते हैं। परन्तु ये दोष मीठे आमों से नहीं होते। उक्त दोष को दूर करने के लिये सोंठ के काढ़े मे सौवर्चल और जीरा मिला कर पीना चाहिये।

आम्रवर्त्त (आमावट)

सुपक्व आम्र रस को कपड़े पर फैला कर सुखा लेने से यह तैयार होता है। यह सूर्य संताप से पक्व होने के कारण लघु हो जाता है।

आम्र बीज

ईषत् अम्ल रस युक्त, कषाय मधुर-रस वमि, अतिसार, हृदय के दाह का नाश करता है।

जम्बु (जामुन)

कषाय मधुर-रस, गुरु विष्टम्भी ग्राही कफपित्त नाशक, एव अत्यन्त वायु वर्धक है।

कदली फल

केला अपक्व मधुरस, शीतवीर्य विष्टम्भी, गुरूपाक, स्निग्ध एव कफ, रक्त पित्त, तृषा दाह, क्षत, क्षय और वात नाशक है।

पक्क कदली

रस वा विपाक में मधुर, शीत वीर्य वृंष्य, वृंहण, रुचिकर, मांसवर्धक, एवं क्षुधा, तृष्णा, नेत्र रोग और व प्रमेह नाशक है।

नोट—भिन्न २ देशों में नाना प्रकार का कदली फल मिलता है। इनके गुणों में भी स्थान तथा जाति भेद से भिन्नता होती है।

कच्चा बिल्व

बेल—कच्चा बेल स्निग्ध, तीक्ष्णोष्ण वीर्य, मलसग्राहक अग्निदीपक, कटुतिक्त कषाय रस एव कफ व वायु नाशक है।

पक्क बिल्व

मधुर और गुरूपाक होता है।

पीलू फल

यह गुजरात तथा उत्तरापथ में पीलू नाम से ही प्रसिद्ध है। यहां बाजार में 'सफदा' नाम से मिलता है। यह कफघ्न वायुनाशक, पित्तवर्धक भेदक व गुल्म नाशक है। किन्तु जो पीलू मधुर, तिक्त-रस वाला होता है वह अधिक उष्ण नहीं होता और त्रिदोष नाशक है।

पनस (कटहल)

पका हुआ कटहल मधुर रस, शीत वीर्य, स्निग्ध तृप्तिकर, बृहंण, मांस वर्धक, अत्यन्त कफकर, बलकारक, शुक्रजनक, एव वायु रक्त पित्त, क्षत व व्रण रोग नाशक है।

जामरुल

यह जल बहुल ईषत मधुर, शीतवीर्य अनति पुष्टिकर है। यह दाह, उष्ण व वमन का नाश करता है।

नारिकेल

नारियल व खोपा शीत वीर्य, दुष्पाच्य, विष्टम्भी, वस्ति-शोधक पुष्टिकारक, बलकर, एव वायु रक्त पित्त व दाहनाशक है। विशेष करके कच्चा नारियल (डाभ) पित्त ज्वर व पित्त जनित सर्व प्रकार के रोगों को नाश करता है नारियल का जल-मधुर, शीतल हृदयग्राही अग्निदीपक, लघु, शुक्रवर्धक, पिपासा व पित्त नाशक व वस्तिशोधक है।

दाडिम (अनार)

मीठा, खट्टा-मीठा औ खट्टा यह तीन प्रकार का अनार होता है। इन मे र्म ठा या बेदाना अनार-मधुर कषाय रस, स्निग्ध, सग्राही लघु, तृप्तिकारक, शुक्रवधक, मेधा व बलवर्धक, त्रिदोष नाशक, एवं तृष्णा दाह, ज्वर हृद्रोग कण्ठ रोग व मुख रोग-नाशक है।

मधुराम्ल (दाडिम)

अग्निदीपक, रुचिकर लघु ईषत पित्तवर्धक है।

अम्ल दाडिम

पित्तवर्धक अम्लरस, एव वायु व कफ नाशक है।

नारंगी

ईषत् अम्ल, मधुर रस, हृद्य, अन्न में रुचि बढ़ाने वाला, गुरुपाक दुष्पाच्य एवं वातघ्न है।

द्राक्षा (दाख, अंगूर)

मधुररस, शीतवीर्य, स्निग्ध बृंहण, वृष्य, एवं तृष्णा, दाह, ज्वर, श्वास, रक्तपित्त, क्षत क्षय, वायु, पित्त, उदावर्त्त, स्वरभेद, मदात्यय, मुख की तिक्तता, मुखशोष व कास प्रभृति रोगनाशक है।

क्षुद्र द्राक्षा (किशमिश) बड़ी द्राक्षा से कुछ कम गुणवाली है।

बादाम

उष्णवीर्य, स्निग्ध, गुरु, वातनाशक व शुक्रवर्धक है। इसकी मज्जा (मींगी) मधुररस, स्निग्ध, उष्णवीर्य, कफवर्धक, वृष्य, एवं वायु व पित्तनाशक है; परन्तु रक्तपित्त रोगी के लिये हितकर नहीं है।

पिश्ता (अभिषुक)

स्नेहन, पुष्टिप्रद, बलकर, वृष्य रुचिकर व रसायन है। यह अधिक गुरु न होने पर भी अग्निमान्द्य को अधिक करता है।

तरबूज (कालिन्दक कच्चा)

गुरुपाक, मलसंग्राहक एवं दृष्टि शक्ति, शुक्र व पित्तनाशक है। तरबूज (सुपक्व होने पर) उष्णवीर्य, क्षारयुक्त, पित्तवर्धक एवं कफ व वायुनाशक है।

खरबूजा

मधुररस, शीतवीर्य, स्निग्ध, गुरुपाक वृष्य, बलकर, मूत्रकारक, कोष्ठ परिष्कारक एवं वायु व पित्तनाशक है। इनमें कोई २ अम्ल मधुर रस युक्त व क्षारयुक्त होते हैं; वे रक्तपित्त तथा मूत्र कृच्छ्र को उत्पन्न करते हैं।

ताल फल

रक्तपित्त व कफवर्धक, दुष्पाच्य, मूत्रकारक, तन्द्राकर, अभिष्यन्दी व शुक्रवर्धक है। इसका बीज-मधुरविपाक, मूत्रकारक, एवं वायुपित्तनाशक है।

खर्जूर

यह तीन प्रकार का होता है (१) क्षुद्र खर्जूर (२) पिण्ड खर्जूर (३) छोहारा। पिण्ड खर्जूर पश्चिम भारत सरहद के निकट प्रदेशों में होता है। छोहारा पहले द्वीपान्तर से आता था पर अब पश्चिम प्रदेश में तथा यहां भी उत्पन्न होता है। उक्त तीनों प्रकार के खर्जूर—शीतवीर्य, मधुररस, मधुरविपाक, स्निग्ध, रुचिकर, हृद्य, क्षत एवं कफनाशक, गुरु, तृप्तिकर, रक्तपित्त-नाशक, पुष्टिकर, विष्टम्भी, शुक्रवर्धक, बलकारक, एवं कोष्ठगत वायु, वमि, कफ, ज्वर, अतिसार, क्षुधा, तृष्णा, कास, श्वास, मत्तता, मूर्छा, वातपैत्तिक, मदात्यय रोगनाशक है।

खर्जूर रस

मदकारक, पित्तकारक, वातघ्न, कफनाशक, रुचिजनक, अग्निप्रदीपक, बलकर एवं शुक्रवर्धक है।

अखरोट (अक्षोट)

मधुररस, नातिस्निग्धोष्ण, शीतवीर्य, बलकारक, वात व पित्तनाशक, कफवर्धक, एव रक्तदोष प्रशमनशील है।

भृगाँटक (सिंघाड़ा, पानीफल)

कषाय मधुररस, शीतवीर्य, गुरुपाक, वृष्य सग्राही वायु, श्लेष्मा व शुक्रवर्धक एव रक्तपित्त व दाहनाशक है।

पपीता

मधुररस गुरुपाक, विष्टम्भी, शीतल सारक, बलपुष्टिप्रद है।

सेव

मधुर रस, मधुर विपाक, शीतवीर्य, गुरुपाक वृष्य, बृहण, रुचिकर, शुक्र व कफवर्धक एव वायु व पित्त नाशक है।

सीताफल (शरीफा)

सुमधुर, शीतवीर्य, तृष्णा व अरुचिनाशक, ईषत्सारक व बलकर है, यह भी विदेशी फल है।

नाशपाती

यह पारस आदि मुगल देशों में अधिक पैदा होती है। भारत में भी अब उत्पन्न होती है। यह लघुपाक, वृष्य, सुस्वादु, व त्रिदोषनाशक है।

अमरूद

मधुर व सुगन्धियुक्त, किन्तु कच्चा (अपक्कावस्था) में कसैला व दुर्जर होता है। पका हुआ सुपच होता है। यह फल भी भारत मे दूर देश से आया हुआ है। (दक्षिण अमेरिका से)। भारत में पारेवत नाम का इस जाति का फल होता है।

फालसा (परुषक)

कच्चा फालसा कषायरस लघुपाक व पित्तवर्धक है। पका हुआ मधुर विपाक, शीतवीर्य विष्टम्भी, पुष्टिकारक, हृद्य, एवं वायु, पित्त, दाह, रक्तदोष, ज्वर व क्षयरोग प्रभृति के लिये हितकर है।

गुलाब जामुन (राजजम्बु)

मधुररस, विष्टम्भी गुरुपाक व रुचिकर है।

पानियाला (विकंकत)

सुपक्क होने पर मधुर, लघुपाक, अग्निदीपन, सर्वदोषनाशक, एव कामला व रक्तपित्त रोग में उपकारी है।

शहतूत (पक्क)

गुरु, मधुर, शीतवीर्य व वायुपित्त प्रशमक है किन्तु कच्चा सारक, अम्ल व उष्णवीर्य तथा रक्त पित्त प्रकोपक है।

अानानास

पका हुआ—सुमधुर वइषद् अम्ल होता है। यह दीपन, पाचन, रुचिकर एवं यकृतरोग में लाभकारी है।

लीची (पकी हुई)

मधुर, शीतल, सुगन्धियुक्त, गुरु, बलकर व पुष्टिकर है।

लौकाट

ईषदम्लमधुर, विदाही, लघु व रुचिकर है। यह पकने पर पीला स्वर्ण वर्ण का हो जाता है।

अम्ल-वर्ग

अम्लिका, चुक्रिका, अम्ली, चुक्रा, दन्तशठा, चिञ्चा आदि नाम इमली के हैं। कच्ची इमली – अम्लरस, गुरु, वायुनाशक, एवं रक्तपित्त व कफ वर्धक है। पकी हुई अम्ल मधुर, अग्निदीपन, रूक्ष, सारक, उष्णवीर्य एवं कफ वायुनाशक है।

वृक्षाम्ल

इसका फल कच्ची अवस्था में अम्ल, उष्णवीर्य, वातघ्न व कफ पित्तवर्धक है। पकने पर गुरु, मल संग्राही, कटुकषायरस, होता है।

बेर (कोल बदर)

यह कच्ची अवस्था में पित्तकर व कफवर्धक है। किन्तु किन्तु पकने पर वायु पित्तनाशक, स्निग्ध, ईषद् मधुर रस, एवं मलनिःसारक होता है।

आम्रातक (आमड़ा)

यह अम्ल और मधुर दो प्रकार का होता है। उन में अम्ल जातीय आमड़ा विदाही, गुरु व पित्तवर्धक है। मधुर आमड़ा तृप्तिकारक, बलकर, मासवर्धक, शरीर मे स्निग्धता उत्पन्न करने वाला, कफ वर्धक, शीत वीर्य, शुक्र वर्धक एव विष्टम्भी है

जम्बीर की जातियां

नींबू की जातिया-इसकी अनेक जातियाँ है। इन में कुछ तो किञ्चत् अम्ल रस युक्त मधुर होते है जैसे-सन्तरे, नारंगी, मीठे, मोसम्बी, और कुछ अम्ल मधुर रस जैसे चकोतरे, मीठे, गल गल, आदि। कुछ अम्ल रस प्रधान होते हैं जैसे-जम्बीरा, कागजी, नेपाली, अम्ल गलगल आदि। परन्तु इन सबों मे एक प्रकार की आह्लादक सुगन्धि हानी है। ये सब प्रकार के नींबू रुचि वर्धक और शरीर के लिये उपकारी होते हैं। जो मधुर और ईषदम्लरस युक्त होता है यह बल्य तथा अनति पित्त वर्धक होता है। जो अम्ल रस प्रधान होता है वह पित्त वर्धक होता है।

जम्बीर नींबू अत्यम्ल, वायु व कफ नाशक, पित्त प्रकोप कारक, एव पिपासा, शूल, कफ, उत्क्लेश, वमि व श्वास रोग के लिये हितकर है। किन्तु जम्बीर जाति के फल मधुर रस होने से से हृद्य व पुष्टि प्रद होते हैं।

अम्ल वेतम

अम्ल वेतस को एक प्रकार से वृहदाकार जम्बीर कह सकते है। इसके अनेक नाम यथा-शतवेधी, सहस्रनुत शख द्रावक आदि

मिलते हैं। इसके फल मे इतनी तीव्र अम्लता होती है कि यदि लोहे की सूई इसके अन्दर दो तीन दिन रख छोड़ी जाय तो वह गल जाती है। बाजार मे अम्लबेत नाम की एक खट्टी बेल भी मिलती है, अत उसे ही भ्रम वश न समझना चाहिये। क्यों कि, यह एक फल है। यह अत्यन्त अम्ल रस, भेदक, लघु, अग्निदीपन, पित्त-वर्धक, रोम हर्षकारक, रूक्ष एव हृद्रोग, शूल, गुल्म, पुरीदोष, मूत्रदोष, प्लीहा, उदावर्त्त, हिक्का, आनाह, अरुचि, श्वास कास, अजीर्ण, वमि, कफरोग वा वातरोग नाशक है।

बिजौरा

मधुराम्ल रस, अग्निप्रदीपक, लघु, हृद्य वा रक्तपित्त नाशक है एव कठ, जिह्वा, और हृदय शोधन कारकर है। यह श्वास, कास अरुचि पिपासा रोग मे हितकर है।

वाताभिघ्न (मधुकर्कटी)

यह पूर्व कथित गुण युक्त एव शीतल व पित्त नाशक है। इसी प्रकार अन्य सभी नींबुओं को समझ लेना चाहिये।

चाणकाम्ल

जाड़े के दिनों मे चने के कोमल पत्तों पर एक प्रकार का तीव्र अम्ल पदार्थ पैदा होता है जिस पर उषाकाल मे एक चादर बिछाकर उसे निचोड़ लेते हैं। यही चणकाम्ल होता है। यह विशेष कर अग्निदीपक, वातहर एव पाचक होता है।

कपित्थ (कैथ या खट्टा बेल)

स्वरघ्न, विषनाशक, मल रोधक, वायुवर्धक मधुराम्ल कषाय रस युक्त व सुगन्ध युक्त होने के कारण रुचिकारक होता है।

करमर्द (करौंदा)

करमर्द और कमरख तथा लकुच एवं चालता-ये सब प्रायः अतिशय अम्ल, विदाही, तथा बहुदोष युक्त होते हैं।

फल विषयक सामान्य परिभाषा

बिल्व (बेल) को छोड़ कर प्रायः सभी फल पकने पर गुण दायक होते हैं परन्तु बेल पकने पर विष्टम्भी तथा अपकावस्था में विशेष गुण दायक होता है। द्राक्षा, बिल्व, हर्रे, आमलकी, प्रभृति को छोड़ कर सभी फल प्रायः सरस अवस्था में विशेष गुणदायक होते हैं पर ये शुष्क अवस्था में अधिक गुणकारी होते हैं। जो फल हिम, अग्नि वा दूषित वायु के संस्पर्श से दूषित हो, सर्प कीटादि से दुष्ट हो तो उसे कदापि भक्षण न करें। अकाल में उत्पन्न, गन्दे स्थान में उत्पन्न, एवं सड़ा हुआ फल नहीं खाना चाहिये।

"फलेषु परिपक्वं यद् गुणवत्तदुदाहृतम्।
बिल्वादन्यत्र विज्ञेयमाम तद्धिगुणान्वितम्॥
फलेषु सरस यत् स्याद् गुणवत्तदुदाहृतम।
द्राक्षा विल्व शिवादीना फलं शुष्कं गुणाधिकम॥ सु. सू. ४६

॥ इति ॥

शब्दानुक्रमणिका

अ

त

प

पद	पृ०	सं०

श

हमारी कुछ चुनी हुई पुस्तकें

१. वैदिक विनय (तीनों खण्ड)	५)
२. सोम सरोवर	३)
३ बृहत्तर भारत	७)
४ भारतवर्ष का इतिहास (तीनों खण्ड)	७)
५. वरुण की नौका, दो भाग, प्रति भाग	३)
६ सन्ध्या-सुमन	१।)
७ आत्म मीमांसा	२)
८ वैदिक ब्रह्मचर्य गीत	२)
६ वेद-गीताञ्जलि	२)
१०. ब्राह्मण की गौ	।।।)
११ अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	१।।)
१२. आर्ष मनुस्मृति	२।।)
१३. वैदिक वीर गर्जना	।।।=)
१४. सचित्र स्तूपनिर्माणकला (जिम्नास्टिक)	३)
१५. सचित्र सगीत व्यायाम	३)
१६ जुजुत्सु (जापानी कुश्ती)	।।।=)
१७ तिरङ्गा झण्डा	१।)
१८ नया आलोक: नई छाया	२)
१६. ऋषि दयानन्द के सत्य-अहिंसा के प्रयोग	।।)
२०. तुलसी	२)
२१. अञ्जीर	१)
२२. देहाती इलाज	१)

विस्तृत सूचीपत्र के लिये लिखिये।

गुरुकुल पुस्तक भण्डार, गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)